प्रथम अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रथम अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रथम अध्याय

काल्पनिक सामग्री से निर्मित तर्कप्रासाद

मान्य श्वेताम्बर मुनियों और विद्वानों ने दिगम्बरमत को निह्नवमत (तीर्थंकरोपदेश के विपरीत स्वकल्पित मिथ्यामत) एवं अर्वाचीन, दिगम्बरपरम्परा के बहुमान्य आचार्य कुन्दकुन्द को विक्रम की छठी शताब्दी का तथा दिगम्बरसाहित्य को यापनीयसाहित्य या श्वेताम्बरसाहित्य सिद्ध करने के लिए जो तर्कप्रासाद खड़ा किया है, वह काल्पनिक सामग्री से निर्मित है। वह काल्पनिक सामग्री इतिहासविरुद्ध एवं प्रमाणविरुद्ध मिथ्यामतों की कल्पना से निष्पन्न हुई है। वे कल्पनाएँ इस प्रकार हैं—

१

तीर्थंकरों के सवस्त्र-तीर्थोपदेशक होने की कल्पना

श्वेताम्बराचार्य श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण (सातवीं शती ई०) ने यह मत उद्भावित किया है कि कोई भी तीर्थंकर सर्वथा अचेल नहीं थे, सभी एक वस्त्र ग्रहण कर प्रव्रजित हुए थे, जिससे लोगों को यह उपदेश प्राप्त हो सके कि सवस्त्र रहने पर ही साधु को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार तीर्थंकरों ने सचेलधर्म का ही उपदेश दिया था। इस मत की कपोलकल्पितता का उद्घाटन द्वितीय अध्याय में किया जायेगा।

२

बोटिक शिवभूति के दिगम्बरमतप्रवर्तक होने की कल्पना

एकान्त या निरपवाद अचेलधर्म (दिगम्बरमत) की उत्पत्ति के विषय में पुरातन श्वेताम्बराचार्यों ने यह कथा गढ़ी है कि उसका प्रवर्तन वीर नि० सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में श्वेताम्बरमत का परित्याग कर अलग हुए बोटिक शिवभूति नाम के साधु ने किया था। इस कथा का विस्तार से वर्णन द्वितीय अध्याय में किया जायेगा और कथा में वर्णित तथ्यों के ही आधार पर सिद्ध किया जायेगा कि निरपवाद अचेलधर्म या दिगम्बरमत जिनेन्द्रोपदिष्ट है, बोटिक शिवभूति द्वारा प्रणीत नहीं।

३

बोटिक शिवभूति के यापनीयमतप्रवर्तक होने की कल्पना

बीसवीं सदी ई० के श्वेताम्बर मुनि श्री कल्याणविजय जी एवं श्वेताम्बर विद्वान् पं० दलसुख मालवणिया, डॉ० सागरमल जी जैन आदि के द्वारा यह कहानी रची

गयी है कि 'आवश्यकमूलभाष्य' आदि ग्रन्थों में बोटिक शब्द का प्रयोग दिगम्बरों के लिए नहीं, अपितु यापनीयों के लिए किया गया है और इसलिए वीर नि० सं० ६०९ में शिवभूति ने दिगम्बरमत का नहीं, बल्कि यापनीयमत का प्रवर्तन किया था, अतः दिगम्बरमत वीर नि० सं० ६०९ में भी उत्पन्न नहीं हुआ था। वह उससे भी अर्वाचीन है। इस कहानी की असत्यता का प्रकाशन द्वितीय अध्याय में किया जायेगा।

४

कुन्दकुन्द के दिगम्बरमतप्रवर्तक होने की कल्पना

दिगम्बरमत की उत्पत्ति के विषय में मुनि कल्याणविजय जी ने जो कथा बुनी है, वह यह है कि उसकी स्थापना विक्रम की छठी शताब्दी में दक्षिण भारत के आचार्य कुन्दकुन्द ने की थी, जो आरंभ में बोटिक शिवभूति द्वारा प्रवर्तित यापनीयसंघ में दीक्षित हुए थे। किन्तु बाद में यापनीयसंघ की वैकल्पिक सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि की मान्यताएँ उन्हें उचित प्रतीत नहीं हुईं। इसलिए उनका निषेध करने के लिए उन्होंने आवाज उठायी, किन्तु उनके गुरु तथा संघ के अधिकांश साधुओं ने उनका समर्थन नहीं किया, प्रत्युत विरोध किया। फलस्वरूप वे संघ से अलग हो गये और अपने समर्थकों को लेकर नया सम्प्रदाय बना लिया, जो दिगम्बरसंघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस कथा की कपोलकल्पितता द्वितीय अध्याय में प्रदर्शित की जायेगी।

५

कुन्दकुन्द के प्रथमतः यापनीय होने की कल्पना

मुनि कल्याणविजय जी ने उपर्युक्त मनगढ़न्त कथा में यह भी गढ़ा है कि कुन्दकुन्द पहले यापनीयपरम्परा में दीक्षित हुए थे, बाद में उससे अलग होकर दिगम्बरमुनि बन गये। द्वितीय अध्याय में कुन्दकुन्द के दिगम्बरमत-प्रवर्तक होने की कथा के मनगढ़न्त सिद्ध हो जाने पर यह भी सिद्ध हो जायेगा कि उनके प्रथमतः यापनीयपरम्परा में दीक्षित होने की कथा भी मनगढ़न्त है।

६

कुन्दकुन्द के प्रथमतः भट्टारक होने की कल्पना

मुनि कल्याणविजय जी ने आचार्य कुन्दकुन्द के प्रथमतः यापनीय होने की कथा गढ़ी है, तो श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी ने उनके प्रथमतः भट्टारकसम्प्रदाय के पट्टाधीश होने की कहानी रच डाली। वे लिखते हैं—"कुन्दकुन्द माघनन्दी के शिष्य जिनचन्द्र के पास भट्टारकपरम्परा में दीक्षित हुए थे। मेधावी मुनि कुन्दकुन्द ने अध्ययन

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पूर्ण करने के पश्चात् दिगम्बरपरम्परा द्वारा सम्मत आगमों के निदिध्यासन-चिन्तन-मनन से जब जिनेन्द्र प्रभु द्वारा प्ररूपित जैनधर्म के वास्तविक स्वरूप और तीर्थंकरों द्वारा आचरित श्रमणधर्म को पहचाना, तो उन्हें अपने प्रगुरु माघनन्दी द्वारा संस्थापित धर्म और श्रमणाचार-विषयक मान्यताएँ धर्म और श्रमणाचार के मूलस्वरूप के अनुरूप प्रतीत नहीं हुईं। उन्होंने संभवतः अपने प्रगुरु, गुरु और भट्टारकसंघ द्वारा सम्मत उन कतिपय अभिनव मान्यताओं के समूलोन्मूलन और पुरातन मान्यताओं की पुनः संस्थापना का संकल्प किया।'' (जै.ध.मौ.इ./भा.३/पृ.१४०)। अर्थात् उन्होंने भट्टारकपरम्परा छोड़कर दिगम्बरमुनि-परम्परा को पुनरुज्जीवित किया। इस कहानी की मनगढ़न्तता पर '**कुन्दकुन्द के प्रथमतः भट्टारक होने की कथा मनगढ़न्त**' नामक अष्टम अध्याय में प्रकाश डाला जायेगा।

७

उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ की कल्पना

डॉ० सागरमल जी ने यह इतिहासविरुद्ध उद्भावना की है कि भगवान् महावीर ने अचेल और सचेल दोनों लिंगों से मोक्ष होने का उपदेश दिया था। अतः उत्तरभारत में एकमात्र सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ विद्यमान था, जिसका अस्तित्व ईसा की पंचम शताब्दी के प्रारंभ तक बना रहा, तत्पश्चात् इस संघ से सचेलाचेलमार्गी यापनीयसंघ तथा सर्वथा सचेलमार्गी श्वेताम्बरसंघ का उद्भव हुआ और यह विघटित हो गया। इस कल्पना की कपोलकल्पितता का अनावरण द्वितीय अध्याय में किया जायेगा।

८

सचेलाचेल निर्ग्रन्थसंघ के विभाजन से श्वेताम्बर-यापनीय सम्प्रदायों के उद्भव की कल्पना

डॉ० सागरमल जी ने उपर्युक्त कल्पना के आधार पर इस नयी कल्पना को जन्म दिया है कि ईसा की पंचम शताब्दी के प्रारंभ में कथित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के विभाजन से श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों का उद्भव हुआ था, न कि दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों का। दिगम्बरसम्प्रदाय की तो स्वतंत्ररूप से स्थापना विक्रम की छठी शताब्दी (ईसा की पाँचवीं शती) में दक्षिण भारत के आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा की गयी थी। इस कल्पना के कपोलकल्पित होने का बोध उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ (निर्ग्रन्थपरम्परा) की कपोलकल्पितता का अनावरण हो जाने पर स्वतः हो जायेगा। इस कल्पना के क्या प्रयोजन थे, इसका प्ररूपण द्वितीय अध्याय में किया जायेगा।

९

अचेल एवं सचेल जिनकल्पों के व्युच्छेद की कल्पना

प्राचीन श्वेताम्बराचार्यों ने पञ्चमकाल में सचेल-श्वेताम्बरमत को ही जिनोक्त, उचित और अनिवार्य तथा अचेल-दिगम्बरमत को निह्नवमत (तीर्थंकरोपदेश के विपरीत स्वकल्पित मिथ्यामत) अत एव अनर्थकारी सिद्ध करने के लिए यह कल्पना की है कि बोटिक-शिवभूति-वर्णित अचेल-जिनकल्प और जिनभद्रगणि-वर्णित सचेल-जिनकल्प जम्बूस्वामी के निर्वाण के पूर्व तक अस्तित्व में थे, किन्तु निर्वाण के पश्चात् अर्थात् पंचमकाल का आरम्भ होते ही प्रथमसंहननधारी मनुष्यों की उत्पत्ति बन्द हो गयी, जिससे कोई भी पुरुष दोनों प्रकार के जिनकल्पों को धारण करने योग्य नहीं रहा अर्थात् जिनकल्प का व्युच्छेद हो गया। अतः जिनेन्द्रदेव ने पंचमकाल में मुनियों को अचेललिंग ग्रहण करने का निषेध किया है और एकमात्र सचेललिंग ही ग्रहण करने योग्य बतलाया है। अतः पंचमकाल में अचेललिंग को उचित बतलानेवाला दिगम्बरमत जिनोपदिष्ट नहीं है, अपितु स्वकल्पित होने से निह्नवमत है। इस कल्पना की कपोलकल्पितता द्वितीय अध्याय में प्रकट की जायेगी।

१०

सामान्यपुरुषों के लिए तीर्थंकरलिंग-ग्रहण के निषेध की कल्पना

उपर्युक्त प्रयोजन से ही श्वेताम्बराचार्यों ने यह कल्पना की है कि सामान्यपुरुष अर्थात् जो उसी भव में तीर्थंकर होनेवाले नहीं हैं, भले ही वे जिनकल्प के योग्य हों, तीर्थंकरलिंग (अचेललिंग) ग्रहण करने के योग्य नहीं होते। अतः तीर्थंकरों ने उनके लिए तीर्थंकरलिंग ग्रहण करने का निषेध किया है। यह कथन भी मनगढ़न्त है। इसकी मनगढ़न्तता का खुलासा द्वितीय अध्याय में द्रष्टव्य है।

११

अचेलत्व के मुख्य और औपचारिक भेदों की कल्पना

उपाध्याय धर्मसागरकृत स्वोपज्ञवृत्तियुक्त 'प्रवचनपरीक्षा' (१५७२ ई०) ग्रन्थ से विदित होता है कि श्वेताम्बर जिनकल्पी साधु भी मुखवस्त्रिका एवं ऊन से निर्मित रजोहरण धारण करते थे तथा जिन्हें **वस्त्रऋद्धि** प्राप्त हो जाती थी, उनकी नग्नता बिना वस्त्र धारण किये ही ढँक जाती थी, शेष जिनकल्पियों को एक, दो या तीन कल्प (चादर-कम्बल) धारण करने की अनुमति थी, जिनसे वे शरीर को आच्छादित कर गुह्यांग का गोपन करते थे। अतः स्थविरकल्पियों के समान वे भी न अचेल रहते थे, न नग्न।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इससे साधु के लिए श्वेताम्बर-आगमों में भी विहित दस स्थितिकल्पों में से **आचेलक्य स्थितिकल्प** (चेल का सर्वथा परित्याग कर पूर्ण नग्न रहना) और **नाग्न्य-परीषहजय** असंभव हो जाते हैं, जिससे श्वेताम्बर साधुओं का आचरण आगमविरुद्ध सिद्ध होता है। अत: उसे आगमानुकूल सिद्ध करने के लिए श्वेताम्बराचार्यों ने आचेलक्य और नग्नता का अर्थ ही बदल दिया। उन्होंने अचेलता के दो भेद कल्पित किये : मुख्य और औपचारिक। जिनेन्द्र के सर्वथा अचेल रहने को तथा **वस्त्रलब्धियुक्त** जिनकल्पी साधु के मुखवस्त्रिका और रजोहरण के अतिरिक्त कोई लौकिक वस्त्र धारण न करने को **मुख्य अचेलता** नाम दिया तथा फटे पुराने (जीर्णशीर्ण) वस्त्र पहनने को **औपचारिक अचेलता** कहा। मुख्य अचेलता का अधिकारी तीर्थंकरों और वस्त्रलब्धियुक्त जिनकल्पिक साधुओं को बतलाया तथा औपचारिक अचेलता का अधिकारी शेष साधुओं को। यह भी कल्पित कर लिया कि वर्तमानकाल में मुख्य अचेलता संयमोपकारी नहीं है, औपचारिक अचेलता से ही संयम सम्भव है।[१]

इस प्रकार श्वेताम्बराचार्यों ने वस्त्रधारी साधुओं में भी उपचार से अचेलता या नग्नता घटित कर उन्हें आचेलक्य स्थितिकल्प का पालक एवं नाग्न्यपरीषह का विजेता सिद्ध कर दिया। इस कल्पना की कपोलकल्पितता का अनावरण तृतीय अध्याय में किया जायेगा।

१२
सग्रन्थ में निर्ग्रन्थ की कल्पना

जिनागम में परिग्रह को **ग्रन्थ** कहा गया है। यह दो प्रकार का है : अभ्यन्तर और बाह्य। मिथ्यात्व-कषायादि अभ्यन्तरपरिग्रह कहलाते हैं और वस्त्रपात्रादि बाह्यपरिग्रह। जिस साधु के पास दोनों प्रकार के ग्रन्थों का अभाव होता है, वही निर्ग्रन्थ कहलाता है। श्वेताम्बर साधुओं के पास वस्त्रपात्रादि बाह्यपरिग्रह का सद्भाव होता है, अत: वे निर्ग्रन्थ नहीं कहला सकते। फलस्वरूप वे भगवान् महावीर की परम्परा के साधु भी नहीं कहला सकते।

इस समस्या से निपटने के लिए श्वेताम्बराचार्यों ने वस्त्रपात्रादि बाह्यपरिग्रह को ग्रन्थ मानना ही छोड़ दिया। उन्होंने यह घोषित कर दिया कि वस्त्रपात्रादि बाह्यपरिग्रह संयम का साधन होने से 'ग्रन्थ' की परिभाषा में नहीं आता। अत: बाह्यग्रन्थ रहते हुए भी केवल आभ्यन्तरग्रन्थ का अभाव होने से श्वेताम्बर साधु 'निर्ग्रन्थ' संज्ञा

---

१. क—हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५९८-२६०१।
ख—"इहाचेलक्यं द्विधा—मुख्यमौपचारिकं च। तत्र मुख्यं तीर्थकृतां कस्यचिज्जिनकल्पिकस्य च।" प्रवचनपरीक्षा / वृत्ति / १/२ / ६ / पृ.७५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का पात्र है। इस प्रकार उन्होंने सग्रन्थ में भी निर्ग्रन्थ की कल्पना कर ली। इस कल्पना की कपोलकल्पितता का प्रदर्शन द्वितीय अध्याय में किया जायेगा।

१३
मूलसंघ के यापनीयसंघ का पूर्वनाम होने की कल्पना

भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत **निरपवाद** या **ऐकान्तिक अचेलतीर्थ** का अनुगमन करनेवाले श्रमणसंघ का नाम निर्ग्रन्थसंघ है। उससे श्वेताम्बरसंघ का उद्भव हुआ था, अतः निर्ग्रन्थसंघ मूलसंघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु मुनि कल्याणविजय जी एवं उनके अनुगामी डॉ० सागरमल जी मानते हैं कि भगवान् महावीर ने सर्वथा अचेललिंग को नहीं, अपितु अचेल और सचेल, दोनों लिंगों को मुक्ति का मार्ग बतलाया है। अतः वे मात्र अचेललिंग से मुक्ति माननेवाले निर्ग्रन्थसंघ को भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट मोक्षमार्ग का अनुगामी नहीं मानते, अपितु विक्रम की छठी शताब्दी में आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रवर्तित मोक्षमार्ग का अनुगामी मानते हैं। किन्तु मूलसंघ का सर्वप्रथम उल्लेख दक्षिण भारत के नोणमंगल नामक स्थान में प्राप्त दो ताम्रपत्रों में मिलता है, जो क्रमशः ईसवी सन् ३७० और ४२५ के माने जाते हैं।[२] इससे निर्ग्रन्थपरम्परा विक्रम की छठी शती से बहुत पहले की सिद्ध होती है, जिससे उक्त विद्वानों की मान्यता गलत ठहरती है। इसलिए वे इस बात के लिए बाध्य हुए कि **मूलसंघ** और **निर्ग्रन्थसंघ** एक ही हैं, इस सत्य को मिटा दिया जाय। अतः मुनि कल्याणविजय जी ने यह मिथ्या प्रचार किया कि "मूलसंघ यापनीयसंघ का पूर्वनाम था। जब उत्तर भारत में शिवभूति ने अपना नया मत चलाया, तब उसने प्रारंभ में अपने सम्प्रदाय का नाम 'मूलसंघ' रखा, लेकिन दक्षिण भारत में जाने पर वह 'यापनीय' नाम से प्रसिद्ध हुआ।"[३]

डॉ० सागरमल जी ने भी मुनि जी के मत का अनुसरण किया है, किन्तु वे मानते हैं कि उक्त सम्प्रदाय के दक्षिण में पहुँचने पर ही वह पहले मूलसंघ के नाम से अभिहित हुआ और उसके लगभग सौ वर्ष बाद उसे 'यापनीय' नाम मिला। दोनों विद्वानों के कथनों में यह विरोध इस बात का सूचक है कि उनकी मान्यताएँ प्रमाणों पर आधारित नहीं हैं, बल्कि मनगढ़ंत हैं। इसका विवेचन 'यापनीय संघ का इतिहास' नामक सप्तम अध्याय में किया जायेगा।

---

२. देखिये, सप्तम अध्याय / तृतीय प्रकरण।
३. देखिये, द्वितीय अध्याय / द्वितीय प्रकरण / शीर्षक ३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१४

कुन्दकुन्दसाहित्य में दार्शनिक विकास की कल्पना

सुप्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् पं० दलसुख जी मालवणिया ने आचार्य कुन्दकुन्द को तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वाति से, जिनका समय उनके अनुसार ईसा की तीसरी-चौथी शती है, परवर्ती सिद्ध करने के लिए कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में दार्शनिक विकासवाद की कल्पना की है। वे लिखते हैं—

"तत्त्वार्थ और आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थगत दार्शनिक विकास की ओर यदि ध्यान दिया जाय, तो वाचक उमास्वाति के तत्त्वार्थगत जैनदर्शन की अपेक्षा आ० कुन्दकुन्द के ग्रन्थगत जैनदर्शन का रूप विकसित है, यह किसी भी दर्शनिक से छिपा नहीं रह सकता। अत एव दोनों के समयविचार में इस पहलू को भी यथायोग्य स्थान अवश्य देना चाहिए।"[४]

यह दार्शनिक विकासवाद कपोलकल्पित है। इसका सप्रमाण, सयुक्तिक प्रतिपादन 'आचार्य कुन्दकुन्द का समय' नामक दशम अध्याय (प्रकरण ४) में द्रष्टव्य है।

१५

शिवमार में शिवकुमार की कल्पना

प्रो० एम० ए० ढाकी ने आचार्य कुन्दकुन्द का अस्तित्व ईसा की आठवीं शती में सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। आचार्य जयसेन ने 'पंचास्तिकाय' और 'प्रवचनसार' की टीकाओं में लिखा है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने इन ग्रन्थों की रचना शिवकुमार महाराज के प्रतिबोधनार्थ की थी। डॉ० के० बी० पाठक ने शिवकुमार महाराज का समीकरण पाँचवीं शती ई० के कदम्बवंशीय राजा शिवमृगेशवर्मा से तथा प्रो० ए० चक्रवर्ती ने प्रथम शती ई० के पल्लवराज शिवस्कन्द स्वामी से किया है। प्रो० ढाकी ने इस समीकरण को अस्वीकार करते हुए आठवीं शती ई० के किसी राजा से समीकरण करने के लिए गंगवंशीय राजा शिवमार द्वितीय को शिवकुमार महाराज घोषित कर दिया, जिससे कुन्दकुन्द को आठवीं शती ई० का सिद्ध किया जा सके।

इसी प्रकार आचार्य जयसेन ने 'पञ्चास्तिकाय' की तात्पर्यवृत्ति में कुन्दकुन्द को कुमारनन्दि-सिद्धान्तदेव का शिष्य बतलाया है। इनका समीकरण प्रो० ढाकी ने आठवीं शताब्दी ई० के एक कुमारनन्दी भट्टारक से किया है। ये दोनों समीकरण अप्रामाणिक

---

४. न्यायावतारवार्तिकवृत्ति / प्रस्तावना / पृ.१०३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हैं। इसका सप्रमाण स्पष्टीकरण 'आचार्य कुन्दकुन्द का समय' नामक दशम अध्याय (प्रकरण ६) में देखना चाहिए।

१६
अनेक दिगम्बरग्रन्थों के यापनीयग्रन्थ होने की कल्पना

सर्वप्रथम दिगम्बर विद्वान् पं० नाथूराम जी प्रेमी ने सन् १९३९ ई० में 'अनेकान्त' (मासिक) में 'यापनीयसाहित्य' शीर्षक से एक शोधलेख प्रकाशित किया था।[५] उसमें उन्होंने दिगम्बरग्रन्थ 'भगवती-आराधना' और उसकी 'विजयोदयाटीका' को यापनीय-आचार्यों द्वारा रचित बतलाया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'जैन साहित्य और इतिहास' के द्वितीय संस्करण (पृ. ५२१-५५३) में उमास्वामीकृत 'तत्त्वार्थसूत्र' एवं वट्टकेर-रचित 'मूलाचार' को भी यापनीयपरम्परा का ग्रन्थ बतलाया है।

'प्रेमी' जी से दिशानिर्देश पाकर श्वेताम्बरमुनि श्री कल्याणविजय जी ने अपने ग्रन्थ 'श्रमण भगवान् महावीर' (सन् १९४१) में 'भगवती-आराधना' और 'मूलाचार' को यापनीयपरम्परा के ग्रन्थों के रूप में उदाहृत किया है।

'प्रेमी' जी के ग्रन्थ से ही मार्गदर्शन प्राप्त कर दिगम्बर विदुषी श्रीमती डॉ० कुसुम पटोरिया ने 'यापनीय और उनका साहित्य' नामक ग्रन्थ में मूलाचार, भगवती-आराधना, उसकी विजयोदयाटीका, तत्त्वार्थसूत्र, सन्मतिसूत्र, हरिवंशपुराण तथा बृहत्कथा-कोश को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

इन समस्त ग्रन्थकारों द्वारा निर्मित भूमिका पर आरूढ़ होकर माननीय डॉ० सागरमल जी ने अपना विशाल ग्रन्थ 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' रचा और उसमें उपर्युक्त ग्रन्थों को शामिल कर निम्नलिखित १६ दिगम्बरग्रन्थों को यापनीय-परम्परा का ग्रन्थ बतलाया है—१. कसायपाहुड, २. कसायपाहुड-चूर्णिसूत्र, ३. षट्खण्डागम, ४. भगवती-आराधना, ५. भगवती-आराधना की विजयोदया टीका, ६. मूलाचार, ७. तिलोयपण्णत्ती, ८. रविषेणकृत पद्मपुराण, ९. वराङ्गचरित, १०. हरिवंशपुराण, ११. स्वयम्भूकृत पउमचरिउ, १२. बृहत्कथाकोश, १३. छेदपिण्ड, १४. छेदशास्त्र, १५. प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी, १६. बृहत्प्रभाचन्द्र-कृत तत्त्वार्थसूत्र।

१. गृध्रपिच्छाचार्यकृत दिगम्बरग्रन्थ तत्त्वार्थसूत्र को, जिसे पं० नाथूराम जी प्रेमी ने यापनीयग्रन्थ माना है और श्वेताम्बरपरम्परा श्वेताम्बरग्रन्थ मानती है, उसे डॉ० सागर-मल जी ने उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा अर्थात् श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा का ग्रन्थ घोषित किया है। २. आचार्य सिद्धसेनकृत सन्मतिसूत्र भी दिगम्बरग्रन्थ है।

---

५. जैन साहित्य और इतिहास / द्वितीय संस्करण / पृ.५६-७३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उसे श्वेताम्बर अपनी परम्परा का ग्रन्थ मानते हैं, किन्तु डॉ० सागरमल जी ने उसे भी उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा में रचित बतलाया है। इसके विपरीत डॉ० ए० एन० उपाध्ये और उनका अनुसरण करनेवाली श्रीमती डॉ० कुसुम पटेरिया ने उसकी यापनीयग्रन्थ के रूप में पहचान की है। इस प्रकार १६ दिगम्बर ग्रन्थों को यापनीयपरम्परा का और २ ग्रन्थों को यापनीयपरम्परा का भी, श्वेताम्बरपरम्परा का भी तथा श्वेताम्बरों और यापनीयों की कपोल-कल्पित मातृपरम्परा का भी बतलाया गया है। श्वेताम्बरमुनि श्री हेमचन्द्रविजय जी ने कसायपाहुड और उसके चूर्णिसूत्रों को श्वेताम्बरग्रन्थ सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

इन महानुभावों ने यह महान् कार्य पूर्णतः अटकलों और अपनी स्वच्छन्द कल्पनाओं के आधार पर किया है, जिसके प्रमाण प्रस्तुत ग्रन्थ के उत्तरवर्ती अध्यायों में द्रष्टव्य हैं।

आगे निर्दिष्ट चार मतों (क्र. १७-२०) की कल्पना 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने दिगम्बराचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थों को यापनीयों द्वारा रचित सिद्ध करने के लिए की है।

१७

गुणस्थान-सिद्धान्त के विकास की कल्पना

लेखक ने यह कल्पना की है कि चौदह गुणस्थानों का उपदेश जिनेन्द्रदेव ने नहीं दिया था, अपितु उत्तरकालीन आचार्यों ने नये-नये गुणस्थानों का आविष्कार करते हुए चौदह गुणस्थानों का विकास किया है। यह कार्य चौथी शताब्दी ई० के अन्त तक पूर्ण हुआ।

इस कल्पित मत का प्रयोग लेखक ने यह सिद्ध करने के लिए किया है कि जिन कसायपाहुड, षट्खण्डागम, भगवती-आराधना आदि दिगम्बरग्रन्थों में गुणस्थानों का पूर्ण वर्णन मिलता है अथवा गुणस्थानानुसार जीव के परिणामों का निरूपण हुआ है, उनकी रचना चौथी शताब्दी ई० के पश्चात् हुई है। और चूँकि इन ग्रन्थों में श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाएँ मिलती हैं, अतः ये उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा के उत्तराधिकारियों द्वारा रचित हैं। यतः श्वेताम्बरग्रन्थ अर्धमागधी प्राकृत में रचे गये हैं और उपर्युक्त ग्रन्थों की भाषा शौरसेनी है, अतः ये श्वेताम्बरग्रन्थ नहीं है। इसलिए निश्चित होता है कि इनकी रचना उक्त परम्परा के दूसरे उत्तराधिकारी **यापनीयों** द्वारा की गई है। इस गुणस्थान-विकासवादी कल्पना की कल्पितता 'आचार्य कुन्दकुन्द का समय' नामक दशम अध्याय में सिद्ध की जायेगी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

१८

सप्तभंगी के विकास की कल्पना

सप्तभंगी-विकासवाद भी डॉ० सागरमल जी की ऐसी ही कल्पना है। वे लिखते हैं—"उमास्वाति के **'तत्त्वार्थ'** में गुणस्थान और सप्तभंगी की अनुपस्थिति स्पष्टरूप से यह सूचित करती है कि ये अवधारणाएँ उनके काल तक अस्तित्व में नहीं आयी थीं, अन्यथा आध्यात्मिक विकास और कर्मसिद्धान्त के आधारभूत गुणस्थानसिद्धान्त को वे कैसे छोड़ सकते थे?" (जै.ध.या.स./पृ.२४९-२५०)। वे आगे लिखते हैं—"फिर भी इतना सुनिश्चित है कि उमास्वाति के तत्त्वार्थसूत्र का आधार वे ही आगम ग्रन्थ रहे हैं, जो क्वचित् पाठभेदों के साथ श्वेताम्बरों में आज भी प्रचलित हैं और यापनीयों में भी प्रचलित थे। इससे इस भ्रान्ति का भी निराकरण हो जाता है कि तत्त्वार्थसूत्र की रचना का आधार षट्खण्डागम और कुन्दकुन्द के ग्रन्थ हैं, क्योंकि ये ग्रन्थ तत्त्वार्थ-सूत्र की अपेक्षा पर्याप्त परवर्ती हैं और गुणस्थान, सप्तभंगी आदि परवर्ती युग में विकसित अवधारणाओं के उल्लेखों से युक्त हैं।" (जै.ध.या.स./पृ.२५२)।

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि डॉ० सागरमल जी ने नयप्रमाण-सप्तभंगी को भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत न मान कर परवर्ती आचार्यों द्वारा चौथी शताब्दी ई० के अन्त तक विकसित किया गया माना है और ऐसा मानने का उद्देश्य है आचार्य धरसेन एवं कुन्दकुन्द को उमास्वाति से अर्वाचीन सिद्ध करना। इस सप्तभंगी-विकासवाद की कपोलकल्पितता भी दशम अध्याय में उद्घाटित की जायेगी।

१९

यापनीयों द्वारा अर्धमागधी-आगमों के शौरसेनीकरण की कल्पना

तीसरी कल्पना यह की गई है कि उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा (श्वेताम्बर-यापनीयों की मातृपरम्परा) के आगम अर्धमागधी प्राकृत में थे। यापनीयों को जब वे उत्तराधिकार में प्राप्त हुए, तब उन्होंने उन्हें शौरसेनी प्राकृत में रूपान्तरित कर दिया। इसलिए शौरसेनी में होते हुए भी वे दिगम्बरग्रन्थ नहीं है, अपितु यापनीयग्रन्थ हैं।

यहाँ एक अत्यन्त सीधासादा प्रश्न उठता है कि आखिर यापनीयों ने अर्धमागधी आगमों का शौरसेनीकरण क्यों किया, जब कि अर्धमागधी श्वेताम्बरों के अनुसार दिव्यध्वनि की भाषा थी और पाँचवीं शताब्दी ई० में वलभीवाचना के समय तक अच्छी तरह समझी और प्रयुक्त की जाती थी? इससे उन्हें क्या लाभ हुआ? इस प्रश्न का कोई समाधान न होने से सिद्ध है कि यह मात्र एक कपोलकल्पना है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

२०

दिगम्बरग्रन्थों में यापनीयमत-विरुद्ध कथनों के प्रक्षेप की कल्पना

दिगम्बरग्रन्थों को यापनीयग्रन्थ सिद्ध करने का रास्ता साफ करने के लिए मान्य ग्रन्थ-लेखक ने चौथी कल्पना यह की है कि 'तिलोयपण्णत्ति' आदि ग्रन्थों में जो यापनीयमत-विरोधी कथन उपलब्ध होते हैं, वे प्रक्षिप्त हैं। लेखक की यह कल्पना अराजकता मचा देनेवाली है। इस तरह तो किसी भी सम्प्रदाय के ग्रन्थ को किसी भी अन्य सम्प्रदाय का सिद्ध किया जा सकता है। श्वेताम्बर-आगमों के दिगम्बरमत-विरोधी अंशों को प्रक्षिप्त मानकर उन्हें दिगम्बरपरम्परा का सिद्ध किया जा सकता है और कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के श्वेताम्बरमत-विरोधी कथनों को प्रक्षिप्त कहकर उन्हें श्वेताम्बरग्रन्थ घोषित किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त अन्य मिथ्यामतों की भी कल्पना की गई है, जिनका निर्देश यथास्थान किया जायेगा।

२१

स्वाभीष्ट कल्पित-शब्दादि का आरोपण

उक्त ग्रन्थ-लेखक महोदय ने दिगम्बरग्रन्थों में प्ररूपित मौलिक शब्द, अर्थ और लक्षण को अमान्य कर उनके स्थान में स्वाभीष्ट कल्पित शब्द, अर्थ और लक्षण का आरोपण करके भी स्वाभीष्ट की सिद्धि का प्रयत्न किया है। यथा—

१. **कल्पित शब्द**—गुणधर, धरसेन, पुष्पदन्त और भूतबलि नामों के प्रयोग को गलत कहकर कल्पना की गई है कि वे वस्तुतः श्वेताम्बर-स्थविरावलियों में उल्लिखित गुणन्धर, वज्रसेन, पुसगिरि और भूतदिन्न नाम हैं, इसलिए वे दिगम्बराचार्यों के नाम न होकर उत्तरभारत के सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-संघ के (जिससे उन्होंने श्वेताम्बरों और यापनीयों की उत्पत्ति मानी है) आचार्यों के नाम हैं। अतः उनके द्वारा रचित कसायपाहुड और षट्खण्डागम ग्रन्थ भी उसी परम्परा के हैं, दिगम्बरपरम्परा के नहीं।

२. **कल्पित अर्थ**—'आर्य' और 'यति' शब्दों को यापनीय-आचार्यों की उपाधि मान कर शिवार्य और यतिवृषभ को यापनीय आचार्य मान लिया गया है। अपराजितसूरि ने अपवादलिंग का अर्थ 'गृहस्थलिंग' किया है। उसे अस्वीकार कर उसका 'सवस्त्र मुनिलिंग' अर्थ कल्पित किया गया है, और इस कल्पित अर्थ को हेतु बनाकर 'भगवती-आराधना' को सवस्त्रमुक्ति का समर्थक यापनीयग्रन्थ घोषित कर दिया गया है। जो 'अनुयोगद्वार' शब्द 'निरूपणद्वार' के अर्थ में प्रयुक्त है, उसके विषय में यह कल्पना कर ली गयी है कि वह 'अनुयोगद्वारसूत्र' नामक श्वेताम्बरग्रन्थ का वाचक है, अतः

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उसका उल्लेख करने से 'भगवती-आराधना' ग्रन्थ उत्तरभारतीय सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-संघ के उत्तराधिकारी यापनीय आचार्य द्वारा रचित है।

३. **कल्पित लक्षण**—सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि यापनीयसिद्धान्तों का प्रतिपादक होना यापनीयग्रन्थ का लक्षण है। ऐसे ग्रन्थ का कर्त्ता होना यापनीयग्रन्थकार का लक्षण है। किन्तु 'भगवती-आराधना' में ये लक्षण उपलब्ध नहीं होते । फिर भी उसके कर्त्ता शिवार्य को इस कारण यापनीय मान लिया गया है कि उनके गुरुओं के नाम दिगम्बर पट्टावलियों में नहीं मिलते। इस प्रकार कल्पित लक्षण के आधार पर एक दिगम्बरग्रन्थ पर यापनीयग्रन्थ की मोहर लगा दी। कसायपाहुड, षट्खण्डागम, भगवती-आराधना, मूलाचार आदि दिगम्बरग्रन्थों में भी यापनीयग्रन्थ के लक्षण नहीं है, किन्तु उनकी कुछ गाथाएँ श्वेताम्बरग्रन्थों की गाथाओं से मिलती-जुलती हैं, अतः इसे ही यापनीयग्रन्थ का लक्षण मान लिया गया और इस कल्पित लक्षण के आधार पर निर्णय दे दिया गया कि ये ग्रन्थ यापनीय-आचार्यों की कृतियाँ हैं।

इन काल्पनिक मतों एवं कल्पित शब्दादि को हेतुरूप में प्रस्तुत कर श्वेताम्बर सन्तों एवं विद्वानों ने दिगम्बरमत को अर्वाचीन, अतीर्थंकर-प्रणीत निह्नवमत, लज्जाजनक, संयमविरोधी, मोक्ष के प्रतिकूल एवं अग्राह्य, आचार्य कुन्दकुन्द को विक्रम की छठी शताब्दी में उत्पन्न तथा दिगम्बरसाहित्य को यापनीय या श्वेताम्बर आचार्यों द्वारा रचित सिद्ध करने की चेष्टा की है। इसलिए इन मतों की कपोलकल्पितता का उद्घाटन सर्वप्रथम आवश्यक है, जिससे जहाँ भी इनका हेतुरूप में प्रयोग कर उपर्युक्त निर्णय करने का प्रयत्न किया गया है, वहाँ पाठकों को यह समझने में देर न लगे कि यह हेतु कपोलकल्पित है, इसलिए इससे किया गया निर्णय भी कपोलकल्पित है, मिथ्या है। अतः अगले अध्याय में यही किया जा रहा है।

इन हेतुओं की कपोलकल्पितता दृष्टिगोचर हो जाने पर पाठक पायेंगे कि ऐसा कोई भी हेतु विद्यमान नहीं है, जो दिगम्बरमत को अर्वाचीन, अतीर्थंकर-प्रणीत निह्नवमत, लज्जाजनक, संयमविरोधी एवं मोक्षमार्ग के प्रतिकूल तथा दिगम्बरग्रन्थों को यापनीयग्रन्थ या श्वेताम्बरग्रन्थ एवं आचार्य कुन्दकुन्द को ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के बाद का सिद्ध कर सके। विभिन्न अध्यायों में प्रस्तुत किये जानेवाले प्रमाणों और युक्तियों का परामर्श कर विज्ञ पाठकों के ज्ञानचक्षु इस तथ्य का साक्षात्कार करेंगे कि सवस्त्रमुक्ति-विरोधी दिगम्बरपरम्परा ऐतिहासिक दृष्टि से कम से कम पाँच हजार वर्ष पुरानी है और कसायपाहुड, षट्खण्डागम, भगवती-आराधना, मूलाचार, तत्त्वार्थसूत्र आदि ग्रन्थों के कर्त्ता दिगम्बराचार्य ही हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय अध्याय

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वितीय अध्याय

काल्पनिक हेतुओं की कपोलकल्पितता का उद्घाटन

प्रथम प्रकरण

तीर्थंकरों का सवस्त्रतीर्थोपदेशकत्व प्रमाणविरुद्ध

श्वेताम्बराचार्य श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण (सातवीं शताब्दी ई०) ने यह लिखा है कि कोई भी तीर्थंकर सर्वथा अचेल नहीं थे। सभी एक वस्त्र ग्रहण कर प्रव्रजित हुए थे, जिससे लोगों को यह उपदेश मिल सके कि सवस्त्र रहने पर ही साधु को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार तीर्थंकरों ने सचेलधर्म (जिसमें कोई न कोई वस्त्र शरीर पर रखना पड़ता है) का ही प्रवर्तन किया था।[१] उन्होंने कहा है कि भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत आचार दो प्रकार का था–जिनकल्प और स्थविरकल्प। स्थविरकल्पिक श्रमण कटिवस्त्र या चोलपट्ट धारण करते थे तथा दो चादर और एक कम्बल भी रखते थे। आज भी उनके लिए यही नियम है। वस्त्रलब्धिरहित जिनकल्पिक कटिवस्त्र नहीं पहनते थे, किन्तु चादर या कम्बल से शरीर आच्छादित करते थे और मुखवस्त्रिका एवं ऊननिर्मित रजोहरण ग्रहण करते थे। वस्त्रलब्धिमान् जिनकल्पिकों का शरीर अलौकिक आवरण से ढँक जाता था, इसलिए उन्हें न कटिवस्त्र धारण करने की आवश्यकता होती थी, न चादर या कम्बल रखने की। तथापि उनके लिए मुखवस्त्रिका और रजोहरण ग्रहण करना अनिवार्य था।[२] इस प्रकार भगवान् महावीर की श्रमण परम्परा के साधु किसी न किसी रूप में सचेल (वस्त्रसहित) ही होते आये हैं।[३] निष्कर्ष यह कि जिनभद्रगणी

---

१. क—तहवि गहिएगवत्था सवत्थतित्थोवएसणत्थं ति।
अभिनिक्खमंति सव्वे तम्मि चुएऽचेलया हुंति॥ २५८३॥ विशेषावश्यकभाष्य।
ख—"सवस्त्रमेव तीर्थं 'सवस्त्रा एव साधवास्तीर्थे चिरं भविष्यन्ति' इत्यस्यार्थस्योपदेशनं ज्ञापनं तदर्थं गृहीतैकवस्त्राः सर्वेऽपि तीर्थकृतोऽभिनिष्क्रामन्तीति। तस्मिंश्च वस्त्रे च्युते क्वापि पतितेऽचेलका वस्त्ररहितास्ते भवन्ति, न पुनः सर्वदा। ततः 'अचेलकाश्च जिनेन्द्राः' इत्यैकान्तिकं यदुक्तं तद् भवतोऽनभिज्ञत्वसूचकमेवेति भावः।" हेम.वृत्ति / विशे.भा. / गा. २५८३।

२. देखिये, इसी अध्याय का तृतीय प्रकरण/शीर्षक ३.३.१.'जिनकल्पी भी सचेल और अनग्न।'

३. क—जिणकप्पियादओ पुण सोवहवो सव्वकालमेगंतो।

जी की कल्पनानुसार भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट धर्म सर्वथा अचेल नहीं था, कोई न कोई वस्त्र तीर्थंकरों और जिनकल्पिक साधुओं के भी शरीर पर रहता था।

विरोधी प्रमाण

किन्तु प्रमाण इसके विरुद्ध उपलब्ध होते हैं। सिन्धुघाटी के उत्खनन में मोहेनजोदड़ो और हड़प्पा (जो अब पाकिस्तान में हैं) से ई० पू० २४०० वर्ष पहले की सिन्धुसभ्यता के अवशेष प्राप्त हुए हैं, जिनमें हड़प्पा से एक मस्तकविहीन कायोत्सर्ग-ध्यानमुद्रा में नग्न मूर्ति उपलब्ध हुई है। पुरातत्त्वविदों का मत है कि यह जैनतीर्थंकर या दिगम्बरजैन साधु की प्रतिमा है। लोहानीपुर (पटना, बिहार) में भी बिलकुल ऐसी ही मौर्यकालीन (ई० पू० तृतीय शताब्दी की) जिनप्रतिमा प्राप्त हुई है। दोनों प्रतिमाओं में आश्चर्यजनक साम्य है। इससे इस बात की पुष्टि होती है कि हड़प्पा से प्राप्त उक्त प्रतिमा जिनप्रतिमा ही है। मथुरा में प्राप्त कुषाणकालीन (ई० प्रथम शताब्दी की) जिन प्रतिमाएँ भी सर्वथा नग्न हैं। उनके किसी भी भाग पर कोई वस्त्र नहीं है। गुप्तकालीन (चतुर्थ शती ई० की) जैनमूर्तियाँ भी ऐसी ही हैं।[४]

ऋग्वेद (१५०० ई० पू०) में वातरशन (वायुरूपी वस्त्रवाले) मुनियों एवं शिश्नदेवों (नग्नदेवों) का वर्णन किया गया है। उसमें ऋषभ और अरिष्टनेमि के नाम भी हैं। बौद्ध साहित्य में भी निर्ग्रन्थ साधुओं की चर्चा की गई है[५] और सम्राट् अशोक के स्तम्भलेखों में निर्ग्रन्थों का उल्लेख हैं। 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बरजैन मुनियों के लिए ही प्रयुक्त होता था, श्वेताम्बरमुनि 'श्वेतपट श्रमण' और यापनीयमुनि 'यापनीय' नाम से जाने जाते थे, यह दक्षिण के कदम्बवंशीय राजाओं (पाँचवीं शताब्दी ई०) के अभिलेखों से स्पष्ट है।[६]

ई० पू० चतुर्थ शताब्दी के वैदिक-परम्परा के ग्रन्थ महाभारत में 'नग्नक्षपणक' शब्द से दिगम्बरजैन मुनि का वर्णन किया गया है। लगभग इसी समय के 'चाणक्यशतक' (सम्राट् चन्द्रगुप्त के प्रधानमंत्री चाणक्य के द्वारा रचित) में भी 'नग्नक्षपणक' शब्द का प्रयोग हुआ है। तीसरी-चौथी शताब्दी ई० में विष्णुशर्मा द्वारा रचित 'पञ्चतन्त्र' में धर्मवृद्धि का आशीर्वाद देनेवाले नग्नक्षपणकों की कथा वर्णित है। तृतीय-चतुर्थ शताब्दी

उवगरणमाणमेसिं पुरिसाविक्खाए बहुभेयं॥ २५८४॥ विशेषावश्यकभाष्य।

ख—"--- यतस्तीर्थकरा अपि पूर्वोक्तन्यायेन न तावदेकान्तोऽचेलकाः। जिनकल्पिक-स्वयम्बुद्धादयः पुनः सर्वकालमेकान्तेन सोपधय एवेति।" हेम.वृत्ति/विशे.भा./गा.२५८४।

४. देखिये, पंचम अध्याय : 'पुरातत्त्व में दिगम्बरपरम्परा के प्रमाण।'

५. देखिये, चतुर्थ अध्याय : 'जैनेतर साहित्य में दिगम्बर जैन मुनियों की चर्चा।'

६. देखिये, इसी (द्वितीय) अध्याय का षष्ठ प्रकरण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ई० के 'विष्णुपुराण' में मयूरपिच्छीधारी दिगम्बरमुनि के रूप में मायामोह को जैनधर्म का प्रवर्तक बतलाया गया है। पाँचवीं शती ई० में समुत्पन्न प्रसिद्ध ज्योतिश्शास्त्री वराहमिहिर ने 'नग्न', 'दिग्वासस्' और 'निर्ग्रन्थ' शब्दों से दिगम्बरजैन मुनियों के अस्तित्व का ज्ञापन किया है। सातवीं शती ई० के सुप्रसिद्ध संस्कृतगद्यकवि बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' में दिगम्बरजैन मुनियों के लिए 'क्षपणक', 'नग्नाटक' और 'मयूरपिच्छधारी' शब्दों का प्रयोग हुआ है।[७]

श्वेताम्बरग्रन्थ 'उत्तराध्ययनसूत्र' में भी महावीर द्वारा प्रवर्तित तीर्थ को अचेलक कहा गया है, केवल भगवान् पार्श्वनाथ के धर्म को संतरुत्तर (अचेल-सचेल द्विविधरूप) बताया है।[८] श्री हरिभद्रसूरि ने कहा है कि भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर, दोनों ने अचेलक धर्म का उपदेश दिया था।[९]

इन पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक प्रमाणों से सिद्ध है कि भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक चौबीसों तीर्थंकर सर्वथा अचेल (सर्वांग एवं सर्वकाल वस्त्ररहित) थे और उनकी अनुगामिनी श्रमणपरम्परा भी सर्वथा अचेल थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'तीर्थंकरों ने सवस्त्रतीर्थ का उपदेश दिया था' यह मत कपोलकल्पित है।

---

७. देखिये, चतुर्थ अध्याय।

८. अचेलगो य जो धम्मो जो इमो सन्तरुत्तरो।
देसिदो वद्धमाणेण पासेण य महाजसा॥ २३/२९॥ उत्तराध्ययनसूत्र।

९. आचेलक्को धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स।
मज्झिमगाण जिणाणं होइ सचेलो अचेलो य॥ १२॥ पञ्चाशक।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

ई० के 'विष्णुपुराण' में मयूरपिच्छीधारी दिगम्बरमुनि के रूप में मायामोह को जैनधर्म का प्रवर्तक बतलाया गया है। पाँचवीं शती ई० में समुत्पन्न प्रसिद्ध ज्योतिश्शास्त्री वराहमिहिर ने 'नग्न', 'दिग्वासस्' और 'निर्ग्रन्थ' शब्दों से दिगम्बरजैन मुनियों के अस्तित्व का ज्ञापन किया है। सातवीं शती ई० के सुप्रसिद्ध संस्कृतगद्यकवि बाणभट्ट की 'कादम्बरी' और 'हर्षचरित' में दिगम्बरजैन मुनियों के लिए 'क्षपणक', 'नग्नाटक' और 'मयूरपिच्छधारी' शब्दों का प्रयोग हुआ है।[७]

श्वेताम्बरग्रन्थ 'उत्तराध्ययनसूत्र' में भी महावीर द्वारा प्रवर्तित तीर्थ को अचेलक कहा गया है, केवल भगवान् पार्श्वनाथ के धर्म को संतरुत्तर (अचेल-सचेल द्विविधरूप) बताया है।[८] श्री हरिभद्रसूरि ने कहा है कि भगवान् ऋषभदेव और भगवान् महावीर, दोनों ने अचेलक धर्म का उपदेश दिया था।[९]

इन पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक प्रमाणों से सिद्ध है कि भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक चौबीसों तीर्थंकर सर्वथा अचेल (सर्वांग एवं सर्वकाल वस्त्ररहित) थे और उनकी अनुगामिनी श्रमणपरम्परा भी सर्वथा अचेल थी। इससे स्पष्ट हो जाता है कि 'तीर्थंकरों ने सवस्त्रतीर्थ का उपदेश दिया था' यह मत कपोलकल्पित है।

---

७. देखिये, चतुर्थ अध्याय।

८. अचेलगो य जो धम्मो जो इमो सन्तरुत्तरो।
देसिदो वद्धमाणेण पासेण य महाजसा॥ २३/२९॥ उत्तराध्ययनसूत्र।

९. आचेलक्को धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स।
मज्झिमगाण जिणाणं होइ सचेलो अचेलो य॥ १२॥ पञ्चाशक।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को युक्तिसंगत बनाने के लिए उन्होंने यह कथा गढ़ी है कि 'कुन्दकुन्द आरंभ में शिवभूति द्वारा प्रवर्तित यापनीयसंघ में दीक्षित हुए थे। किन्तु आगे चलकर उन्होंने यापनीयों द्वारा मान्य श्वेताम्बरीय आगमों को अस्वीकार कर दिया और नवीन साहित्य रचकर उसमें यापनीयों के आपवादिक सवस्त्रलिंग, स्त्रीमुक्ति, केवलिकवलाहार आदि सिद्धान्तों को जिनोपदेश के विरुद्ध ठहराया। यापनीयसंघ के अधिकांश साधुओं ने कुन्दकुन्द के इन नवीन विचारों का विरोध किया, किन्तु अनेक साधु उनके अनुयायी बन गये। (श्र.भ.म./पृ.३०२-३०६)। इस प्रकार कुन्दकुन्द ने सवस्त्रमुक्ति स्त्रीमुक्ति और केवलि-कवलाहार के निषेधक दिगम्बर-सम्प्रदाय की नींव रखी।' (श्र.भ.म./पृ.३२८)।

मुनि जी ने कुन्दकुन्द को दिगम्बरमत का संस्थापक सिद्ध करने के लिए बोटिक शिवभूति को यापनीयमत का प्रवर्तक घोषित करते हुए कहा है कि कुन्दकुन्द प्रथमतः उसके संघ में दीक्षित हुए थे। किन्तु, मुनि जी का यह कथन सत्य नहीं है। शिवभूति यापनीयमत का प्रवर्तक नहीं था, यह उसी बोटिकमतोत्पत्ति कथा से सिद्ध होता है, जिसके आधार पर मुनि जी ने उसे यापनीयमत का प्रवर्तक बतलाया है। अतः सत्य का साक्षात्कार करने के लिए उस बोटिकमतोत्पत्तिकथा का अनुशीलन करना आवश्यक है। वह नीचे दी जा रही है।

१
बोटिकमतोत्पत्ति कथा

'आवश्यकमूलभाष्य' की निम्नलिखित गाथाओं में कहा गया है कि वीर नि० सं० ६०९ में बोटिक शिवभूति ने बोटिक (दिगम्बर) मत चलाया था—

छव्वाससयाइं नवुत्तराइं तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा॥ १४५॥

रहवीरपुरं नगरं दीवगमुज्जाण अज्जकण्हे य।
सिवभूइस्सुवहिम्मि य पुच्छा थेराण कहणा य॥ १४६॥

ऊहाए पण्णत्तं बोडिय-सिवभूइ-उत्तराहि इमं।
मिच्छादंसणमिणमो रहवीरपुरे समुप्पण्णं ॥ १४७॥

बोडिय-सिवभूईओ बोडियलिंगस्स होइ उप्पत्ती।
कोडिण्ण-कोट्टवीरा परंपराफासमुप्पण्णा॥ १४८॥[१०]

१०. क—आवश्यकनिर्युक्ति / गाथा ७८३ की हारिभद्रीयवृत्ति में उद्धृत।

अनुवाद—''भगवान् महावीर के मुक्ति को प्राप्त होने के ६०९ वर्ष बाद 'रहवीरपुर' नामक नगर में बोटिकमत की उत्पत्ति हुई। (१४५)। रहवीरपुर नगर के दीपक उद्यान में गुरु आर्यकृष्ण से शिवभूति ने उपधि (परिग्रह) के विषय में प्रश्न किया था। गुरु ने उसका उत्तर भी दिया था। (१४६)। फिर भी बोटिक शिवभूति और उसकी बहिन उत्तरा के द्वारा स्वबुद्धि से यह मिथ्यादर्शन रहवीरपुर में प्रचलित किया गया। (१४७)। बोटिक शिवभूति से बोटिकलिंग की उत्पत्ति हुई और कौण्डिन्य तथा कोट्टवीर नामक शिष्यों की परम्परा से उसका विकास हुआ।'' (१४८)।

श्वेताम्बरसाहित्य में दिगम्बर साधु के लिए 'बोटिक' शब्द का प्रयोग हुआ है, यथा—'**क्षपणको बोटिको।**'[११] '**क्षपणको दिगम्बरः।**'[१२] इससे सिद्ध है कि उपर्युक्त गाथाओं में दिगम्बरमत की ही उत्पत्ति का वर्णन किया गया है।

छठी-सातवीं शताब्दी ई० के श्वेताम्बराचार्य श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने भी आवश्यक-मूलभाष्य की उपर्युक्त गाथाएँ 'विशेषावश्यकभाष्य' (गा.२५५०-५२) में समाविष्ट कर बोटिक शिवभूति को बोटिकमत का प्रवर्तक कहा है। और बोटिकमत से उनका आशय दिगम्बरमत से है, क्योंकि उन्होंने विशेषावश्यकभाष्य में लिखा है कि जिनकल्प ग्रहण करने के लिए उद्यत शिवभूति ने गुरु के द्वारा बहुत समझाये जाने पर भी मिथ्यात्व के वशीभूत हो जिनमत में अश्रद्धा करते हुए वस्त्र त्याग दिये—

इय पण्णविओ वि बहुं सो मिच्छत्तोदयाकुलियभावो।
जिणमयमसद्दहंतो छड्डियवत्थो समुज्जाओ॥ २६०६॥

गणी जी ने कहा है कि बोटिकों के मत, लिंग (वेश) और चर्या जैनों (श्वेताम्बरों)

ख—'आवश्यकमूलभाष्य' आवश्यकसूत्र पर लिखे गये मूलभाष्य का नाम है। ''आवश्यकसूत्र पर तीन भाष्य लिखे गये हैं : १. मूलभाष्य, २. भाष्य और ३. विशेषावश्यकभाष्य। प्रथम दो भाष्य बहुत ही संक्षिप्तरूप में लिखे गये और उनकी अनेक गाथाएँ विशेषावश्यकभाष्य में सम्मिलित कर ली गयीं। --- उपलब्ध भाष्यों की प्रतियों के आधार पर केवल दो भाष्यकारों के नाम का पता लगता है। वे हैं आचार्य जिनभद्र और संघदासगणी। आचार्य जिनभद्र ने दो भाष्य लिखे हैं : विशेषावश्यकभाष्य और जीतकल्पभाष्य। संघदासगणी के भी दो भाष्य हैं : बृहत्कल्पभाष्य और पंचकल्पभाष्य।'' (डॉ. मोहनलाल मेहता : जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास / भाग ३/पृ. १२९-१३०)। इस कथन से ज्ञात होता है कि 'मूलभाष्य' और 'भाष्य' के कर्त्ताओं के नाम अज्ञात हैं।

११. प्रवचनपरीक्षा / वृत्ति १/२/३-४/पृ.६६।

१२. वही /१/१/८/ पृ.१९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के मत, लिंग और चर्या से भिन्न हैं, इसलिए बोटिक मिथ्यादृष्टि माने गये हैं—"**भिन्नमय-लिंगचरिया मिच्छद्दिट्ठि त्ति बोडियाऽभिमया।**" (विशे.भा./गा.२६२०)। इससे सूचित होता है कि शिवभूति नग्न तो हो गया था, किन्तु वह मुखवस्त्रिका और रजोहरण से युक्त नहीं था, जो श्वेताम्बर जिनकल्पी साधु के न्यूनतम आवश्यक उपकरण हैं।[१३] इसलिए उसका लिंग श्वेताम्बरागम-कथित जिनकल्पी-साधुसदृश नहीं था। वृत्तिकार मलधारी हेमचन्द्रसूरि (१२वीं शती ई०) ने भी कहा है कि बोटिक तो द्रव्यलिंग की अपेक्षा भी (श्वेताम्बर जिनकल्पियों और स्थविरकल्पियों से) भिन्न हैं।[१४] यहाँ स्मरणीय है कि यापनीयों का मत श्वेताम्बरों के मत से भिन्न नहीं था तथा यापनीय-स्थविरकल्पी (सवस्त्र) साधुओं का लिंग और चर्या भी श्वेताम्बर साधुओं के लिंग और चर्या से समानता रखते थे। मात्र दिगम्बरसाधु ही इन तीनों बातों में श्वेताम्बर साधुओं से भिन्न होते हैं। अतः जिनभद्रगणी ने शिवभूति को दिगम्बरमत का ही प्रवर्तक कहा है।

कल्पसूत्र के व्याख्याकार समयसुन्दरगणी (१७ वीं शती ई०) ने भी बोटिकमत का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि वीर निर्वाण संवत् ६०९ में बोटिकमत अर्थात् दिगम्बरमत उत्पन्न हुआ था—"**वीरात् सं० ६०९ वर्षे बोटकमतं जातं, दिगम्बरमत इत्यर्थः।**" (कल्पलताव्याख्या / कल्पसूत्र / अष्टम व्याख्यान / पृ.२३५)।

दिगम्बरमत के प्रवर्तक एवं प्रवृत्तिकाल के विषय में श्वेताम्बराचार्यों द्वारा की गई यह सबसे पुरानी कल्पना है।

२
बोटिकमतोत्पत्ति कथा का विस्तार से वर्णन

विशेषावश्यकभाष्य (गा. २५५१-२५५२) की वृत्ति में श्री मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने बोटिकमतोत्पत्ति-कथा का संस्कृत में विस्तार से वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

"रथवीरपुरं नाम नगरम्। तद्बहिश्च दीपकाभिधानमुद्यानम्। तत्र चार्यकृष्णनामानः सूरयः समागताः तस्मिंश्च नगरे सहस्रमल्लः शिवभूतिर्नाम राजसेवकः समस्ति। स च राजप्रसादाद् विलासान् कुर्वन् नगरमध्ये पर्यटति। रात्रेश्च प्रहरद्वयेऽतिक्रान्ते गृहमागच्छति।

---

१३. "केषाञ्चिज्जिनकल्पानां रजोहरणं मुखवस्त्रिका चेति द्विविध उपधिः। अन्येषां तु कल्पेन सह त्रिविधः, कल्पद्वयेन तु सह चतुर्विधः, कल्पत्रयेण सह पञ्चविधः---।" हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा. २५५१-५२।

१४. "अष्टमं नगरं द्रव्यलिङ्गमात्रेणापि भिन्नानां सर्वापलापिनां महामिथ्यादृशां वक्ष्यमाणानां बोटिकनिह्नवानां लाघवार्थमुत्पत्तिस्थानमुक्तम्।" हेम. वृत्ति / विशेषा.भा. / गा.२३०३।

तत एतदीयभार्या तन्मातरं भणति—'निर्वेदिताऽहं त्वत्पुत्रेण, न खल्वेष रात्रौ वेलायां कदाचिदप्यागच्छति। तत उज्जागरकेण बुभुक्षया च बाध्यमाना प्रत्यहं तिष्ठामि।' ततस्तया प्रोक्तम्—'वत्से! यद्येवं, तर्हि त्वमद्य स्वपिहि, स्वयमेवाहं जागरिष्यामि।' ततः कृतं वध्वा तथैव, इतरस्यास्तु जाग्रत्या रात्रिप्रहरद्वयेऽतिक्रान्ते समागत्य शिवभूतिना प्रोक्तम्—'द्वारमुद्घाटयत।' ततः प्रकुपितया मात्रा प्रोक्तम्—'दुर्नयविधे! यत्रैतस्यां वेलायां द्वाराण्युद्घाटितानि भवन्ति तत्र गच्छ, न पुनरेवं तव पृष्ठलग्नः कोऽप्यत्र मरिष्यति।' ततः कोपाऽहङ्काराभ्यां प्रेर्यमाणोऽसौ निर्गतः। पर्यटता चोद्घाटितद्वारः साधूपाश्रयो दृष्टः। तत्र च साधवः कालग्रहणं कुर्वन्ति। तेषां च पार्श्वे तेन वन्दित्वा व्रतं याचितम्। तैश्च 'राजवल्लभः, मात्रादिभिरमुत्कलितश्च' इति न दत्तम्। ततः खेलमल्लकाद् (दीक्षां) गृहीत्वा स्वयमेव लोचः कृतः। साधुभिर्लिङ्गं समर्पितम्। विहृताश्च सर्वेऽप्यन्यत्र। कालान्तरेण पुनरपि च तत्रागताः। ततो राज्ञा शिवभूतेर्बहुमूल्यं कम्बलरत्नं दत्तम्। तत आचार्यैः शिवभूतिरुक्तः—'किमनेन तव साधूनां मार्गादिष्वनेकानर्थहेतुना गृहीतेन? ततस्तेन गुर्वप्रतिभासेनापि संगोप्य मूर्च्छया तद् विधृतम्। गोचरचर्याभिश्चागतः प्रत्यहं तदसौ सम्भालयति, न तु क्वचिदपि व्यापारयति। ततः 'गुरुभिर्मूर्च्छितोऽयमत्र' इति ज्ञात्वाऽन्यत्र दिने तमनापृच्छ्यैव बहिर्गतस्य परोक्षे तत् कम्बलरत्नं पाटयित्वा साधूनां पादप्रोञ्छनकानि कृतानि। ततो ज्ञातव्यतिकरः कषायितोऽसौ तिष्ठति। अन्यदा च सूरयो जिनकल्पिकान् वर्णयन्ति, तद्यथा—

जिणकप्पिया य दुविहा पाणिपाया पडिग्गहधरा य।
पाउरणमपाउरणा इक्किका ते भवे दुविहा॥ १॥

दुग तिग चउक्क पणगं नव दस एकारसेव बारसगं।
एए अट्ठ विगप्पा जिणकप्पे होंति उवहिस्स॥ २॥

"इह केषाञ्चिज्जिनकल्पानां रजोहरणं, मुखवस्त्रिका चेति द्विविध उपधिः, अन्येषां तु कल्पेन सह त्रिविधः, कल्पद्वयेन तु सह चतुर्विधः, कल्पत्रयेण सह पञ्चविधः। केषाञ्चित्तु मुखवस्त्रिका, रजोहरणं च, तथा—

पत्तं पत्ताबंधो पायट्ठवणं च पायकेसरिया।
पटलाइं रयत्ताणं च गोच्छओ पायनिज्जोगो॥ १॥

"इति सप्तविधः पात्रनिर्योग इति, एवं च नवविधः। कल्पेन तु सह दशविधः, कल्पद्वयेन सहैकादशविधः, कल्पत्रयेण तु समं द्वादशविध उपधिः केषाञ्चिज्जिनकल्पिनामिति। तदेतत् श्रुत्वा शिवभूतिना प्रोक्तम्—'यद्येवं, तर्हि किमिदानीमौघिक औपग्रहिकश्चैतावानुपधिः परिगृह्यते? स एव जिनकल्पः किं न क्रियते? ततो गुरुभिरुक्तम्—'जम्बूस्वामिनि व्यवच्छिन्नोऽसौ संहननाद्यभावात् साम्प्रतं न शक्यत एव कर्तुम्।' ततः शिवभूतिना प्रोक्तम्—'मयि जीवति स किं व्यवच्छिद्यते? नन्वहमेव तं करोमि, परलोकार्थिना

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पः कर्तव्यः, किं पुनरनेन कषाय-भय-मूर्च्छादिदोषनिधिना परिग्रहानर्थेन? अत एव श्रुते निष्परिग्रहत्वमुक्तम्। अचेलकाश्च जिनेन्द्राः, अतोऽचेलतैव सुन्दरेति।' ततो गुरुणा प्रोक्तम्—'हन्त! यद्येवम् तर्हि देहेऽपि कषाय-भय-मूर्च्छादयो दोषाः कस्यापि सम्भवन्तीति सोऽपि व्रतग्रहणानन्तरमेव त्यक्तव्यः प्राप्नोति। यच्च श्रुते निष्परिग्रहत्वमुक्तं तदपि धर्मोपकरणेष्वपि मूर्च्छा न कर्तव्या, मूर्च्छाभाव एव निष्परिग्रहत्वमवसेयम्, न पुनः सर्वथा धर्मोपकरणस्यापि त्यागः। जिनेन्द्रा अपि न सर्वथैवाचेलकाः 'सव्वे वि एगदूसेण निग्गया जिणवरा चउव्वीसं' इत्यादिवचनात्। तदेवं गुरुणा स्थविरैश्च यथोक्ताभिर्वक्ष्यमाणाभिश्च युक्तिभिः प्रज्ञाप्यमानोऽपि तथाविधकषायमोहादिकर्मोदयाद् न स्वाग्रहाद् निवृत्तोऽसौ, किन्तु चीवराणि परित्यज्य निर्गतः। ततश्च बहिरुद्याने व्यवस्थितस्यास्योत्तरा नाम भगिनी वन्दनार्थं गता। सा च त्यक्तचीवरं तं भ्रातरमालोक्य स्वयमपि चीवराणि त्यक्तवती। ततो भिक्षार्थं नगरमध्ये प्रविष्टा गणिकया दृष्टा। तत इत्थं विवस्त्रां बीभत्सामिमां दृष्ट्वा 'मा लोकोऽस्मासु विराङ्क्षीत्' इत्यनिच्छन्त्यपि तया वस्त्रं परिधापिताऽसौ।तत एष व्यतिकरोऽनया शिव-भूतेर्निवेदितः। ततोऽनेन 'विवस्त्रा योषिद् नितरां बीभत्साऽतिलज्जनीया च भवति' इति विचिन्त्य प्रोक्ताऽसौ—'तिष्ठत्वित्थमपि, न त्यक्तव्यं त्वयैतद् वस्त्रम्। देवतया हि तवेदं प्रदत्तमित्ति।' ततः शिवभूतिना कौण्डिन्य-कोट्टवीरनामानौ द्वौ शिष्यौ दीक्षितौ---।

''तस्मात् कौण्डिन्य-कोट्टवीरात् परम्परास्पर्शमाचार्य-शिष्यसम्बन्धलक्षणमधिकृत्योत्पन्ना सञ्जाता 'बोटिकदृष्टिः' इत्यध्याहारः। इत्येवं बोटिकाः समुत्पन्नाः।'' (हेम. वृत्ति / विशे.भा./ गा. २५५१-५२)।

अनुवाद

''रथवीरपुर नाम का नगर था। उसके बाहर दीपक नाम का उद्यान था। उसमें आर्यकृष्ण नाम के आचार्य आये हुए थे। उस नगर में सहस्रमल्ल शिवभूति नाम का राजसेवक रहता था। वह राजा का कृपापात्र था, इसलिए मौजमस्ती करते हुए नगर में घूमता रहता था। आधी रात को घर आता था। इससे उसकी पत्नी बड़ी दुखी थी। एक बार वह अपनी सास से बोली—''आपके पुत्र से मैं परेशान हो गई हूँ। वे रात में कभी भी समय पर घर नहीं आते। मैं भूखी-प्यासी जागती बैठी रहती हूँ ।'' सास ने कहा—''बेटी, यदि ऐसा है तो तुम आज सो जाओ, मैं स्वयं जागूँगी।'' बहू ने वैसा ही किया। जब सास जाग रही थी, तब आधी रात को शिवभूति आकर बोला—''दरवाजा खोलो।'' क्रुद्ध माँ ने जबाब दिया—''दुष्ट, इस समय जहाँ दरवाजा खुला हो वहाँ चला जा। तेरे पीछे यहाँ कोई प्राण नहीं दे देगा।'' तब क्रोध और अभिमान से प्रेरित होकर वह चला गया। एक जगह उसने साधुओं के उपाश्रय का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वार खुला हुआ देखा। वहाँ साधु कालग्रहण[१५] कर रहे थे। उनके पास जाकर उसने वन्दना की और दीक्षा देने की प्रार्थना की। साधुओं ने सोचा कि यह राजा का प्रिय है और माता से कलह करके आया है, अतः उसे दीक्षा नहीं दी। तब 'खेलमल्लक' नामक किसी साधु से दीक्षा लेकर उसने स्वयं केशलोच कर लिया। तब साधुओं ने भी उसे मुनिलिंग प्रदान कर दिया। फिर वे सभी साधु वहाँ से विहार कर गये। कुछ समय बाद पुनः उसी नगर में आये। तब राजा ने शिवभूति को एक बहुमूल्य कम्बलरत्न भेंट किया। आचार्य ने शिवभूति से कहा—"तुमने इसे क्यों लिया। मार्ग आदि में इससे अनेक तरहकी विपत्तियाँ आ सकती हैं।" शिवभूति ने मूर्च्छा के वशीभूत हो उसे गुरु से छिपाकर रख दिया। वह गोचरचर्या से आकर प्रतिदिन उसे सँभालता था और उसका कहीं भी उपयोग नहीं करता था। तब आचार्य ने सोचा-यह इसमें मूर्छित हो गया है, अतः दूसरे दिन जब वह बाहर गया था, तब उन्होंने उससे बिना पूछे ही उस कम्बलरत्न को फाड़कर साधुओं के लिए पाँवपौंछने बना दिये। जब शिवभूति को यह पता चला तो वह क्रुद्ध हो गया। एक दिन आचार्य जिनकल्पिक साधुओं का वर्णन कर रहे थे, यथा—

"जिनकल्पिक दो प्रकार के होते हैं : पाणिपात्र और प्रतिग्रहधर (पात्रधारी)। इनमें से प्रत्येक के सप्रावरण और अप्रावरण ये दो भेद हैं।

"जिनकल्प में उपधि के दो, तीन, चार, पाँच, नौ, दस, ग्यारह, और बारह, ये आठ विकल्प होते हैं।"

"अर्थात् किन्हीं जिनकल्पिकों के रजोहरण और मुखवस्त्रिका ये दो ही उपधियाँ होती है, किन्हीं के एक कल्प (प्रावरण=चादर या कम्बल) को मिलाकर तीन, किन्हीं के दो कल्पों को मिलाकर चार, किन्हीं के तीन कल्पों को मिलकार पाँच उपधियाँ होती हैं, और किन्हीं के मुखवस्त्रिका एवं रजोहरण तथा—

"पात्र, पात्रबन्ध, पात्रस्थापन, पात्र-केसरिका (पात्रप्रमार्जनिका) पटल, रजस्त्राण और गुच्छक, यह सप्तविध पात्रनिर्योग,

"इस प्रकार नौ उपधियाँ होती हैं। इनके साथ एक कल्प को मिलाकर किन्हीं के पास दस, दो कल्पों को मिलाकर किन्हीं के पास ग्यारह और तीन कल्पों को मिलाकर किन्हीं जिनकल्पिकों के पास बारह उपधियाँ होती हैं।"

---

१५. "कालग्रहण = सूत्र / शास्त्र का नया पाठ ग्रहण करने के पूर्व वातावरण, वसति (उपाश्रय) एवं मन की शुद्धि के निमित्त किया जानेवाला अनुष्ठान। --- शास्त्राभ्यास के लिए दिन में चार बार कालग्रहण करने का विधान है।" (खरतरगच्छालंकार-श्री जिनप्रभसूरिकृत 'विधिमार्गप्रपा'/ अनुवाद : साध्वी सौम्यगुणाश्री / परिशिष्ट ३ / पृ. २१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वार खुला हुआ देखा। वहाँ साधु कालग्रहण[१५] कर रहे थे। उनके पास जाकर उसने वन्दना की और दीक्षा देने की प्रार्थना की। साधुओं ने सोचा कि यह राजा का प्रिय है और माता से कलह करके आया है, अतः उसे दीक्षा नहीं दी। तब 'खेलमल्लक' नामक किसी साधु से दीक्षा लेकर उसने स्वयं केशलोच कर लिया। तब साधुओं ने भी उसे मुनिलिंग प्रदान कर दिया। फिर वे सभी साधु वहाँ से विहार कर गये। कुछ समय बाद पुनः उसी नगर में आये। तब राजा ने शिवभूति को एक बहुमूल्य कम्बलरत्न भेंट किया। आचार्य ने शिवभूति से कहा—"तुमने इसे क्यों लिया। मार्ग आदि में इससे अनेक तरहकी विपत्तियाँ आ सकती हैं।" शिवभूति ने मूर्च्छा के वशीभूत हो उसे गुरु से छिपाकर रख दिया। वह गोचरचर्या से आकर प्रतिदिन उसे सँभालता था और उसका कहीं भी उपयोग नहीं करता था। तब आचार्य ने सोचा-यह इसमें मूर्छित हो गया है, अतः दूसरे दिन जब वह बाहर गया था, तब उन्होंने उससे बिना पूछे ही उस कम्बलरत्न को फाड़कर साधुओं के लिए पाँवपौंछने बना दिये। जब शिवभूति को यह पता चला तो वह क्रुद्ध हो गया। एक दिन आचार्य जिनकल्पिक साधुओं का वर्णन कर रहे थे, यथा—

"जिनकल्पिक दो प्रकार के होते हैं : पाणिपात्र और प्रतिग्रहधर (पात्रधारी)। इनमें से प्रत्येक के सप्रावरण और अप्रावरण ये दो भेद हैं।

"जिनकल्प में उपधि के दो, तीन, चार, पाँच, नौ, दस, ग्यारह, और बारह, ये आठ विकल्प होते हैं।"

"अर्थात् किन्हीं जिनकल्पिकों के रजोहरण और मुखवस्त्रिका ये दो ही उपधियाँ होती है, किन्हीं के एक कल्प (प्रावरण=चादर या कम्बल) को मिलाकर तीन, किन्हीं के दो कल्पों को मिलाकर चार, किन्हीं के तीन कल्पों को मिलकार पाँच उपधियाँ होती हैं, और किन्हीं के मुखवस्त्रिका एवं रजोहरण तथा—

"पात्र, पात्रबन्ध, पात्रस्थापन, पात्र-केसरिका (पात्रप्रमार्जनिका) पटल, रजस्त्राण और गुच्छक, यह सप्तविध पात्रनिर्योग,

"इस प्रकार नौ उपधियाँ होती हैं। इनके साथ एक कल्प को मिलाकर किन्हीं के पास दस, दो कल्पों को मिलाकर किन्हीं के पास ग्यारह और तीन कल्पों को मिलाकर किन्हीं जिनकल्पिकों के पास बारह उपधियाँ होती हैं।"

---

१५. "कालग्रहण = सूत्र/शास्त्र का नया पाठ ग्रहण करने के पूर्व वातावरण, वसति (उपाश्रय) एवं मन की शुद्धि के निमित्त किया जानेवाला अनुष्ठान। --- शास्त्राभ्यास के लिए दिन में चार बार कालग्रहण करने का विधान है।" (खरतरगच्छालंकार-श्री जिनप्रभसूरिकृत 'विधिमार्गप्रपा'/अनुवाद : साध्वी सौम्यगुणाश्री/परिशिष्ट ३/पृ. २१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"जिनकल्पिक साधुओं का यह वर्णन सुनकर शिवभूति ने कहा—"यदि ऐसा है, तो इतनी औघिक और औपग्रहिक उपधि का परिग्रह क्यों किया जाता है? उसी जिनकल्प को अंगीकार क्यों नहीं किया जाता?"

"तब गुरु ने कहा—"जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद जिनकल्प का विच्छेद हो चुका है। संहनन आदि के अभाव में अब उसका आचरण संभव नहीं है।"

"शिवभूति बोला—"मेरे रहते उसका विच्छेद कैसे हो सकता है? मैं उसे धारण करूँगा। परलोकार्थी (मोक्षार्थी) को वही निष्परिग्रह जिनकल्प धारण करना चाहिए। यह परिग्रह तो कषाय, भय, मूर्च्छा आदि दोषों का कारण है, अतः अनर्थरूप है। इसीलिए श्रुत में निष्परिग्रहत्व का उपदेश दिया गया है। जिनेन्द्र भी अचेलक थे, अतः अचेलता ही सुन्दर है (मोक्ष का प्रामाणिक, सम्यक् मार्ग है)।"

"तब गुरु ने कहा—"यदि ऐसा है, तो शरीर को भी व्रतग्रहण के अनन्तर ही छोड़ देना जरूरी हो जायेगा, क्योंकि उसके होने पर भी किसी में कषाय, भय, मूर्च्छा आदि दोष उत्पन्न हो सकते हैं। और श्रुत में जो निष्परिग्रहत्व का उपदेश है, उसका तो यह अर्थ है कि धर्मोपकरणों में भी मूर्च्छा नहीं करनी चाहिए। मूर्च्छा का अभाव ही निष्परिग्रहत्व है, न कि धर्मोपकरणों का भी सर्वथा त्याग। और जिनेन्द्र भी सर्वथा अचेलक नहीं थे, क्योंकि आगम में कहा गया है कि सभी चौबीस तीर्थंकर एक वस्त्र लेकर प्रव्रजित हुए थे।"

"इस प्रकार गुरु तथा स्थविरों के द्वारा समझाये जाने पर भी कषाय-मोहादिकर्मों के उदय से शिवभूति ने अपना आग्रह नहीं छोड़ा और वस्त्र त्याग कर निकल गया। जब वह बाहर उद्यान में बैठा था, तब उसकी बहन उत्तरा वन्दना करने के लिये आयी और अपने भाई को निर्वस्त्र देखकर उसने भी वस्त्र त्याग दिये। पश्चात् भिक्षा के लिये नगर में गयी, तो उस पर एक गणिका की नजर पड़ी। गणिका ने सोचा कि निर्वस्त्र अवस्था में यह बीभत्स लगती है। स्त्रियों की इस बीभत्सता को देखकर कहीं लोग हमसे विरक्त न हो जायँ, यह सोचकर उत्तरा के न चाहते हुए भी गणिका ने उसे वस्त्र पहना दिये। उत्तरा ने यह घटना शिवभूति को बतलाई। तब शिवभूति ने सोचा कि नग्न स्त्री अत्यन्त बीभत्स एवं लज्जास्पद लगती है, अतः उसने अपनी बहिन से कहा—"तुम ऐसी ही रहो, इस वस्त्र का परित्याग मत करो। यह वस्त्र तुम्हें देवता ने प्रदान किया है।" तत्पश्चात् शिवभूति ने कौण्डिन्य और कोट्टवीर नाम के दो शिष्यों को दीक्षित किया। इन शिष्यों से बोटिक शिवभूति की गुरु-शिष्य-परम्परा का उद्भव हुआ, जिससे बोटिकमत की उत्पत्ति हुई।"

आवश्यकमूलभाष्य की पूर्वोद्धृत गाथाओं से **बोटिक** शब्द का अर्थ भी स्पष्ट हो जाता है। १४८ वीं गाथा में कहा गया है कि बोटिक शिवभूति से बोटिकलिंग की उत्पत्ति हुई। इससे प्रकट होता है कि 'बोटिक' शब्द शिवभूति के गोत्र अथवा उसके साथ जुड़ी किसी उपाधि का वाचक है। यह भी हो सकता है कि वह उसके आधी-आधी रात तक स्वच्छन्द भ्रमण करने वाले चरित्र का सूचक कोई लोकप्रचलित शब्द हो। उस बोटिक शिवभूति के द्वारा प्रचलित किये जाने के कारण यह मत बोटिकमत के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

३

मुनि कल्याणविजय जी के मनगढ़न्त निष्कर्ष

इस कथा की समीक्षा करते हुए मुनि श्री कल्याणविजय जी लिखते हैं—''शिवभूति ने आर्यकृष्ण से उपधि न रखने के सम्बन्ध में जो दलीलें की हैं, उनका सार इतना ही है कि 'उपधि' कषाय, मूर्च्छा और भय इत्यादि का कारण है। उन्होंने यह नहीं कहा कि उपधि रखने से मुक्ति ही नहीं होती।---यद्यपि शिवभूति ने वस्त्रपात्र न रखने का उत्कृष्ट जिनकल्प स्वीकारा था, आगे जाकर उन्हें अनुभव हुआ कि इस प्रकार का उत्कृष्टमार्ग अधिक समय तक चलना कठिन है। अत एव उन्होंने साधुओं का आपवादिक लिंग भी स्वीकार किया। (श्र.भ.म. / पृ.२९६)।

''एक व्यक्ति कैसा भी आचरण कर सकता है, पर वैसा ही आचरण करनेवालों की परम्परा जारी रखना सरल नहीं। ---परिणामस्वरूप अपने मार्ग को उन्होंने आचाराङ्गोक्त मूल स्थविरमार्ग में परिगणित किया और जो इस उत्सर्गमार्ग को न पाल सकें, उनके लिये उसी सूत्र के अनुसार कुछ वस्त्र-पात्र रखने की व्यवस्थावाला अपवादमार्ग भी नियत किया।

''यद्यपि शिवभूति के सम्प्रदाय का उद्भव उत्तरापथ में हुआ था, पर वहाँ उसका अधिक प्रचार नहीं हो सका। कारण स्पष्ट है। प्राचीन स्थविरसंघ का उन दिनों वहाँ पूर्ण प्राबल्य फैला हुआ था और मथुरा के आसपास के ९६ गाँवों में तो जैनधर्म राजधर्म के रूप में माना जाता था। इस स्थिति में शिवभूति या उनके अनुयायियों का वहाँ टिकना बहुत कठिन था। इस कठिनाई के कारण उस सम्प्रदाय ने उधर से हटकर दक्षिणापथ की तरफ प्रयाण किया, जहाँ आजीविक-संप्रदाय के प्रचार के कारण पहले ही नग्न साधुओं की तरफ जन-साधारण का सद्भाव था। वहाँ जाने पर इस सम्प्रदाय की भी अच्छी कदर हुई और धीरे-धीरे वह पगभर हो गया। यद्यपि इस सम्प्रदायवालों ने अपने संप्रदाय का नाम 'मूलसंघ' रक्खा था, पर दक्षिण में जाने के बाद वे 'यापनीय' और 'खमण' इन नामों से अधिक प्रसिद्ध हुए।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

''प्राचीन स्थविर परम्परा में प्रतिदिन शैथिल्य के भाव बढ़ रहे थे। बस्ती में रहना तो उन्होंने पहले ही शुरू कर लिया था, अब धीरे-धीरे उनमें चारित्रमार्ग की अन्य शिथिलताएँ भी प्रवेश कर रही थीं। यद्यपि सुविहित गीतार्थ व्यवस्था बनाये रखने के लिये बहुत कुछ प्रयत्न कर रहे थे, शिथिलाचारियों का 'पासत्था' आदि नामों से परिचय दे उनके चेप से बचने के लिये वे साधुओं को उपदेश दे रहे थे, फिर भी निम्नगामी शैथिल्य-प्रवाह रोका नहीं जा सका। विक्रम की पाँचवीं और छठी सदी तक 'पासत्था' आदि नामों से पहचाने जानेवाले शिथिलाचारियों के गाँव-गाँव में अड्डे जमने लगे और उग्रविहारी सुविहितों की संख्या कम होने लगी। इस स्थिति से नवीन स्थविर (दिगम्बर) परम्परा ने पर्याप्त लाभ उठाया। परिमित वस्त्र-पात्र की छूट के कारण उनके यहाँ साधुओं की संख्या खूब बढ़ती गई और प्राचीनकालीन नग्नतादि उत्कृष्ट क्रियाओं के कारण गृहस्थवर्ग भी प्रतिदिन उनकी तरफ झुकता गया। परिणाम यह हुआ कि विक्रम की पाँचवीं सदी के आसपास जाकर इस परम्परा ने अपना स्वतन्त्र संघ स्थापित कर दिया और प्राचीन स्थविर परम्परा के पूर्व नाम 'मूलसंघ' को अपने लिये व्यवहृत किया।

''यद्यपि यह नया 'मूलसंघ' तब तक उन्हीं जैन आगमों से अपना काम चलाता था, तथापि महावीर का गर्भापहार, उनका विवाह आदि अनेक बातें वह नहीं भी मानता था और इस कारण वह धीरे-धीरे अपना नया साहित्य-निर्माण किये जाता था।

''प्राचीन स्थविरपरम्परा के अधिक साधुओं के शिथिल और नित्यवासी हो जाने पर भी उसमें त्यागी सुविहित श्रुतधरों की भी कमी न थी। नवीन परम्परा की उत्कृष्टता अथवा उन्नति के कारण नहीं, पर उसके नये विचार और कतिपय सिद्धान्तभेद के कारण उन्होंने इसका फिर प्रतिवाद करना शुरू किया और परिणामस्वरूप दोनों परम्परावालों में तनातनी बढ़ने लगी। छठी सदी के विद्वान् आचार्य कुन्दकुन्द, देवनन्दी वगैरह ने प्राचीन परम्परा से मजबूत मोरचा लिया। पहले जो सूत्र, निर्युक्ति आदि प्राचीन आगमों को इनके पूर्वाचार्य मानते आये थे, इन्होंने उनका मानना भी अस्वीकार कर दिया और अपने लिये आचार, विचार और दर्शनविषयक स्वतन्त्र साहित्य की रचना की, जिसमें वस्त्र-पात्र रखने का एकान्तरूप से निषेध किया। यद्यपि इस ऐकान्तिक निषेध के कारण उन्हें स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का भी निषेध करना पड़ा, क्योंकि स्त्रियों को सर्वथा अचेलक मानना अनुचित था और वस्त्रसहित रहते हुए उनकी मुक्ति मान लेने पर अपने वस्त्रधारी प्रतिस्पर्द्धियों की मुक्ति का निषेध करना असंभव था। इसी तरह केवली का कवलाहार मानने पर उसके लाने के लिये पात्र भी मानना पड़ता और इस दशा में पात्रधारी स्थविरों का खंडन नहीं करने पाते।

"इन नये सिद्धान्तों की योजना से उन्हें अपनी परम्परागत आपवादिक लिङ्ग-प्रवृत्ति को स्वयं उठा देना पड़ा, क्योंकि ऐसा किये बिना वे विरोधिपक्ष का सामना कर नहीं सकते थे।

"कुन्दकुन्दाचार्य आदि के इन नये सिद्धान्तों से इस परम्परा को कुछ लाभ हुआ और कुछ हानि भी।

"लाभ यह हुआ कि ऐसी ऐकान्तिक अचेलकवृत्ति से दक्षिण देश में, जहाँ पहले से ही आजीविक आदि नग्न सम्प्रदायवालों का मान और प्रचार था, इनके अनुयायी गृहस्थों की संख्या काफी बढ़ गई और इस कारण साधुसमुदाय में भी वृद्धि हुई।

"हानि यह हुई कि इनके नये सिद्धान्तों को इस परम्परा के सभी अनुयायियों ने स्वीकार नहीं किया और परिणामस्वरूप यह परम्परा जो पहले केवल 'मूलसंघ' के नाम से पहचानी जाती थी, अब से अनेक भागों में बँट गई और उसके अनेक संघ बन गये, जो 'यापनीय संघ,' 'काष्ठासंघ', 'माथुरसंघ' वगैरह नामों से प्रसिद्ध हुए और एक दूसरे को भला बुरा कहने लगे।" (श्र.भ.म./ पृ.३०१-३०७)।

मुनिजी आगे लिखते हैं—"दिगम्बर शिवभूति ने जो सम्प्रदाय चलाया था, वह दक्षिण में जाकर 'यापनीयसंघ' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। यद्यपि कर्नाटक देश में इसका पर्याप्त मान और प्रचार था, तथापि विक्रम की छठी शताब्दी के लगभग उसके साधुओं में कुछ चैत्यवास का असर हो गया था और वे राजा वगैरह की तरफ से भूमिदान वगैरह लेने लग गये थे। अर्वाचीन कुन्दकुन्द जैसे त्यागियों को यह शिथिलता अच्छी नहीं लगी। उन्होंने केवल स्थूल परिग्रह का ही नहीं, बल्कि अब तक इस सम्प्रदाय में जो आपवादिक लिंग के नाम से वस्त्रपात्र की छूट थी, उसका भी विरोध किया और तब तक प्रमाण माने जानेवाले श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों को भी इन उद्धारकों ने अप्रामाणिक ठहराया और उन्हीं आगमों के आधार पर अपनी तात्कालिक मान्यता के अनुसार नये धार्मिक ग्रन्थों का निर्माण करना शुरू किया। कुन्दकुन्द वगैरह जो प्राकृत के विद्वान् थे, उन्होंने प्राकृत में और देवनन्दी आदि संस्कृत के विद्वानों ने संस्कृत के ग्रन्थ निर्माण कर अपनी परम्परा को परापेक्षता से मुक्त करने का उद्योग किया।

"यद्यपि शुरू ही शुरू में उन्हें पूरी सफलता प्राप्त नहीं हुई। यापनीयसंघ का अधिक भाग इनके क्रियोद्धार में शामिल ही नहीं हुआ और शामिल होनेवालों में से भी बहुत सा भाग इनकी सैद्धान्तिक क्रान्ति के कारण विरुद्ध हो गया तथा धीरे-धीरे दिगम्बरसंघ, द्राविड़संघ आदि कई भागों में टूट गया था, तथापि इनका उद्योग निष्फल नहीं गया। इनके ग्रन्थ और विचार धीरे-धीरे विद्वानों के हृदय में घर करते

जाते थे और विक्रम की नवीं सदी के अकलंकदेव, विद्यानन्दी आदि दिग्गज दिगम्बर विद्वानों के द्वारा तार्किक पद्धति से परिमार्जित होने के उपरान्त तो वे और भी आकर्षक हो गये। फलस्वरूप प्राचीन सिद्धान्तों का लोप और इन नये ग्रन्थों का सार्वत्रिक प्रसार हो गया।

"इस प्रकार आधुनिक दिगम्बर सम्प्रदाय और इसके श्वेताम्बर-विरोधी सिद्धान्तों की नींव विक्रम की छठी शताब्दी में आचार्य कुन्दकुन्द ने डाली।" (श्र.भ.म./ पृ.३२७-३२८)।

मुनि कल्याणविजय जी ने पादटिप्पणी में लिखा है—"कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने किसी भी ग्रन्थ में अपनी गुरुपरम्परा का ही नहीं, अपने गुरु का भी नामोल्लेख नहीं किया। इससे मालूम होता है कि कुन्दकुन्द के क्रियोद्धार में उनके गुरु भी शामिल नहीं हुए होंगे और इसी कारण से उन्होंने शिथिलाचारी समझकर अपने गुरु-प्रगुरुओं का नाम-निर्देश नहीं किया होगा।" (श्र.भ.म./ पा.टि.१/ पृ.३२७)।

मुनिश्री कल्याणविजय जी के ऊपर उद्धृत निम्नलिखित शब्दों पर ध्यान दिया जाय—

"छठी सदी के विद्वान् आचार्य कुन्दकुन्द, देवनन्दी वगैरह ने प्राचीन परम्परा से मजबूत मोरचा लिया। पहले जो सूत्र, निर्युक्ति आदि प्राचीन आगमों को इनके पूर्वाचार्य मानते आये थे, इन्होंने उनका मानना भी अस्वीकार कर दिया---।" (श्र.भ.म./ पृ.३०२-३०३)।

"दिगम्बर शिवभूति ने जो सम्प्रदाय चलाया था, वह दक्षिण में जाकर 'यापनीयसंघ' के नाम से प्रसिद्ध हो गया था।--- विक्रम की छठी शताब्दी के लगभग उसके साधुओं में कुछ चैत्यवास का असर हो गया था और वे राजा वगैरह की तरफ से भूमिदान वगैरह लेने लग गये थे। अर्वाचीन कुन्दकुन्द जैसे त्यागियों को यह शिथिलता अच्छी नहीं लगी। उन्होंने केवल स्थूल परिग्रह का ही नहीं, बल्कि अब तक इस सम्प्रदाय में जो आपवादिक लिंग के नाम से वस्त्रपात्र की छूट थी, उसका भी विरोध किया---।" (श्र.भ.म./ पृ.३२७)।

"--- कुन्दकुन्द के क्रियोद्धार में उनके गुरु भी शामिल नहीं हुए होंगे और इसी कारण से उन्होंने शिथिलाचारी समझ कर अपने गुरु-प्रगुरुओं का नाम-निर्देश नहीं किया होगा।" (श्र.भ.म./ पा.टि.१/ पृ. ३२७)

इन शब्दों से मुनि कल्याणविजय जी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि कुन्दकुन्द, पूज्यपाद देवनन्दी आदि दिगम्बराचार्य आरंभ में यापनीय-सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे और उनके गुरु-प्रगुरु यापनीय आचार्य थे।

४

श्वेताम्बर शिवभूति द्वारा दिगम्बरमत का वरण

उपर्युक्त कल्पित कथा में मुनि कल्याणविजय जी ने बोटिक शिवभूति को यापनीयमत-प्रवर्तक और आचार्य कुन्दकुन्द को शुरू में यापनीय-संघ में दीक्षित सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। श्वेताम्बर विद्वान् पं० दलसुख मालवणिया एवं डॉ० सागरमल जी ने भी मुनि जी का अनुसरण किया है। बोटिकों को यापनीय सिद्ध करने के लिए उन्होंने अपने पूर्वाचार्यों द्वारा उन्हें दिगम्बर कहे जाने को गलत बतलाया है और दिगम्बरमत का प्रवर्तक कुन्दकुन्द को घोषित किया है। माननीय मालवणिया जी लिखते हैं—"बोटिक मूलतः दिगम्बर नहीं थे, क्योंकि स्त्रीमुक्ति के निषेध की चर्चा हमें सर्वप्रथम आचार्य कुन्दकुन्द में मिलती है।"[१६]

मालवणिया जी ने उमास्वाति का समय तीसरी-चौथी शताब्दी ई० माना है और वे मानते हैं कि कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में 'तत्त्वार्थसूत्र' की अपेक्षा जैनदर्शन का रूप विकसित है, अतः वे उमास्वाति के बाद अर्थात् ईसा की तीसरी-चौथी शती के पश्चात् हुए हैं।[१७] इस प्रकार माननीय मालवणिया जी भी यह मानते हैं कि दिगम्बरमत की स्थापना आचार्य कुन्दकुन्द ने ईसा की पाँचवी शताब्दी में की थी।

डॉ० सागरमल जी लिखते हैं—"ई० सन् की पाँचवीं-छठीं शताब्दी तक जैनपरम्परा में कहीं भी स्त्रीमुक्ति का निषेध नहीं था। स्त्रीमुक्ति एवं सग्रन्थ (सवस्त्र) की मुक्ति का सर्वप्रथम निषेध आचार्य कुन्दकुन्द ने 'सुत्तपाहुड' में किया है।" (जै.ध.या.स./ पृ.३९४)।

डॉक्टर सा० ने बोटिकों को दिगम्बरों से भिन्न बतलाते हुए लिखा है—"श्वेताम्बर आचार्यों ने बोटिकों को जो दिगम्बर मान लिया है, वह एक भ्रान्ति है। श्वेताम्बरसाहित्य में उल्लिखित 'बोटिक' दिगम्बर नहीं हैं, इस तथ्य को पं० दलसुख भाई मालवणिया ने अपने एक लेख '**क्या बोटिक दिगम्बर हैं?**' में बहुत ही स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादित किया है। उनका यह लेख Aspects of Jainology, Vol.II, **पं० बेचरदास दोशी स्मृतिग्रंथ** में पार्श्वनाथ विद्याश्रम से ही प्रकाशित हुआ है। वे लिखते हैं—"विशेषावश्यक की विस्तृत चर्चा में विवाद के विषय वस्त्रपात्र हैं, इसमें स्त्रीमुक्तिनिषेध की चर्चा नहीं है। दिगम्बरसंप्रदाय में वस्त्र और पात्र के अलावा स्त्रीमुक्ति का भी निषेध है। अत एव जिनभद्र के समय में बोटिक को दिगम्बरसंप्रदाय के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता।

---

१६. जैन विद्या के आयाम/ग्रन्थाङ्क २ (Aspects of Jainlogy, Vol.II) / पं. बेचरदास स्मृति-ग्रन्थ / पृ. ७३।

१७. न्यायावतारवार्तिकवृत्ति / प्रस्तावना / पृ. १०३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मुद्रित आवश्यकचूर्णि में जितने अंश में बोटिक की चर्चा है, उसके मार्जिन में 'दिगम्बरोत्पत्ति' छपा है। किन्तु वह सम्पादक का भ्रम है। क्योंकि चूर्णि में भी बोटिक की चर्चा में कहीं भी स्त्रीमुक्ति की चर्चा को स्थान नहीं मिला है। अत एव बोटिक और दिगम्बर में भेद करना जरूरी है। यहाँ यह भी बता देना जरूरी है कि विशेषावश्यकभाष्य की गाथा २६०९ की टीका में बोटिकचर्चा का उपसंहार करते हुए स्त्रीमुक्ति की चर्चा के लिए उत्तराध्ययन के छत्तीसवें अध्ययन की टीका को देख लेने को कहा है। वह भी उनके मत में बोटिक और दिगम्बर को एक मानने के भ्रम के कारण है। इस समग्र चर्चा से इतना स्पष्ट है कि बोटिक दिगम्बर नहीं थे। इस समग्र चर्चा के दो फल निकलते हैं—प्रथम तो यह कि श्वेताम्बरग्रन्थों में बोटिक नाम से जिस संप्रदाय का उल्लेख हुआ है, वह दिगम्बरसंप्रदाय से भिन्न है और जिसे अन्यत्र यापनीय नाम से जाना जाता है। दूसरे, दिगम्बरसंप्रदाय, जो स्त्रीमुक्ति का निषेध करता है, उससे प्रारंभिक श्वेताम्बर आचार्य परिचित नहीं थे।" (जै.ध.या.स. / पृ.८-९)।

डॉक्टर सा० ने आगे लिखा है—"बोटिकों की उत्पत्तिकथा से भी यह स्पष्ट है कि इन्होंने जिनकल्प का विच्छेद स्वीकार नहीं किया था और वस्त्र को परिग्रह मानकर मुनि के लिए अचेलकता का ही प्रतिपादन किया था। शिवभूति द्वारा अपनी बहन उत्तरा को वस्त्र रखने की अनुमति देना यह भी सूचित करता है कि इस सम्प्रदाय में साध्वियाँ सवस्त्र रहती थीं। इस सम्प्रदाय के तत्कालीन परम्परा से मतभेद के जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे यही फलित होता है कि इनका मुख्य विवाद मुनि के सचेल और अचेल होने के सम्बन्ध में था। स्त्रीमुक्ति और केवली-कवलाहार के सम्बन्ध में इनका कोई मतभेद नहीं था अथवा यह कहें कि यह प्रश्न उस समय उत्पन्न ही नहीं हुआ था। विशेषावश्यकभाष्य (गा.३०४५) में इन्हें आचारांग आदि आगमों को स्वीकार करने वाला माना गया है। अतः बोटिक दिगम्बरपरम्परा के समान न तो स्त्रीमुक्ति और केवलीभुक्ति का निषेध करते थे और न जैनागमों का पूर्णतः विच्छेद ही स्वीकार करते थे। मात्र यह कहते थे कि आगमों में जो वस्त्र-पात्र के उल्लेख हैं, वे आपवादिक स्थिति के हैं। इस प्रकार बोटिक स्त्रीमुक्ति और केवली-कवलाहार का निषेध करनेवाले और आचारांग आदि आगमों को विच्छिन्न माननेवाले दिगम्बरसम्प्रदाय से भिन्न थे।"(जै.ध.या.स./पृ.९)।

डॉक्टर सा० अपने वक्तव्य में आगे कहते हैं—"यदि हम बोटिकों की इन मान्यताओं की तुलना यापनीय-परम्परा से करते हैं, तो दोनों में कोई अन्तर दृष्टिगोचर नहीं होता। यापनीयों का जो भी साहित्य उपलब्ध है, उससे भी स्पष्टरूप से यही निष्कर्ष निकलता है कि यापनीय यद्यपि मुनि की अचेलता पर बल देते थे, किन्तु दूसरी ओर वे स्त्रीमुक्ति, अन्य तैर्थिकों (दूसरी धर्म परंपरा)की मुक्ति, केवली-कवलाहार

और आचारांग, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, कल्प, व्यवहार, मरणविभक्ति, प्रत्याख्यान आदि आगमों को स्वीकार करते थे। वे दिगम्बरपरंपरा के समान अंग-आगमों के सर्वथा विच्छेद की बात नहीं मानते थे। इस परम्परा में आगे चलकर जिन स्वतंत्र ग्रन्थों और आगमों की टीकाओं का निर्माण हुआ, उनमें अर्धमागधी आगमसाहित्य की सैकड़ों गाथाएँ और उद्धरण प्राप्त होते हैं। अतः उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर पूर्णरूपेण सुनिश्चित है कि यापनीय और बोटिक दोनों सम्प्रदाय एक ही हैं। इस निष्कर्ष की सत्यता को उनकी निम्न मान्यताओं की समरूपता में स्पष्टतः देखा जा सकता है—बोटिक और यापनीय दोनों ही मुनि के लिए उत्सर्गमार्ग की दृष्टि से अचेलता के पक्षधर हैं तथा दोनों आचारांग आदि आगमों की उपस्थिति को स्वीकार करते हैं और उनके वस्त्र, पात्र सम्बन्धी उल्लेखों को आपवादिक मानते हैं। जब कि दिगम्बरपरम्परा आचारांग आदि अंग-आगमों का विच्छेद मानती है और वस्त्रधारी को किसी भी स्थिति में मुनि नहीं मानती है। पुनः यापनीय और बोटिक दोनों ने स्त्रीमुक्ति का निषेध नहीं किया है और साध्वी में वस्त्रग्रहण होते हुए भी महाव्रतों का सद्भाव माना तथा स्त्री की दीक्षा को स्वीकार किया। जबकि दिगम्बरपरम्परा स्त्रीदीक्षा एवं स्त्रीमुक्ति का निषेध करती है। संक्षेप में आचारांग, उत्तराध्ययन आदि आगमों को मान्य करने और स्त्रीमुक्ति का निषेध न करने से बोटिक और यापनीय एक परम्परा के सूचक हैं। अतः श्वेताम्बर-साहित्य में प्रयुक्त बोटिक शब्द यापनीयों का ही पर्यायवाची है।'' (जै. ध. या. स./ पृ.९-१०)।

पं० मालवणिया जी एवं डॉ० सागरमल जी का कथन है कि श्वेताम्बराचार्यों ने भ्रम से बोटिकों को दिगम्बर मान लिया है, किन्तु कथा में वर्णित तथ्य इस निष्कर्ष पर पहुँचाते हैं कि मुनि जी एवं इन विद्वानों ने जान-बूझकर बोटिकों को यापनीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। इसके पीछे एक विशिष्ट प्रयोजन था। वह यह कि बोटिकमतोत्पत्तिकथा के द्वारा प्राचीन श्वेताम्बराचार्यों ने दिगम्बरमत की उत्पत्ति वीर नि० सं० ६०९ अर्थात् ई० सन् ८२ में बतलायी है। इससे दिगम्बरमत कम से कम ईसा की प्रथम शताब्दी-जितना पुराना सिद्ध होता है। किन्तु मुनि जी और उनके अनुयायी विद्वान् उसे इतना भी प्राचीन सिद्ध नहीं होने देना चाहते थे। वे चाहते थे कि उसे विक्रम की छठी शती में कुन्दकुन्द के द्वारा प्रवर्तित सिद्ध किया जाय। इसलिए उन्होंने यह कथा गढ़ी कि बोटिककथा में प्रयुक्त 'बोटिक' शब्द 'दिगम्बर' का पर्यायवाची नहीं है, अपितु यापनीयों का नामान्तर है, अतः बोटिक शिवभूति ने दिगम्बरमत का नहीं, बल्कि यापनीयमत का प्रवर्तन किया था।

किन्तु शिवभूति यापनीयमत का प्रवर्तक नहीं था, न ही उसने दिगम्बरमत की स्थापना की थी। उसने तो श्वेताम्बरमत छोड़कर दिगम्बरमत का वरण किया था। इस सत्य की स्थापना उसकी उन मान्यताओं से होती है, जो उसने अपने गुरु के साथ तर्क-वितर्क करते समय प्रकट की हैं। उसकी मान्यताएँ सचेललिंग को मोक्ष के

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रतिकूल और एकमात्र जिनेन्द्रगृहीत अचेललिंग को मोक्ष का मार्ग घोषित करती हैं। यह घोषणा यापनीयमत के विरुद्ध है, क्योंकि उसमें सचेललिंग से भी मुक्ति स्वीकार की गयी है। उक्त घोषणा केवल दिगम्बरमत-सम्मत है।

मालवणिया जी का यह कथन सत्य है कि शिवभूति का अपने गुरु से केवल वस्त्रपात्रादि-परिग्रह को लेकर विवाद होता है, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि विषयों पर नहीं। किन्तु इससे यह फलित नहीं होता कि उसे ये दोनों बातें मान्य थीं। वह अचेलत्व के पक्ष में जो तर्क देता है, उनसे उसकी सारी विचारधारा स्पष्ट हो जाती है। उसके सारे तर्क दिगम्बरमतानुगामी हैं। वह कहता है कि वस्त्रादिपरिग्रह के सद्भाव में भय, कषाय और मूर्च्छा की उत्पत्ति होती है (जो प्रत्येक के लिए कर्मबन्ध के कारण हैं)। अतः मोक्षार्थी को जिनेन्द्रगृहीत अचेललिंग ही धारण करना चाहिए। यह तर्क सवस्त्र अवस्था में प्रत्येक के लिए मुक्ति का द्वार बन्द कर देता है, चाहे वह समर्थ पुरुष हो अथवा असमर्थ पुरुष या स्त्री अथवा अन्यलिङ्गी। आइये शिवभूति के तर्कों पर दृष्टि डालें।

५
शिवभूति के तर्क एवं मान्यताएँ दिगम्बरमतानुगामी

५.१. सचेललिंग का सर्वथा निषेध

प्रस्तुत अध्याय के प्रथम प्रकरण में ज्ञापित किया गया है कि श्री जिनभद्रगणी ने बोटिकमतोत्पत्ति-कथा के प्रसंग में भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट मुनिधर्म के जो जिनकल्प और स्थविरकल्प भेद बतलाये हैं, उनमें जिनकल्प को भी उन्होंने स्थविरकल्प के ही समान सचेल प्ररूपित किया है। किन्तु शिवभूति के मन में जिनकल्प की जो अवधारणा है, वह जिनभद्रगणी जी की अवधारणा से एकदम विपरीत है। वह जिनेन्द्रलिंगवत् सर्वथा अचेललिंग (नाग्न्यलिंग) को जिनकल्प मानता है। मुखवस्त्रिकादि ग्रहण किये जाने को भी वह जिनकल्प के विपरीत समझता है। इस प्रकार शिवभूतिमान्य जिनकल्प सर्वथा अचेल है, और जिनभद्रगणिमान्य जिनकल्प किसी न किसी रूप में सचेल है। परिणामस्वरूप साधुओं के लिए जिनेन्द्रलिंग के समान अचेलत्व को उचित मानते हुए, शिवभूति गुरु से जिनकल्प को ही अपनाये जाने का आग्रह करता है और इसके औचित्य की सिद्धि यह कहकर करता है कि जिनेन्द्र भी अचेलक थे, अतः अचेलता ही समीचीन है। देखिये, उसके नीचे उद्धृत वचन।

मोक्ष के लिए वस्त्रादि-सर्वसंग-त्यागरूप अपरिग्रह का अवलम्बन दिगम्बरों की प्रथम मान्यता है। शिवभूति निम्नलिखित तर्कों से मोक्षार्थी पुरुषों के लिए सचेललिंग को सर्वथा अग्राह्य सिद्ध करता है।

५.१.१. **उपधिग्रहण परिग्रह है**—शिवभूति इस श्वेताम्बर-सिद्धान्त को नहीं मानता कि वस्त्रपात्रादि उपधि को ग्रहण करना परिग्रह नहीं है, अपितु उसमें मूर्च्छा करना परिग्रह है।[१८] वह उपधि के ग्रहण करने को भी परिग्रह मानता है और उपधि से रहित होने के कारण जिनलिंगरूप जिनकल्प को निष्परिग्रह कहता है। यथा—

''यद्येवं तर्हि किमिदानीमौघिक औपग्रहिकश्चैतावानुपधिः परिगृह्यते? स एव जिनकल्पः किं न क्रियते? --- परलोकार्थिना हि स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पः कर्त्तव्यः, किं पुनरनेन कषायभयमूर्च्छादिदोषनिधिना परिग्रहानर्थेन? अत एव निष्परिग्रहत्वमुक्तम्। अचेलकाश्च जिनेन्द्राः। अतोऽचेलतैव सुन्दरेति।''(हेम. वृत्ति / विशे. भा. / गा.२५५१-५२)।

अनुवाद—''यदि ऐसा है तो आजकल इतनी औघिक और औपग्रहिक उपधि का परिग्रह क्यों किया जाता है? वही जिनकल्प क्यों नही अपनाया जाता? परलोकार्थी (मोक्षार्थी) को वही निष्परिग्रह जिनकल्प अपनाना चाहिए। कषाय, भय, मूर्च्छा आदि दोषों के स्रोत इस परिग्रहरूप अनर्थ से क्या फायदा? इसीलिए श्रुत में निष्परिग्रहत्व का उपदेश दिया गया है। जिनेन्द्र भी अचेलक ही थे। अतः अचेलता ही सुन्दर है (मोक्ष का सम्यग् मार्ग है)।''

इस कथन से स्पष्ट है कि शिवभूति वस्त्रपात्रादि उपधि के ग्रहण को भी परिग्रह मानता है, मात्र उनमें मूर्च्छा के सद्भाव को नहीं। उसके अनुसार वस्त्रपात्रादि परिग्रह के त्याग के बिना मूर्च्छा का परित्याग संभव नहीं है, क्योंकि वस्त्रपात्रादि का परिग्रह मूर्च्छा को जन्म देता है। वह जिनेन्द्र के समान अचेलत्व (सर्वथा वस्त्ररहित होने) को अपरिग्रह मानता है, जिसमें रजोहरण, मुखवस्त्रिका आदि श्वेताम्बर-मुनिलिङ्ग का भी अभाव होता है, जैसा कि प्रवचनपरीक्षाकार ने कहा है—

''येन कारणेन तीर्थकृतां वस्त्राद्यनुपयोगस्तेन कारणेनार्हन् स्वलिङ्गपरलिङ्ग-गृहस्थलिङ्गै रहितः स्यात्। तत्र स्वलिङ्गं रजोहरणादि परलिङ्गमन्यतीर्थिकलिङ्गं पिच्छकादिकं, गृहस्थलिङ्गं तु प्रतीतमेव। एभिर्विप्रमुक्तस्तीर्थकृद्भवति।'' (प्रव. परी. / वृत्ति / १ / २ / ११ / पृ. ७८)।

१८.क—जं पि वत्थं व पायं वा कंबलं पायपुंछणं।
तं पि संजमलज्जट्ठा धारंतिपरिहरंति अ ॥ ६/१९॥
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इअ वुत्तं महेसिणा॥ ६/२०॥ दशवैकालिकसूत्र।
ख—''यच्च श्रुते निष्परिग्रहत्वमुक्तं तदपि धर्मोपकरणेष्वपि मूर्च्छा न कर्त्तव्या। मूर्च्छाभाव एव निष्परिग्रहत्वमवसेयं, न पुनः सर्वथा धर्मोपकरणस्यापि त्यागः।'' हेम.वृत्ति / विशेषावश्यक-भाष्य / गा.२५५१-५२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अर्थात् शिवभूति के अनुसार मूर्च्छारूप भावपरिग्रह तथा बाह्य उपधिरूप द्रव्यपरिग्रह दोनों के त्याग से अपरिग्रह घटित होता है। अपरिग्रह के इस लक्षण से कोई भी वस्त्रधारी पुरुष या स्त्री अपरिग्रही नहीं कहला सकती। अतः शिवभूति के मत में न तो असमर्थ पुरुषों के लिए मुक्ति का अवसर रहता है, न स्त्रियों के लिए, न गृहिलिंगियों के लिए और न अन्यलिंगियों के लिए।

डॉ० सागरमल जी भी मानते हैं कि जहाँ अपरिग्रह की परिभाषा में भावपरिग्रह तथा द्रव्यपरिग्रह दोनों का त्याग अपेक्षित हो, वहाँ न तो आपवादिक सवस्त्रमुक्ति संभव है, न स्त्रीमुक्ति। वे दिगम्बरमत पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं—"किन्तु, जब अचेलता को ही एकमात्र मोक्षमार्ग स्वीकार करके मूर्च्छादि भावपरिग्रह के साथ-साथ वस्त्रपात्रादि द्रव्यपरिग्रह का भी पूर्णत्याग आवश्यक मान लिया गया, तो यह स्वाभाविक ही था कि स्त्रीमुक्ति के निषेध के साथ ही साथ अन्यतैर्थिकों और गृहस्थों की मुक्ति का भी निषेध कर दिया जाय।" (जै.ध.या.स./पृ. ३९९)।

हम देखते हैं कि मोक्ष के विषय में शिवभूति का मत भी ऐसा ही है। वह श्वेताम्बर साधुओं के द्वारा ग्रहण किये जाने वाले वस्त्रपात्रादि को अनर्थकारी परिग्रह कहता है तथा जिनेन्द्रों द्वारा अपनाये गये वस्त्रपात्रादिरहित सर्वथा अचेल जिनलिंगरूप जिनकल्प[१९] को ही मोक्षार्थियों के लिए ग्राह्य बतलाता है। अतः शिवभूति के मत में भी स्त्रीमुक्ति आदि असंभव हैं। इस प्रकार अपरिग्रह के विषय में बोटिक शिवभूति की धारणा दिगम्बरों की धारणा का प्रतिनिधित्व करती है।

५.१.२. **उपधिपरिग्रह से मूर्च्छादि अनेक दोष अवश्यंभावी**—शिवभूति कहता है कि वस्त्रपात्रादि परिग्रह के सद्भाव में मूर्च्छा, भय, कषाय आदि अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। अतः ऐसे अनर्थकारी परिग्रह से क्या फायदा? अर्थात् वह मोक्ष में सहायक न होकर संसार का कारण होने से अनर्थकारी है, अतः परित्याज्य है।[२०] बाह्यपरिग्रह को मूर्च्छादि दोषों का कारण मानना, अत एव उसे परित्याज्य मानना मात्र दिगम्बरमत का तर्क है। आचार्य कुन्दकुन्द ने 'प्रवचनसार' में कहा है—

हवदि व ण हवदि बंधो मदम्हि जीवेऽध कायचेट्ठम्हि।
बंधो धुवमुवधीदो इदि समणा छड्डिया सव्वं॥ ३/१९॥

---

१९. "परलोकार्थिना स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पः कर्त्तव्यः। किं पुनरनेन कषायभयमूर्च्छादि-दोषनिधिना परिग्रहानर्थेन?" हेम.वृत्ति/विशेषावश्यकभाष्य/गा.२५५१-५२।

२०. क—देखिए, पादटिप्पणी १९।
ख—"किमुपधिपरिग्रहेण? परिग्रहसद्भावे कषायमूर्च्छाभयादिका वहवो दोषाः।" हारिभद्रीय वृत्ति/आवश्यकनिर्युक्ति/आवश्यकमूलभाष्य/गा.१४६/ पृ.२१६।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

किध तम्हि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि॥ ३/२१॥

अनुवाद—"कायचेष्टा से जीव के मर जाने पर मुनि को बन्ध होता है, और नहीं भी होता है। किन्तु उपधि (परिग्रह) रखने पर बन्ध अवश्य होता है, अतः मुनि समस्त उपधि का त्याग कर देते हैं। जो मुनि उपधि रखता है उसे मूर्च्छा, आरंभ और असंयम कैसे नहीं होंगे? तथा परद्रव्य में रत वह मुनि आत्मा को सिद्ध कैसे करेगा?"

इस तरह बोटिक शिवभूति का मत दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के मत का सर्वथा अनुगमन करता है।

शिवभूति के गुरु आर्यकृष्ण तर्क करते हैं कि यदि किसी मुनि में देह के प्रति भी कषाय, भय, मूर्च्छा आदि उत्पन्न हो जायँ, तो क्या उसे देह का भी परित्याग कर देना चाहिए?[२१] पर शिवभूति गुरु के इस तर्क को महत्त्व नहीं देता, क्योंकि गुरु का तर्क उसके गले नहीं उतरता, संभवतः इस प्रतितर्क के कारण कि यदि देह में मूर्च्छा उत्पन्न होती है, तो देह का तो परित्याग नहीं किया जा सकता, किन्तु वस्त्रादि में मूर्च्छा उत्पन्न होने पर उनका तो परित्याग किया जा सकता है। अतः मूर्च्छा के जितने भी कारणों का परित्याग संभव है, उतनों का परित्याग करके मूर्च्छोत्पत्ति के निमित्तों में यथाशक्ति कमी की जानी चाहिए।

५.२. जिनकल्प के नाम से एकमात्र अचेल जिनलिंग का समर्थन

५.२.१. **अचेल जिनकल्प (जिनलिंग) से ही मोक्ष की प्राप्ति**—शिवभूति का मत है कि निष्परिग्रह अचेल जिनकल्प (जिनलिंग) से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, अतः मोक्षार्थी को उसी का अवलम्बन करना चाहिए—"**परलोकार्थिना स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पः कर्त्तव्यः।**" (हेम.वृत्ति/विशे.भा./गा.२५५१-५२)। इस कथन में '**स एव**' (केवल वही) शब्दों से एकमात्र जिनकल्प अर्थात् जिनलिंग ही मोक्षार्थी के लिए ग्राह्य बतलाया गया है, जिससे अन्य समस्त कल्प अग्राह्य सिद्ध हो जाते हैं। सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, अन्यतीर्थिकमुक्ति सब का इससे निषेध हो जाता है। अतः शिवभूति का यह मत सर्वथा दिगम्बरमत है।

५.२.२. **जिनेन्द्रगृहीत होने से अचेललिंग ही प्रामाणिक**—शिवभूति यह भी कहता है कि जिनेन्द्र भी अचेलक थे, अतः अचेललिंग ही मोक्ष का प्रामाणिक मार्ग

---

२१. "ततो गुरुणा प्रोक्तम्—हन्त! यद्येवं तर्हि देहेऽपि कषायभयमूर्च्छादयो दोषाः कस्यापि सम्भवन्ति इति सोऽपि व्रतग्रहणानन्तरमेव त्यक्तव्यः प्राप्नोति।" हेम.वृत्ति/विशे.भा./गा.२५५१-५२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन: 0731-2571851 मो.: 8989505108 e-mail: sanskarsagar@yahoo.co.in

है—"**अचेलकाश्च जिनेन्द्राः। अतोऽचेलतैव सुन्दरेति।**" (हेम.वृत्ति / विशे.भा. / गा. २५५१-५२)।

यहाँ **सुन्दर** शब्द **सम्यक्** अर्थ का वाचक है। सम्यक् का अर्थ है समीचीन। समीचीन मार्ग ही प्रामाणिक होता है। अतः उक्त वाक्य से यह स्पष्ट किया गया है कि मोक्ष के जिस मार्ग को जिनेन्द्रों ने अपनाया था, उसी का वे दूसरों के लिए उपदेश दे सकते हैं। अतः जिनेन्द्रों द्वारा अपनाया गया अचेललिंग ही प्रामाणिक हो सकता है, अन्य नहीं। शिवभूति के इन वचनों से दिगम्बरमत ही प्रस्फुटित होता है।

५.२.३. **श्रुत में अचेलत्व का ही उपदेश**—शिवभूति इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होता। वह अचेलकता को ही मोक्ष का एकमात्र प्रामाणिक मार्ग सिद्ध करने के लिए श्रुत को भी प्रमाणरूप में उपस्थित करता है। वह कहता है—"**अत एव श्रुते निष्परिग्रहत्वमुक्तम्।**" (हेम.वृत्ति / विशे.भा. / गा.२५५१-५२)। अर्थात् वस्त्रादिपरिग्रह कषाय, भय, मूर्च्छा आदि दोषों का जनक होने से अनर्थकारी है। इसीलिए श्रुत में वस्त्रपात्रादि-परिग्रहरहित जिनलिंग को ही ग्रहण करने का उपदेश दिया गया है। इस कथन से शिवभूति अचेलक जिनलिंग के अतिरिक्त अन्य लिंगों का उपदेश देनेवाले शास्त्रों को अप्रामाणिक घोषित कर देता है, जो दिगम्बरमत की ही अभिव्यक्ति है। मुनि कल्याणविजय जी, मालवणिया जी और डॉ० सागरमल जी ने भी अपने पूर्वोद्धृत कथनों में स्वीकार किया है शिवभूति ने वस्त्र को परिग्रह मानकर मुनि के लिए अचेलकता का ही प्रतिपादन किया था।

५.३. श्वेताम्बरीय सचेल जिनकल्प का समर्थन नहीं

यद्यपि शिवभूति जिनकल्प को ही ग्राह्य बतलाता है और उसे ही ग्रहण करने का संकल्प करता है,[२२] तथापि जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, जिनकल्प के स्वरूप के विषय में उसकी अवधारणा अलग है। वह जिनेन्द्रलिंग के समान मुख-वस्त्रिका, वस्त्रनिर्मित रजोहरण, प्रावरण (ओढ़ने की चादर या कम्बल) आदि सभी प्रकार की वस्त्रपात्रादि उपधियों से रहित सर्वथा अचेल अवस्था को जिनकल्प मानता है। यह उसके पूर्वोद्धृत "**अचेलकाश्च जिनेन्द्राः। अतोऽचेलतैव सुन्दरेति**" इन वचनों से सिद्ध है।

इसीलिए गुरु आर्यकृष्ण उसे समझाते हैं कि "जिनेन्द्र भी सर्वथा अचेलक नहीं होते, अपितु सभी तीर्थंकर एकवस्त्र लेकर ही प्रव्रजित होते हैं, ताकि लोगों को यह

---

२२. "नन्वहमेव तं करोमि, परलोकार्थिना स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पः कर्त्तव्यः।" (हेम.वृत्ति/ विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५५१-५२।

उपदेश मिले की मोक्षमार्ग सवस्त्र ही है। जब वह वस्त्र गिर जाता है, तभी वे अचेलक होते हैं।[२३] तथा जिनकल्पिक साधु भी सर्वथा अचेल नहीं होते। सर्वोच्च जिनकल्पिक साधु को भी मुखवस्त्रिका एवं वस्त्रनिर्मित रजोहरण धारण करना अनिवार्य है। अन्य जिनकल्पिक तो एक, दो या तीन प्रावरण भी रखते हैं।''[२४] गुरु अन्त में कहते हैं—''यदि फिर भी तुम यही समझते हो कि 'अरहन्त सर्वथा अचेल होते हैं अत: मैं भी अचेल होऊँगा' तो यह जिनाज्ञा का उल्लंघन होगा, क्योंकि जिनेन्द्र ने उपदेश दिया है कि जो अनुपम धृति और संहनन आदि अतिशय से रहित हैं, उन्हें अचेल नहीं होना चाहिए। तुम इस अतिशय से रहित हो, अत: यदि तुम्हारी जिनवचन में श्रद्धा है, तो तुम्हें अचेल होने का विचार छोड़ देना चाहिए, क्योंकि जिनाज्ञा का उल्लंघन करनेवाले का कल्याण नहीं होता।''[२५]

जिनभद्रगणी कहते हैं कि गुरु के द्वारा इस प्रकार अनेकश: समझाये जाने पर भी शिवभूति ने उनकी एक भी बात नहीं मानी और मिथ्यात्व के वशीभूत होकर जिनमत में अश्रद्धा करता हुआ वस्त्र छोड़ कर चला गया।[२६] यहाँ 'जिनमत में अश्रद्धा करता हुआ' इन वचनों से स्पष्ट है कि शिवभूति को श्वेताम्बरीय जिनकल्प और स्थविरकल्प में श्रद्धा नहीं थी और 'वस्त्र छोड़कर चला गया' इस कथन से साफ है कि उसने चोलपट्ट, कम्बल आदि के साथ मुखवस्त्रिका, रजोहरण आदि भी छोड़ दिये। इस तरह उसने श्वेताम्बर जिनकल्पिक और स्थविरकल्पिक साधुओं के लिंग से सर्वथा भिन्न लिंग धारण किया था, जो दिगम्बरमुनि का लिंग था। इसकी पुष्टि श्री जिनभद्रगणी के निम्नलिखित कथन से होती है—''**भिन्न-मय-लिंग-चरिया मिच्छादिट्ठि त्ति बोडिया-ऽभिमया।**'' (२६२०/ विशे.भा.) अर्थात् बोटिक (शिवभूति और उस के अनुयायी) भिन्न मत, भिन्न लिंग (वेश) और भिन्न चर्यावाले होने के कारण मिथ्यादृष्टि माने गये हैं।

यहाँ **भिन्नलिंग** शब्द उच्चस्वर में घोषणा करता है कि बोटिकों के द्वारा अपनाया गया लिंग श्वेताम्बरमत में मान्य जिनकल्पी साधुओं के लिंग से भिन्न था, अत:

---

२३. तह वि गहिएगवत्था सवत्थतित्थोवएसणत्थं ति।
अभिनिक्खमंति सव्वे तम्मि चुएऽचेलया हुंति॥ २५८३॥ विशेषावश्यकभाष्य।
२४. जिणकप्पियादओ पुण सोवहओ सव्वकालमेगंतो।
उवगरणमाणमेसिं पुरिसाविक्खाए बहुभेयं॥ २५८४॥ विशेषावश्यकभाष्य।
२५. अरहंता जमचेला तेणाचेलत्तणं जइ मयं ते।
तो तव्वयणाउ च्चिय निरतिसओ होहि माऽचेला॥ २५८५॥ विशेषावश्यकभाष्य।
२६. इय पण्णविओ वि बहुं सो मिच्छत्तोदयाकुलियभावो।
जिणमयमसद्दहंतो छड्डियवत्थो समुज्जाओ॥ २६०६॥ विशेषावश्यकभाष्य।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मुनिकल्याणविजय जी और उनके अनुयायी विद्वानों का यह कथन सर्वथा कपोलकल्पित है कि शिवभूति ने श्वेताम्बरीय जिनकल्प का पुनरुद्धार किया था। वस्तुतः वह श्वेताम्बरमत के विपरीत मत-लिंग-चर्यावाला दिगम्बर जैन मुनि हो गया था।

५.४. सचेलकता के निषेध से स्त्रीमुक्ति का निषेध

५.४.१. **स्त्रीदीक्षा नहीं दी गई**—यह ध्यान देने योग्य है कि शिवभूति अपनी बहिन उत्तरा को स्वयं दीक्षा नहीं देता। उत्तरा अपने भाई को नग्न देखकर खुद ही नग्न हो जाती है और गणिका द्वारा वस्त्र पहनाये जाने पर खुद ही वस्त्र पहन लेती है। जब वह शिवभूति को गणिका द्वारा वस्त्र पहनाये जाने की बात बतलाती है, तब शिवभूति केवल यह कहता है कि तुम ऐसे (सवस्त्र) ही रहो, यह नहीं कहता कि ऐसे (सवस्त्र) रहते हुए ही तुम मुक्त हो जाओगी। शिवभूति की समझ में आ जाता है कि स्त्रियों का वस्त्रत्याग उचित नहीं है, क्योंकि नग्न स्त्री बीभत्स और निर्लज्ज लगती है। नग्न रहने पर मासिकधर्म आदि के समय जुगुप्सोत्पादक हो जायेगी तथा दर्शक पुरुषों के लिए कामविकार का निमित्त बनेगी, जो स्वयं उसके लिए संकट का कारण होगा। इन अनर्थों को देखकर उसे स्त्रियों का वस्त्रत्याग अनुचित प्रतीत हुआ। तब उसके अनुभव में आया कि स्त्री की शारीरिक संरचना वस्त्रत्याग के योग्य नहीं है और वस्त्रग्रहण परिग्रह होने से हिंसा, कषाय, मूर्च्छा आदि दोषों का हेतु है, अतः मोक्ष में बाधक है। इसके अतिरिक्त स्त्रीशरीर में सदा सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति और विनाश होता रहता है, वह भी हिंसा का कारण है। इस अनुभव से वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि स्त्रीशरीर मोक्षसाधना के योग्य नहीं हैं। इसीलिए उसने आगे चलकर उत्तरा को अपने सम्प्रदाय में दीक्षित नहीं किया, केवल कौण्डिन्य और कोट्टवीर नामक दो पुरुषों को दीक्षा दी। उन्हीं से उसके नवीन बोटिकसम्प्रदाय का आरंभ हुआ।

वस्त्र धारण करने के बाद उत्तरा श्राविका की स्थिति में रही या आर्यिका की, इसका संकेत कथा में नहीं है। किन्तु वस्त्रधारण का दोनों में से किसी भी स्थिति के साथ विरोध नहीं है, क्योंकि दिगम्बरमत में आर्यिका को सवस्त्र रहने की ही आज्ञा है, केवल स्त्रीपर्याय से मोक्ष का विधान नहीं है। इसलिए पं० मालवणिया एवं डॉ० सागरमलजी के इस फलितार्थ में कोई दोष नहीं है कि शिवभूति के सम्प्रदाय में साध्वियाँ सवस्त्र रहती थीं, (जै.ध.या.स./पृ.९)। किन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना युक्तिसंगत नहीं है कि शिवभूति को स्त्रीमुक्ति मान्य थी। वह अपने कथित नवीन सम्प्रदाय में अपनी बहिन उत्तरा को दीक्षित नहीं करता, केवल दो पुरुषों को दीक्षा देता है, इससे स्पष्ट है कि वह स्त्री को मुक्ति के योग्य नहीं मानता था, जो उसके दिगम्बरमत के अनुयायी होने का प्रमाण है।

५.४.२. **स्त्रीमुक्ति के लिए स्थान नहीं**—यतः शिवभूति स्त्रीशरीर को मोक्षसाधना के योग्य नहीं मानता, इसलिए उसके मत में स्त्रीमुक्ति के लिए स्थान नहीं था। श्वेताम्बराचार्यों ने भी उसे अपने तर्क से स्त्रीमुक्ति का निषेधक सिद्ध किया है। श्वेताम्बरग्रन्थ 'प्रवचनपरीक्षा' के कर्त्ता ने शिवभूति के स्त्रीमुक्ति-निषेधक होने का निर्णय निम्नलिखित तर्क के आधार पर किया है—

"**अथ यदा शिवभूतिना नग्नभावोऽभ्युपगतस्तदानीमुत्तरानाम्न्याः स्वभगिन्या वस्त्र-परिधानमनुज्ञातम्। एवं च सति यदि स्त्रीणां मुक्तिं प्ररूपयति तदा सवस्त्र-निर्वस्त्रयोर-विशेषापत्त्या स्वकीयनग्नभावस्य केवलं क्लेशतैवापद्येतेति विचिन्त्य स्त्रीणां मुक्तिर्नि-षिद्धा।**" (प्रव.परी./पातनिका/१/२/१९/पृ. ८२)।

अनुवाद—"जिस समय शिवभूति ने नग्नत्व स्वीकार किया, उस समय उसने अपनी बहिन को वस्त्र पहनने की सलाह दी। अब यदि वह स्त्रियों के लिए मुक्ति का विधान करता है, तो सवस्त्र और निर्वस्त्र दोनों को मुक्ति संभव हो जाने से स्वयं का नग्न रहना केवल क्लेश का ही कारण सिद्ध होगा, ऐसा सोचकर उसने स्त्रियों के लिए मुक्ति का निषेध कर दिया।"

यह श्वेताम्बर-मताश्रित तार्किक निर्णय भी स्पष्ट कर देता है कि बोटिक शिवभूति स्त्रीमुक्ति का समर्थक हो ही नहीं सकता था। इसी तर्क के आधार पर मुनि कल्याणविजय जी ने कुन्दकुन्द के स्त्रीमुक्तिनिषेध एवं केवलिभुक्तिनिषेध का औचित्य प्रतिपादित किया है। पूर्वोद्धृत (शी.३) वक्तव्य में वे कहते हैं—

"छठी सदी के विद्वान आचार्य कुन्दकुन्द, देवनन्दी वगैरह ने---अपने लिए आचार, विचार और दर्शनविषयक स्वतन्त्र साहित्य की रचना की, जिसमें वस्त्रपात्र रखने का एकान्तरूप से निषेध किया। यद्यपि इस ऐकान्तिक निषेध के कारण उन्हें स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का भी निषेध करना पड़ा, क्योंकि स्त्रियों को सर्वथा अचेलक मानना अनुचित था और वस्त्रसहित रहते हुए उनकी मुक्ति मान लेने पर अपने वस्त्रधारी प्रतिस्पर्द्धियों की मुक्ति का निषेध करना असम्भव था। इसी तरह केवली का कवलाहार मानने पर उसके लाने के लिए पात्र भी मानना पड़ता और इस दशा में पात्रधारी स्थविरों का खण्डन नहीं करने पाते।" (श्र.भ.म./पृ.३०२-३०५)।

श्वेताम्बरशास्त्रों में स्त्री के लिए जिनकल्प का निषेध किया गया है—'**जिणकप्पिया इत्थी न होइ।**' ('जैन साहित्य में विकार'/पृ. ४७ पर उद्धृत)। बृहत्कल्पसूत्र में कहा गया है—'**नो कप्पइ निग्गंथीए अचेलियाए हुंतए**' (५/१६)। अर्थात् स्त्री को अचेल होने की अनुमति नहीं है। इस सूत्र की श्री संघदासगणिकृत भाष्यगाथा (५९३५) के वृत्तिकार श्री क्षेमकीर्ति लिखते हैं कि इस सूत्र में अचेलकत्व का प्रतिषेध कर आर्यिकाओं

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५.४.२. **स्त्रीमुक्ति के लिए स्थान नहीं**—यतः शिवभूति स्त्रीशरीर को मोक्षसाधना के योग्य नहीं मानता, इसलिए उसके मत में स्त्रीमुक्ति के लिए स्थान नहीं था। श्वेताम्बराचार्यों ने भी उसे अपने तर्क से स्त्रीमुक्ति का निषेधक सिद्ध किया है। श्वेताम्बरग्रन्थ 'प्रवचनपरीक्षा' के कर्त्ता ने शिवभूति के स्त्रीमुक्ति-निषेधक होने का निर्णय निम्नलिखित तर्क के आधार पर किया है—

"**अथ यदा शिवभूतिना नग्नभावोऽभ्युपगतस्तदानीमुत्तरानाम्न्याः स्वभगिन्या वस्त्र-परिधानमनुज्ञातम्। एवं च सति यदि स्त्रीणां मुक्तिं प्ररूपयति तदा सवस्त्र-निर्वस्त्रयोर-विशेषापत्त्या स्वकीयनग्नभावस्य केवलं क्लेशतैवापद्येतेति विचिन्त्य स्त्रीणां मुक्तिर्नि-षिद्धा।**" (प्रव.परी./पातनिका/१/२/१९/पृ. ८२)।

अनुवाद—"जिस समय शिवभूति ने नग्नत्व स्वीकार किया, उस समय उसने अपनी बहिन को वस्त्र पहनने की सलाह दी। अब यदि वह स्त्रियों के लिए मुक्ति का विधान करता है, तो सवस्त्र और निर्वस्त्र दोनों को मुक्ति संभव हो जाने से स्वयं का नग्न रहना केवल क्लेश का ही कारण सिद्ध होगा, ऐसा सोचकर उसने स्त्रियों के लिए मुक्ति का निषेध कर दिया।"

यह श्वेताम्बर-मताश्रित तार्किक निर्णय भी स्पष्ट कर देता है कि बोटिक शिवभूति स्त्रीमुक्ति का समर्थक हो ही नहीं सकता था। इसी तर्क के आधार पर मुनि कल्याणविजय जी ने कुन्दकुन्द के स्त्रीमुक्तिनिषेध एवं केवलिभुक्तिनिषेध का औचित्य प्रतिपादित किया है। पूर्वोद्धृत (शी.३) वक्तव्य में वे कहते हैं—

"छठी सदी के विद्वान आचार्य कुन्दकुन्द, देवनन्दी वगैरह ने---अपने लिए आचार, विचार और दर्शनविषयक स्वतन्त्र साहित्य की रचना की, जिसमें वस्त्रपात्र रखने का एकान्तरूप से निषेध किया। यद्यपि इस ऐकान्तिक निषेध के कारण उन्हें स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का भी निषेध करना पड़ा, क्योंकि स्त्रियों को सर्वथा अचेलक मानना अनुचित था और वस्त्रसहित रहते हुए उनकी मुक्ति मान लेने पर अपने वस्त्रधारी प्रतिस्पर्द्धियों की मुक्ति का निषेध करना असम्भव था। इसी तरह केवली का कवलाहार मानने पर उसके लाने के लिए पात्र भी मानना पड़ता और इस दशा में पात्रधारी स्थविरों का खण्डन नहीं करने पाते।" (श्र.भ.म./पृ.३०२-३०५)।

श्वेताम्बरशास्त्रों में स्त्री के लिए जिनकल्प का निषेध किया गया है—'**जिणकप्पिया इत्थी न होइ।**' ('जैन साहित्य में विकार'/पृ. ४७ पर उद्धृत)। बृहत्कल्पसूत्र में कहा गया है—'**नो कप्पइ निग्गंथीए अचेलियाए हुंतए**' (५/१६)। अर्थात् स्त्री को अचेल होने की अनुमति नहीं है। इस सूत्र की श्री संघदासगणिकृत भाष्यगाथा (५९३५) के वृत्तिकार श्री क्षेमकीर्ति लिखते हैं कि इस सूत्र में अचेलकत्व का प्रतिषेध कर आर्यिकाओं

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के लिए जिनकल्प पर रोक लगायी गयी है—"**अचेलकत्वप्रतिषेधेन आर्याणां जिनकल्पोऽपि अनेनैव सूत्रेण निवारितो मन्तव्यः।**"

इस प्रकार आर्यिकाओं के लिए जिनकल्प (अचेलत्व) का निषेध श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्पराओं में है। और शिवभूति ने स्थविरकल्प को सपरिग्रह होने के कारण मोक्ष में बाधक बतलाया है, इससे यह स्पष्ट है कि उसने स्त्री, गृहस्थ और परतीर्थिक इन सभी वस्त्रधारियों के मोक्ष का निषेध किया है।

अतः पं० मालवणिया का यह कथन युक्तिसंगत नहीं है कि बोटिक शिवभूति केवल वस्त्रपात्र का विरोधी था, स्त्रीमुक्ति का नहीं।[२७] एकमात्र जिनलिंग को ही मुक्ति का मार्ग स्वीकार करने से स्त्रीमुक्ति का निषेध स्वतः हो जाता है। और चूँकि शिवभूति स्त्रीमुक्ति का समर्थक नहीं था, अतः सिद्ध है कि वह दिगम्बरमत का अनुयायी था। यह तार्किक निर्णय महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि इससे यह भी सिद्ध होता है कि चूँकि श्वेताम्बरमत में स्त्रीमुक्ति मान्य है, इसलिए उसमें पुरुषों के लिए नग्नता का विधान अपवादरूप से भी नहीं हो सकता। अन्यथा वहाँ भी सवस्त्र और निर्वस्त्र दोनों के लिए मुक्ति संभव हो जाने से नग्नता केवल कष्ट का ही कारण सिद्ध होगी।

५.५. शिवभूति को श्वेताम्बरागम मान्य नहीं

शिवभूति अपने गुरु आर्यकृष्ण के समक्ष स्थविरकल्प को अमान्य कर एकमात्र जिनलिंग को ग्राह्य बतलाता है। इस प्रकार वह गुरु द्वारा मान्य आगमों को अमान्य कर देता है। फिर गुरु उसके मतों का खण्डन करने के लिए आगमवचन प्रमाणरूप में उपस्थित करते हैं। उन सबको वह अस्वीकृत कर देता है। यथा—

गुरु कहते हैं—"वस्त्रपात्रादि धर्मोपकरणों का परिग्रह, परिग्रह नहीं है, अपितु उनमें मूर्च्छा करना परिग्रह है।" शिवभूति इसे स्वीकार नहीं करता।

गुरु कहते हैं—"यदि वस्त्रपात्रादि उपधि मूर्च्छा का कारण होने से त्याज्य हैं, तो किसी मुनि को देह में भी मूर्च्छा हो सकती है, तब देह का भी परित्याग जरूरी हो जायेगा। यदि मूर्च्छा होने पर भी देह का परित्याग आवश्यक नहीं है, तो वस्त्रादि उपधि में मूर्च्छा होने पर वस्त्रादि का भी त्याग आवश्यक कैसे हो सकता है?" शिवभूति गुरु के इस तर्क को स्वीकार नहीं करता।

गुरु कहते हैं—"जिनेन्द्र भी सर्वथा अचेलक नहीं थे, क्योंकि आगम में कहा गया है कि सभी तीर्थंकर एक वस्त्र लेकर प्रव्रजित हुए थे।" शिवभूति इसे भी नहीं मानता।

---

२७. 'क्या बोटिक दिगम्बर हैं?' Aspects of Jainology, vol. II, pp. 70-71.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

गुरु के मुख से निकले हुए इन समस्त आगमवचनों की अवहेलना कर शिवभूति उनके द्वारा दिये गये धर्म को ठुकराकर अचेलक जिनलिंग (दिगम्बरमुनिलिङ्ग) को ग्रहण कर लेता है और अपना तथाकथित बोटिकमत चला देता है। इससे सिद्ध होता है कि बोटिक श्वेताम्बर-आगमों को प्रमाण नहीं मानते थे।

आवश्यकनिर्युक्ति में बोटिकों को निह्नव कहा गया है। वृत्तिकार हरिभद्रसूरि ने निह्नव का अर्थ मिथ्यादृष्टि बतलाया है, और मिथ्यादृष्टि उसे घोषित किया है जो जिनवचन को प्रमाण न माने।[२८] इससे स्पष्ट है कि बोटिक श्वेताम्बर-आगमों को नहीं मानते थे। जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यकभाष्य (गा. २६२०) में बोटिकों को भिन्नमत, भिन्नलिंग और भिन्नचर्यावाला मिथ्यादृष्टि कहा है—"**भिन्नमयलिंगचरिया मिच्छद्दिट्ठि त्ति बोडियाऽभिमया।**"

भिन्नमतवाले मिथ्यादृष्टि कहे जाने से सिद्ध है कि बोटिक श्वेताम्बरमत को प्रामाणिक नहीं मानते थे। इतना ही नहीं, अन्य निह्नवों को तो देशविसंवादी ही कहा गया है, किन्तु बोटिकों को तो सर्वविसंवादी घोषित कर दिया गया—"**देशविसंवादिनः सप्त निह्नवाः--- सर्वविसंवादिनः बोटिकनिह्नवान्---।**" (हेम.वृत्ति/ पातनिका/ विशे. भा./गा. २५५०)।

देशविसंवादी का अर्थ है आंशिक मतभेद रखनेवाला और सर्वविसंवादी का अर्थ है सर्वथा मतभेद रखनेवाला। इस उपाधि से तो इस बात में कोई सन्देह ही नहीं रह जाता कि बोटिकों का श्वेताम्बर-आगमों से सर्वथा मतभेद था अर्थात् वे उन्हें सर्वथा अमान्य थे। अतः सिद्ध है कि श्वेताम्बर-साहित्य में 'बोटिक' शब्द के द्वारा दिगम्बरों का ही वर्णन किया गया है।

शिवभूति के इन तर्कों, विचारों और आचरण से स्पष्ट हो जाता है कि उसकी मान्यताएँ दिगम्बरमतानुगामी हैं। उसने श्वेताम्बर-आगमों को अमान्य और सचेललिंग से मुक्ति का निषेध किया है तथा एकमात्र जिनलिंग को मोक्ष का उपाय बतलाया है। सचेललिंग के निषेध से स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति और परतीर्थिकमुक्ति का निषेध स्वतः हो जाता है, जो श्वेताम्बर और यापनीय मतों के सिद्धान्त हैं। इस प्रकार शिवभूति की मान्यताएँ श्वेताम्बर और यापनीय मतों के विरुद्ध हैं, यह उसके दिगम्बरमतानुगामी

२८.निह्नवो मिथ्यादृष्टिः। उक्तं च—
सूत्रोक्तस्यैकस्याप्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः।
मिथ्यादृष्टिः, सूत्रं हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम्॥ हारि. वृत्ति / आवश्यकनिर्युक्ति / गा.७७८।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होने का प्रमाण है। अतः माननीय मालवणिया जी और डॉ० सागरमल जी की यह मान्यता कि "शिवभूति ने केवल वस्त्रपात्रादि-परिग्रहवाले स्थविरकल्प का निषेध किया था, स्त्रीमुक्ति का नहीं, इसलिए बोटिकों को दिगम्बर नहीं कहा जा सकता" सत्य का घोर अपलाप है। शिवभूति की मान्यताएँ उसे दिगम्बरमतानुगामी सिद्ध करती हैं, अतः सिद्ध है कि शिवभूति के यापनीयमत-प्रवर्तक होने की कथा मनगढ़ंत है, यथार्थ नहीं।

६

बोटिक और यापनीय परस्परविरुद्ध परम्पराएँ

६.१. बोटिकमत और यापनीयमत में घोर वैषम्य

बोटिककथा में वर्णित शिवभूति के विचारों और यापनीयमत के सिद्धान्तों की तुलना करने पर स्पष्ट होता है कि बोटिकमत और यापनीयमत परस्परविरुद्ध परम्पराएँ थीं। तुलना नीचे की जा रही है—

१. बोटिकों को आपवादिक सचेल मार्ग स्वीकार्य नहीं था, यापनीयों को था।

२. बोटिकों को स्त्रीमुक्ति मान्य नहीं थी, यापनीयों को थी।

३. बोटिक केवल जिनेन्द्रलिंगवत् जिनकल्प को ही मुक्तिमार्ग मानते थे, इसलिए उन्हें गृहस्थमुक्ति और अन्यतीर्थिकमुक्ति स्वीकार्य नहीं थी, जबकि यापनीयों को थी।

४. बोटिक केवलिभुक्ति नहीं मानते थे, यापनीय मानते थे।

६.२. श्वेताम्बरग्रन्थों में बोटिकों की निन्दा, यापनीयों की प्रशंसा

बोटिकों को श्वेताम्बरग्रन्थों में **निह्नव, महामिथ्यादृष्टि, सर्वापलापी, प्रभूततर-विसंवादी** तथा **सर्वविसंवादी** कहा गया है, जिससे स्पष्ट है कि वे श्वेताम्बरपरम्परा के आगमों को नहीं मानते थे, जब कि यापनीय मानते थे, इसलिए उन्हें न तो किसी श्वेताम्बरग्रन्थ में निह्नव कहा गया है, न मिथ्यादृष्टि, न विसंवादी। सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, अन्यतीर्थिकमुक्ति एवं केवलीभुक्ति को लेकर उनका श्वेताम्बरों के साथ संवाद था। यापनीयों ने जो स्त्रीमुक्ति के समर्थन में तर्क दिये हैं, उन्हें श्वेताम्बर-आचार्यों ने प्रमाणरूप में स्वीकार किया है। इन तथ्यों पर एक दृष्टि डालें—

सर्वप्रथम भद्रबाहु-द्वितीय (विक्रम सं० ५६२, ई० सन् ५०५)[२९] ने 'आवश्यक-निर्युक्ति' में आठ निह्नवों अर्थात् तीर्थंकरवचन की विपरीत व्याख्या करनेवालों एवं उनके

२९. श्री देवेन्द्र मुनि : जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा / पृ.४३८।

नाम से मिथ्यामत चलानेवालों[३०] के आठ उत्पत्तिस्थानों का वर्णन किया है, जिनमें आठवाँ स्थान रहवीरपुर (रथवीरपुर) है। आवश्यकसूत्र के मूलभाष्यकर्त्ता ने इस रथवीरपुर नगर में 'बोटिक' नामक आठवें निह्नव की उत्पत्ति बतलाई है।[३१] जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण (छठी-सातवीं शताब्दी ई०) ने विशेषावश्यकभाष्य में, जिनदासगणी महत्तर (सातवीं शती० ई०) ने आवश्यकचूर्णि में, मलधारी श्री हेमचन्द्रसूरि (१२वीं शती ई०)[३२] ने विशेषावश्यकभाष्य की वृत्ति में तथा श्री हरिभद्रसूरि (८वीं शती ई०) ने आवश्यकनिर्युक्ति की वृत्ति में भी ऐसा ही कहा है।

इनमें से सभी आचार्यों ने बोटिकों को **निह्नव** कहा है तथा आवश्यकमूलभाष्य के कर्त्ता ने उनके मत को मिथ्यादर्शन बतलाया है—

ऊहाए पण्णत्तं बोडियसिवभूइउत्तराहि इमं।
मिच्छादंसणमिणमो रहवीरपुरे समुप्पण्णं॥ १४७॥

---

३०. क—"निह्नव इति कोऽर्थः? स्वप्रपञ्चतस्तीर्थकरभाषितं निह्नुतेऽर्थम् --- इति निह्नवो मिथ्यादृष्टिः। उक्तं च—

सूत्रोक्तस्यैकस्याप्यरोचनादक्षरस्य भवति नरः।
मिथ्यादृष्टिः, सूत्रं हि नः प्रमाणं जिनाभिहितम्॥"

हारिभद्रीयवृत्ति / आवश्यकनिर्युक्ति / गा.७७८ / पृ.२०८।

ख—"निह्नव मिथ्यादृष्टि का ही एक प्रकार है।--- सामान्य मिथ्यात्वी और निह्नव में यह भेद है कि सामान्य मिथ्यात्वी जिनप्रवचन को ही नहीं मानता अथवा मिथ्या मानता है, जब कि निह्नव उसके किसी एक पक्ष का अपने अभिनिवेश के कारण परम्परा से विरुद्ध अर्थ करता है तथा शेष पक्षों को परम्परा के अनुसार ही स्वीकार करता है। इस प्रकार निह्नव वास्तव में जैनपरम्परा के भीतर ही एक नया सम्प्रदाय खड़ा कर देता है।" (डॉ० मोहनलाल मेहता : जैन साहित्य का बृहद् इतिहास / भाग ३ / पृ. १८९)। किन्तु मलधारी श्री हेमचन्द्र सूरि ने आठ निह्नवों में से सात को तो देशविसंवादी (जिनवचन के एकदेश की विपरीत व्याख्या करनेवाला) कहा है, जब कि 'बोटिक' (दिगम्बर) नामक आठवें निह्नवों को सर्वविसंवादी (सम्पूर्ण जिनोपदेश की विपरीत व्याख्या करनेवाला) बतलाया है। (हेम. वृत्ति. / पातनिका / विशेषावश्यकभाष्य / गा. २५५०)।

३१. क—सावत्थी उसभपुरं सेयविया मिहिल उल्लुगातीरं।
पुरिमंतरंजि दसपुर रहवीरपुरं च नगराइं ॥ ७८१॥ आवश्यकनिर्युक्ति।

ख—छव्वास-सयाइं नवुत्तराइं तइया सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
तो बोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पण्णा॥ १४५॥

आवश्यकसूत्र-मूलभाष्य।

३२. जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा / पृ.५३५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

हेमचन्द्रसूरि ने बोटिकों को **सर्वापलापी** (समस्त वचनों का निषेध करनेवाला), **महामिथ्यादृष्टि** एवं **सर्वविसंवादी** (सर्वथा विपरीतमतवाला) विशेषणों से विभूषित किया है। यथा—

"**अष्टमं नगरं द्रव्यलिङ्गमात्रेणापि भिन्नानां सर्वापलापिनां महामिथ्यादृशां वक्ष्यमाणानां बोटिकनिह्नवानां लाघवार्थमुत्पत्तिस्थानमुक्तम्**" (हेम.वृत्ति/विशे.भा./गा.२३०३)।

अनुवाद—"(आवश्यकनिर्युक्ति की गाथा ७८१ में)आठवें नगर (रथवीरपुर) का उल्लेख आगे वर्णित किये जाने वाले उन बोटिक नामक निह्नवों का संक्षेप में निर्देश करने के लिए किया गया है, जो द्रव्यलिंग से भी भिन्न, सर्वापलापी तथा महामिथ्यादृष्टि हैं।"

"**तदेवमुक्ता देशविसंवादिनः सप्त निह्नवाः। अथ सर्वविसंवादिनः 'बहुरय पएस अव्वत्त समुच्छा दुग तिग अबद्धिया चेव' इत्यादिगाथायां च शब्दसङ्गृहीतानष्टमान् बोटिकनिह्नवानभिधित्सुराह** ---।" (हेम.वृत्ति/पातनिका/विशे.भा./गा.२५५०)।

अनुवाद—"इस प्रकार यह उन सात निह्नवों का वर्णन किया गया है जो देशविसंवादी (अल्प विपरीतमतवाले) हैं। अब 'बहुरय' इत्यादि आवश्यकनिर्युक्ति की गाथा में 'च' शब्द से संगृहीत उस बोटिक नामक आठवें निह्नव का कथन किया जा रहा है, जो सर्वविसंवादी (सर्वथा विपरीत-मतवाला) है।"

आवश्यकचूर्णिकार श्री जिनदासगणिमहत्तर लिखते हैं—ये (बहुरत, जीवप्रादेशिक, अव्यक्तिक, सामुच्छेदिक, द्वैक्रिय, त्रैराशिक तथा अबद्धिक) सात निह्नव तो एकदेश-विसंवादी हैं, किन्तु जो ये बोटिक हैं, वे प्रभूततर विसंवादी हैं—"**एते य एगदेसविसंवादिणो, इमे अण्णे पभूततरविसंवादिणो बोडिया भण्णंति।**" (आव.चू./उपो.निर्यु./आव.सू./पू.भा./पृ.४२७)।

ये सभी आचार्य पाँचवी शताब्दी ई० के बाद हुए हैं। अतः इनके समय में यापनीय सम्प्रदाय 'यापनीय' नाम से ही मौजूद था और वह इतना प्रसिद्ध एवं राजमान्य था कि ईसी की पाँचवीं शताब्दी[३३] के कदम्बनरेशों के अभिलेखों में यापनीयसंघ को श्वेतपटमहाश्रमणसंघ, निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ तथा कूर्चकसंघ के साथ भूमि आदि के दान द्वारा सत्कृत किये जाने का उल्लेख है।[३४] इसका तात्पर्य यह है कि ये सभी सम्प्रदाय

---

३३. कदम्बनरेश मृगेशवर्मा (सन् ४७०-४९०)/गुलाबचन्द चौधरी : प्रस्तावना/पृ.२६/जैन-शिलालेख-संग्रह/माणिकचन्द्र/भा.३।

३४. देखिए, इसी अध्याय का षष्ठ प्रकरण/शीर्षक २-'अभिलेखों में 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बर-जैनमुनि का वाचक।'

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उस समय एक-दूसरे से और उनकी धार्मिक मान्यताओं से सुपरिचित थे। अतः उपर्युक्त श्वेताम्बराचार्य अपने समय में विद्यमान प्रसिद्ध यापनीयसम्प्रदाय से अवश्य ही सुपरिचित रहे होंगे। तथापि उन्होंने बोटिकों को न तो कहीं 'यापनीय' शब्द से वर्णित किया है, न ही यापनीयों के लिये महामिथ्यादृष्टि, सर्वापलापी, प्रभूततरविसंवादी तथा निह्नव आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। इससे सिद्ध है कि यापनीयों के प्रति उनमें साधर्मीवत् आदरभाव था, क्योंकि स्त्रीमुक्ति, केवलीभुक्ति आदि दार्शनिक मान्यताओं की दृष्टि से उनमें परस्पर अत्यधिक समानता थी। यह श्री हरिभद्रसूरि की व्याख्याओं से एकदम स्पष्ट है। उन्होंने अपने व्याख्याग्रन्थों में बोटिकों और यापनीयों, दोनों का उल्लेख किया है और बोटिकों को तो निह्नव, मिथ्यादृष्टि तथा प्रभूतविसंवादी कहा है, किन्तु यापनीयों को अपने स्त्रीमुक्तिसिद्धान्त का समर्थक बतलाया है, और इस सिद्धान्त को पुष्ट करने वाले अनेक तर्क **यापनीयतन्त्र** से ग्रहण कर अपनी स्त्रीमुक्ति-मान्यता को उन्होंने प्रमाणित किया है। इस तरह हरिभद्रसूरि ने बोटिकों और यापनीयों को न केवल परस्परभिन्न दो सम्प्रदायों के रूप में वर्णित किया है, अपितु उनमें पूर्व और पश्चिम दिशाओं के समान अत्यन्त वैपरीत्य भी प्रदर्शित किया है। आवश्यकनिर्युक्ति (भा.१) की **'सत्तेया दिट्ठीओ'** इस ७८६वीं गाथा की व्याख्या करते हुए हरिभद्रसूरि लिखते हैं—**''सप्तैता दृष्टयः, बोटिकास्तु मिथ्यादृष्टय एवेति न तद्विचारः।''** अर्थात् बहुरत, जीवप्रादेशिक आदि ये सात निह्नव तो दर्शन हैं, किन्तु बोटिकमत मिथ्यादर्शन ही है। इसलिए उसका इस गाथा में विचार नहीं किया गया है। तत्पश्चात् वे **'छव्वास-सयाइं नवुत्तराइं'** इस आवश्यकमूलभाष्य की गाथा (१४५) की प्रस्तावना में कहते हैं—**''भणिताश्च देशविसंवादिनो निह्नवाः साम्प्रतमनेनैव प्रस्तावेन प्रभूतविसंवादिनो बोटिका भण्यन्ते।''**[३५] अर्थात् देशविसंवादी (अल्प मतभेदवाले) निह्नवों का वर्णन किया जा चुका है। अब इसी प्रसंग में प्रभूतविसंवादी बोटिकों का कथन किया जा रहा है।

इन उद्धरणों में हरिभद्रसूरि ने बोटिकों को मिथ्यादृष्टि एवं प्रभूतविसंवादी (अत्यन्त-विरुद्धमतावलम्बी) कहा है, किन्तु निम्न वक्तव्य में यापनीयों को अपने स्त्रीमुक्ति-सिद्धान्त का समर्थक बतलाकर सम्यग्दृष्टि एवं अविसंवादी (समानमतावलम्बी) सिद्ध किया है—

एक्को वि णमोक्कारो जिणवरवसहस्स बद्धमाणस्स।
संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा॥ ३॥

अनुवाद—''जिनवरों में श्रेष्ठ वर्द्धमान स्वामी को किया गया एक भी नमस्कार पुरुष और स्त्री को संसार-सागर से पार लगा देता है।''

---

३५. हारिभद्रीयवृत्ति/पातनिका/आवश्यकनिर्युक्ति/भा.१/ आवश्यकमूलभाष्य/गाथा १४५/पृ. २१५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

यह हरिभद्रसूरिकृत **ललितविस्तरा** के स्त्रीमुक्ति-प्रकरण की तीसरी गाथा है। इसकी व्याख्या करते हुए, हरिभद्रसूरि लिखते हैं—

''पुरुषग्रहणं पुरुषोत्तमधर्मप्रतिपादनार्थम्, स्त्रीग्रहणं तासामपि तद्भव एव संसारक्षयो भवतीति ज्ञापनार्थम्। (स्त्रीमुक्तौ यापनीयतन्त्रप्रमाणम्)–यथोक्तं यापनीयतन्त्रे 'णो खलु इत्थी अजीवो, ण यावि अभव्वा, ण यावि दंसणविरोहिणी, णो अमाणुसा, णो अणारिउप्पत्ति, णो असंखेज्जाउया, णो अइकूरमई, णो ण उवसन्तमोहा, णो ण सुद्धाचारा, णो असुद्धबोंदी, णो ण ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरणविरोहिणी (प्र.---विराहिणी), णो णवगुणठाण-रहिया, णो अजोग्गा लद्धीए, णो अकल्लाणभायणं ति कहं न उत्तमधम्मसाहिग त्ति।'' (पृ. ४०१-४०२)।

अनुवाद—''इस गाथा में 'पुरुष' (नर) शब्द का ग्रहण यह बतलाने के लिए किया गया है कि धर्म पुरुषप्रधान है (धर्म में पुरुषों का स्थान प्रमुख है)। 'स्त्री' (नारी) शब्द का ग्रहण यह सूचित करने के लिए किया गया है कि स्त्रियाँ भी उसी भव में मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं। (स्त्रीमुक्ति के विषय में यापनीयशास्त्र का प्रमाण)—जैसा कि यापनीयशास्त्र में कहा गया है, स्त्री अजीव नहीं है, अभव्य भी नहीं है, दर्शन-विरोधी भी नहीं है, अमनुष्य नहीं है, अनार्यदेशोत्पन्न नहीं है, असंख्यवर्षायुष्क नहीं है, अतिक्रूरहृदया नहीं है, उपशान्तमोह न हो सके, ऐसी नहीं है, शुद्धाचाररहित नहीं है, अशुद्धशरीरवाली नहीं है, परलोकहितकर-प्रवृत्ति से शून्य नहीं है, अपूर्वकरण-विरोधिनी नहीं है, नौ गुणस्थानों (छठवें से चौदहवें तक) से रहित नहीं है, लब्धि के अयोग्य नहीं है, अकल्याण की पात्र नहीं है, तब उत्तम धर्म की साधक क्यों नही हो सकती?''

हरिभद्रसूरिकृत 'षड्दर्शनसमुच्चय' के टीकाकार गुणरत्न (१४वीं शती ई०) ने भी यापनीयों के मत को श्वेताम्बरमत से प्रायः अविसंवादी (मेल रखनेवाला) प्रतिपादित किया है। यथा—

''दिगम्बराः पुनर्नाग्न्यलिङ्गाः पाणिपात्राश्च। ते चतुर्धा काष्ठासङ्घ-मूलसङ्घ-माथुर-सङ्घगोप्यसङ्घ-भेदात्। काष्ठासङ्घे चमरीबालैः पिच्छिका, मूलसङ्घे मायूरपिच्छैः पिच्छिका, माथुरसङ्घे मूलतोऽपि पिच्छिका नादृता, गोप्या मायूरपिच्छिका। आद्यस्त्रयोऽपि सङ्घा वन्द्यमाना धर्मवृद्धिं भणन्ति, स्त्रीणां मुक्तिं, केवलिनां भुक्तिं, सद्व्रतस्यापि सचीवरस्य मुक्तिं च न मन्वते। गोप्यास्तु वन्द्यमाना धर्मलाभं भणन्ति, स्त्रीणां मुक्तिं केवलिनां भुक्तिं च मन्यन्ते। गोप्या यापनीया इत्यप्युच्यन्ते।'' (त. र. दी. / षड्दर्शन-समुच्चय / अधिकार ४ / पृ.१६१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"दिगम्बर नग्न रहते हैं तथा अपने पाणिपात्र में ही आहारजल ग्रहण करते हैं। उनके चार भेद हैं : काष्ठासंघ, मूलसंघ, माथुरसंघ और गोप्यसंघ। काष्ठासंघ में चमरीगाय के बालों की पिच्छिका रखी जाती है। मूलसंघ में मोरपंखों की पिच्छिका ली जाती है। माथुरसंघ में किसी भी प्रकार की पीछी का प्रयोग नहीं किया जाता। गोप्यसंघवाले मुनि मयूरपिच्छिका ग्रहण करते हैं। पहले के तीन संघों के साधु नमस्कार किये जाने पर 'धर्मवृद्धि हो' यह आशीर्वाद देते हैं। वे स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति और सद्व्रती होते हुए भी वस्त्रधारी की मुक्ति नहीं मानते। किन्तु गोप्यसंघवाले साधु नमस्कार किये जाने पर 'धर्मलाभ हो' यह आशीर्वाद देते हैं तथा स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति मानते हैं। गोप्यों को यापनीय भी कहते हैं।"

गुणरत्न के इस कथन से स्पष्ट होता है कि यापनीय श्वेताम्बरों के समान स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति तथा गृहस्थमुक्ति मानते थे, इसलिए श्वेताम्बरों के साथ उनका प्रभूततर संवाद (अत्यधिक विचारसाम्य) था, फलस्वरूप प्रभूततर विसंवादी बोटिकों से भिन्न थे। इसकी पुष्टि इस बात से भी होती है कि गुणरत्न ने यापनीयों का एक अन्य नाम 'गोप्य' तो बतलाया है, किन्तु 'बोटिक' नहीं बतलाया।

प्रस्तुत प्रसंग में बोटिकों के लिए प्रयुक्त **महामिथ्यादृष्टि, सर्वविसंवादी** और **सर्वापलापी** विशेषण ध्यान देने योग्य हैं। ये विशेषण सूचित करते हैं कि बोटिक श्वेताम्बरों की स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि सभी मौलिक मान्यताओं का निषेध करते थे, जो यापनीयों के द्वारा नहीं किया जाता था, केवल दिगम्बरों के द्वारा किया जाता था। अतः बोटिकों से तात्पर्य दिगम्बरों से ही था।

६.३. प्राचीन श्वेताम्बरग्रन्थों में बोटिकों की 'दिगम्बर' संज्ञा

इसीलिए सभी प्राचीन श्वेताम्बराचार्यों ने बोटिकों को 'दिगम्बर' शब्द से अभिहित किया है और स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि का विरोधी बतलाया है। यथा—

१

श्री मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने विशेषावश्यकभाष्य की वृत्ति में बोटिककथा से शिवभूति के विषय में दो निष्कर्ष निकाले हैं : पहला यह कि वह साधु के लिए वस्त्रपात्रादि समस्त बाह्यपरिग्रह का विरोधी था, दूसरा यह कि वह स्त्रीमुक्ति का समर्थक नहीं था। इसलिए हेमचन्द्रसूरि ने उत्तराध्ययन की बृहट्टीका से वस्त्र की आवश्यकता और स्त्रीमुक्ति को सिद्ध करनेवाले हेतुओं का निर्देश किया है और कहा है कि जिन्हें विस्तार से जानने की इच्छा है, उन्हें उत्तराध्ययन की बृहट्टीका देखना चाहिए। वे हेतु इस प्रकार हैं—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

क—जो जिस वस्तु को चाहता है, वह उसके निमित्त और उपादान की आकांक्षा करता है, जैसे घट को चाहनेवाला उसके मृत्पिण्डरूप उपादान को चाहता है। इसी प्रकार मुनियों को चारित्र की आकांक्षा होती है, और उसका निमित्त वस्त्र है, अतः वे वस्त्र को चाहते हैं।

ख—जिस वस्तु की उत्पत्ति जहाँ नहीं होती, वहाँ उत्पत्ति के सम्पूर्ण कारणों का अभाव होता है, जैसे शुद्ध (मिट्टी आदि से रहित) शिला में अंकुरोत्पत्ति के कारण न होने से अंकुर उत्पन्न नहीं होता। किन्तु स्त्रियों में मुक्ति के कारणों का अभाव नहीं है, अतः उनकी मुक्ति का भी अभाव नहीं है।[३६]

बोटिक शिवभूति की मान्यताओं को अप्रामाणिक सिद्ध करने के लिए श्री हेमचन्द्रसूरि ने मुनि के लिए वस्त्रधारण के औचित्य और स्त्रीमुक्ति को सिद्ध करने का जो यह प्रयत्न किया है, उससे स्पष्ट है कि वे बोटिक शिवभूति को दिगम्बरमत का प्रवर्तक मानते थे।

मालवणिया जी का मत युक्ति-प्रमाणविरुद्ध—पं० दलसुख जी मालवणिया लिखते हैं कि श्री हेमचन्द्रसूरि ने नग्नता के भ्रम से बोटिक को दिगम्बर मान लिया है, इसीलिए उन्होंने यहाँ स्त्रीमुक्ति की चर्चा उठाई है। मूल बोटिककथा में स्त्रीमुक्ति की चर्चा की कोई सूचना ही नहीं है, अतः हेमचन्द्रसूरि को यह चर्चा उठाने की आवश्यकता नहीं थी।[३७] चूँकि मालवणिया जी ने बोटिकों को यापनीय माना है, इसलिए उनके कथन का अभिप्राय यह है कि श्री हेमचन्द्रसूरि ने 'नग्नता' के भ्रम से यापनीयों को दिगम्बर मान लिया है।

ऐसा लगता है कि विशेषावश्यकभाष्य के इतने बड़े वृत्तिकार एवं समकालीन यापनीय सम्प्रदाय के प्रत्यक्षदर्शी बहुश्रुत आचार्य को माननीय मालवणिया जी इतना अज्ञानी समझते हैं कि वे यापनीय और दिगम्बरों के भेद को भी पहचानने में असमर्थ

---

३६. "एतासां च बोटिक-व्यतिकर-सम्बद्धानां सर्वासामपि गाथानामर्थं संक्षिप्य 'इह यो यदर्थी न स तन्निमित्तोपादानं प्रत्यानादृतः, यथा घटार्थी मृत्पिण्डोपादानं प्रति, चारित्रार्थिनश्च यतयः, तन्निमित्तं च चीवरमिति, न चास्यासिद्धत्वम्' इत्यादिना सूत्र-वस्त्र-पात्रपरिग्रहविषयं वादस्थानकं वृद्धैर्विचारितमास्ते, तच्चोत्तराध्ययनेषु द्वितीये परिषहाध्ययने आचेलक्यपरीषहे बृहट्टीकायां तदर्थिनान्वेषणीयम्। तथा 'इह खलु यस्य यत्रासम्भवो न तस्य तत्र कारणावैकल्यं, यथा शुद्धशिलायां शाल्यङ्कुरस्य, अस्ति च तथाविधस्त्रीषु मुक्तेः कारणावैकल्यं, न चायमसिद्धो हेतुः' इत्यादिना विरचितं स्त्रीनिर्वाणविषयमपि वादस्थानकं तत्रैव षट्त्रिंशत्तमाध्ययने द्रष्टव्यम्।" (हेम.वृत्ति./ विशेषावश्यकभाष्य / गा. २६०६-२६०९)।

३७. 'क्या बोटिक दिगम्बर हैं?' Aspect of Jainology, Vol. II, Page 71.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

थे, जिससे उन्होंने यापनीयों को भ्रम से दिगम्बर मान लिया। यह तो इतना बड़ा अज्ञान है कि इसके कारण उन्हें श्वेताम्बर और दिगम्बर का भी भेद पहचानने में असमर्थ मानना होगा। इससे तो वे विशेषावश्यकभाष्य की टीका के भी अयोग्य सिद्ध हो जाते हैं।

किन्तु, मैं यह मानने में असमर्थ हूँ कि श्री मलधारी हेमचन्द्रसूरि इतने अज्ञानी थे कि उन्होंने भ्रम से यापनीयों को दिगम्बर मान लिया है। वस्तुतः उन्होंने शिवभूति को उसके नग्न हो जाने से दिगम्बर नहीं माना है, अपितु वह वस्त्रग्रहण को मूर्च्छा, भय, कषाय आदि अनेक दोषों की उत्पत्ति का कारण बतलाकर मोक्ष में सर्वथा बाधक मानता है तथा कहता है कि केवल जिनलिंगरूप जिनकल्प (सर्वथा वस्त्ररहित नग्न मुद्रा) से ही मोक्ष हो सकता है—"**परलोकार्थिना स एव निष्परिग्रहो जिनकल्पः कर्त्तव्यः, किं पुनरनेन कषायभय-मूर्च्छादिदोषनिधिना परिग्रहानर्थेन**"[३८] उसकी इस विचाराधारा से उसे दिगम्बर माना है, क्योंकि एकमात्र जिनलिंग (नग्नमुद्रा) से मोक्ष मानने का फलितार्थ है—श्वेताम्बरों और यापनीयों को मान्य सवस्त्रमुक्ति को अस्वीकार करना। सवस्त्रमुक्ति की अस्वीकृति से स्थविरकल्पियों, गृहस्थों, परतीर्थिकों और स्त्रियों की मुक्ति अमान्य हो जाती है। अतः सवस्त्रमुक्ति को अमान्य करना दिगम्बर होने का ही लक्षण है। इस प्रकार हेमचन्द्रसूरि नग्नता के भ्रम में पड़ कर नहीं, अपितु शिवभूति के सैद्धान्तिक तर्कों के तल में उतरकर इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि वह दिगम्बर है। इसलिए भले ही मूल बोटिककथा में स्पष्ट शब्दों में स्त्रीमुक्ति की चर्चा नहीं है, किन्तु उसमें की गई सैद्धान्तिक चर्चा इसी निष्कर्ष पर पहुँचाती है कि शिवभूति स्त्रीमुक्ति का विरोधी है। हेमचन्द्रसूरि ने यह भी देखा है कि वह अपने सम्प्रदाय में अपनी बहिन उत्तरा को दीक्षित नहीं करता, केवल दो पुरुषों, कौण्डिन्य और कुट्टवीर को दीक्षा देता है और उन्हीं से बोटिकपरम्परा प्रचलित होती है। इस सैद्धान्तिक वैशिष्ट्य और व्यावहारिक दृष्टान्त के आधार पर ही श्री हेमचन्द्रसूरि इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि बोटिक शब्द का प्रयोग दिगम्बरों के लिए ही किया गया है।

इससे माननीय मालवणिया जी का यह कथन भी असत्य सिद्ध हो जाता है कि प्रारंभिक श्वेताम्बराचार्य स्त्रीमुक्ति-निषेधक दिगम्बरसम्प्रदाय से परिचित नहीं थे, क्योंकि एक तो वे **बोटिक** नाम से दिगम्बरसम्प्रदाय से परिचित थे, दूसरे **नग्नक्षपणक** या **क्षपणक** नाम से भी इस सम्प्रदाय को वे जानते थे। उदाहरणार्थ हेमचन्द्रसूरि ने विशेषावश्यकभाष्य (गाथा २५८५) की वृत्ति में पूर्वपक्ष की ओर से यह गाथा उद्धृत की है—

---

३८. हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति/विशेषावश्यकभाष्य/गा.२५५२/ पृ.५११।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जारिसियं गुरुलिगं सीसेण वि तारिसेण होयव्वं।
न हि होइ बुद्धसीसो सेयवडो नग्गखवणो वा॥

अर्थात् जैसा गुरु का लिंग (वेश) होता है, वैसा ही शिष्य का भी होना चाहिए, क्योंकि बुद्ध का शिष्य श्वेतवस्त्रधारी या नग्नक्षपणक नहीं हो सकता।

इस गाथा में 'नग्नक्षपणक' शब्द का प्रयोग है, जिसे श्वेताम्बराचार्यों ने ही 'दिगम्बर' अर्थ का वाचक बतलाया है—'**क्षपणको दिगम्बरः।**'[३९]

२

उपाध्याय धर्मसागरजी ने अपने 'प्रवचनपरीक्षा' नामक ग्रन्थ के पूर्वभाग-द्वितीय-विश्राम में बोटिक मत की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार किया है—

तत्थ य खमणो रमणो दुग्गइवणिआइ जेण वणिआए।
न मुणइ मुत्तिं भुत्तिं केवलिणो कवलभोइस्स॥ ३॥

तस्सुप्पत्ति नवहिअ-छव्वास-सएहिं वीरनिव्वाणा।
रहवीरपुरे कंबलकोहाओ सहस्समल्लाओ॥ ४॥

अनुवाद—"क्षपणक (बोटिक) स्त्री की मुक्ति तथा केवली का कवलाहारी होना नहीं मानते, इसलिए वे नारकादि-दुर्गतिरूपी स्त्री के पति हैं। इनके बोटिकमत की उत्पत्ति वीर निर्वाण के ६०९ वर्ष बाद रथवीरपुर नगर में कम्बलक्रोधी (रत्नकम्बल के निमित्त से जिसे क्रोध आ गया था) सहस्रमल्ल (शिवभूति) नामक पुरुष से हुई थी।"

प्रवचनपरीक्षाकार उक्त गाथाओं की वृत्ति में लिखते हैं—

"**क्षपणको बोटिको---। बोटिको वनितायाः मुक्तिं न मन्यते। --- तथा कवलभोजिनः तथाविधवेदनीयकर्मोदयात् क्षुद्वेदनोपशमाय कवलाहारं ग्रह्णानस्य केवलिनः---भोजनं, केवलिनां कवलाहारो न भवतीत्युपदेशेन प्रतिषेधयति।**" (प्रव.परी./वृत्ति./गा.३ / पृ.६६)।

अनुवाद—"क्षपणक बोटिक को कहते हैं। बोटिक स्त्री की मुक्ति नहीं मानते तथा क्षुधा-वेदनीयकर्म के उदय से उत्पन्न क्षुधा को शान्त करने के लिए कवलाहार ग्रहण करनेवाले केवली के विषय में कहते हैं कि वे कवलाहार नहीं करते।"

"**तस्य बोटिकस्योत्पत्तिः वीरनिर्वाणात् नवाधिकषट्शतवर्षैः ६०९ व्यतीतै रथवीरनगरे जातेत्युत्पत्तिकालः प्रदर्शितः। कस्माज्जातेत्याह---राजमान्य-सहस्र-**

३९. प्रवचनपरीक्षा / वृत्ति / १ / १ / ८ / पृ.१९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मल्लाभिधानशिवभूत्यपरनाम्नः पुरुषादिति। अनेन दिगम्बरमतस्यादिकर्त्ता प्रदर्शितः।'' (प्रव.परी./ वृत्ति / गा.४/ पृ.६६)।

अनुवाद—''इनके बोटिकमत की उत्पत्ति वीरनिर्वाण के बाद ६०९ वर्ष व्यतीत होने पर रथवीर नगर में राजमान्य सहस्रमल्ल नामक पुरुष से हुई थी, जिसका दूसरा नाम शिवभूति था। इस कथन से दिगम्बरमत के आदिकर्ता का बोध कराया गया है।''

प्रवचनपरीक्षाकार ने बोटिक शिवभूति की स्त्रीमुक्ति-विरोधी मान्यता का तार्किक अनुसन्धान इस प्रकार किया है—

''अथ यदा शिवभूतिना नग्नभावोऽभ्युपगतस्तदानीमुत्तरानाम्न्याः स्वभगिन्या वस्त्रपरिधानमनुज्ञातम्। एवं च सति यदि स्त्रीणां मुक्तिं प्ररूपयति तदा सवस्त्रनिर्वस्त्रयोर्विशेषापत्त्या स्वकीयनग्नभावस्य केवलं क्लेशतैवापद्येतेति विचिन्त्य स्त्रीणां मुक्तिर्निषिद्धा।'' (प्रव.परी./वृत्ति/पातनिका/१/२/१९/पृ.८२)।

अनुवाद—''जिस समय शिवभूति ने नग्नवेश धारण किया, उसी समय उसने अपनी उत्तरा नाम की बहिन को वस्त्र धारण करने की आज्ञा दी। इस स्थिति में यदि वह स्त्रीमुक्ति का प्ररूपण करता, तो मोक्ष के लिए वस्त्रधारण करने और न करने में कोई विशेषता न रहने से उसका नग्न रहना केवल क्लेश का कारण सिद्ध होता। इसलिए उसने स्त्रीमुक्ति का निषेध कर दिया।''

शिवभूति के केवलिभुक्ति-विरोधी मत का युक्ति के द्वारा उद्घाटन प्रवचनपरीक्षाकार इन शब्दों में करते हैं—

''अथोत्पन्नदिव्यज्ञाना अर्हन्तो न भिक्षार्थं व्रजन्ति, साध्वानीतान्नादिभुक्तौ च सप्तविधः पात्रनिर्योगोऽवश्यमभ्युपगन्तव्यः स्यात्। तथा च नाग्न्यव्रतं स्त्रीमुक्तिनिषेधश्चेत्युभयमपि दत्ताञ्जल्येव स्यादिति विचिन्त्य शिवभूतिना केवलिनो भुक्तिर्निषिद्धा।'' (प्रव.परी./वृत्ति/पातनिका/१/२/४३/पृ.१०४)।

अनुवाद-''केवलज्ञान होने पर अरहन्त भिक्षा के लिए नहीं जाते और साधुओं द्वारा लाये गये अन्नादि का भोजन करने की स्थिति में सात प्रकार का पात्रनियोंग स्वीकार करना आवश्यक है। ऐसा करने पर नाग्न्यव्रत और स्त्रीमुक्तिनिषेध दोनों को तिलांजलि देनी होगी, यह सोचकर शिवभूति ने केवली के कवलाहार का निषेध कर दिया।''

इन वक्तव्यों में प्रवचनपरीक्षा के कर्त्ता ने बोटिकमत को दिगम्बरमत कहा है तथा बोटिकों को स्त्रीमुक्ति तथा केवलिभुक्ति का प्रतिषेधक बतलाया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

कल्पसूत्र की कल्पलता-व्याख्या में श्री समयसुन्दरगणी ने स्थविरावली का वर्णन करते हुए लिखा है—

"**धणगिरिशिष्यः सिवभूई ४। शिवभूतिशिष्यः एको बोटकनामाऽभूत्। तस्मात् वीरात् सं. ६०९ वर्षे बोटकमतं जातं दिगम्बरमतमित्यर्थः।**" (अष्टम व्याख्यान/पृ.२३५)।

अनुवाद-"धणगिरि का शिष्य शिवभूति था। शिवभूति का एक बोटक नाम का शिष्य था। उससे वीर निर्वाण संवत् ६०९ में बोटकमत अर्थात् दिगम्बरमत की उत्पत्ति हुई।"

यहाँ यद्यपि शिवभूति की बजाय उसके एक बोटक नामक शिष्य से बोटकमत की उत्पत्ति बतलाई गई है, तथापि बोटकमत को दिगम्बरमत कहा गया है।

४

रत्नर्षि नामक श्वेताम्बर विद्वान् ने **भगवद्वाग्वादिनी** नामक ग्रन्थ में "**विक्रमादृतुखयुगाब्दे ४०६ देवनन्दी, ततो गुणनन्दिकुमारनन्दिलोकचन्द्रानन्तरं मुनिरैयुगाब्दे प्रथमः प्रभाचन्द्र इति बौटिके**" **तथा** "**यत्तु देवनन्दिबोटिकं**" **पूज्यपाद इति** ---"[४०] इन उक्तियों में पूज्यपाद देवनन्दी, प्रभाचन्द्र आदि दिगम्बराचार्यों को बोटिक कहा है।

इस प्रकार दिगम्बर और यापनीय सम्प्रदायों के बीच रहनेवाले इन आचार्यों ने बोटिकों और यापनीयों में पूर्व और पश्चिम के समान अत्यन्त वैपरीत्य प्रदर्शित किया है। जहाँ बोटिकों को महामिथ्यादृष्टि, सर्वापलापी और सर्वविसंवादी कहा है, वहाँ यापनीयों को अपने स्त्रीमुक्ति-सिद्धान्त के समर्थकरूप में वर्णित किया है। दोनों सम्प्रदायों से भली भाँति परिचित इन आचार्यों के द्वारा इन दोनों में इतना वैपरीत्य बतलाये जाने पर भी पं० मालवणिया और डॉ० सागरमल जी ने इन्हें एक माना है, यह आश्चर्य की बात है।

आश्चर्य पर आश्चर्य यह है कि डॉ० सागरमल जी एक ओर तो यह स्वीकार करते हैं कि श्वेताम्बरसाहित्य में ऐसा स्पष्ट उल्लेख कहीं नहीं मिलता कि बोटिक और यापनीय एक हैं, दूसरी ओर यह भी कहते हैं कि श्वेताम्बरसाहित्य में इनके बारे में जो विवरण प्रस्तुत किया गया है, उसे देखने से ही स्पष्ट हो जाता है कि दोनों शब्द एक ही परम्परा के सूचक हैं। (जै.ध.या.स./ पृ.८)।

श्वेताम्बरसाहित्य में बोटिकों और यापनीयों से सम्बद्ध जो विवरण है, वह ऊपर प्रस्तुत किया जा चुका है। क्या उसे देखने से लगता है कि बोटिक और यापनीय

४०. पं. नाथूराम प्रेमी : जैन साहित्य और इतिहास/द्वि.सं./पृ.५३-५४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दोनों एक ही परम्परा के नाम हैं? श्वेताम्बरग्रन्थों में यापनीयों का विवरण केवल दो जगह मिलता है, हरिभद्रसूरि की 'ललितविस्तरा' में और उनके ही 'षड्दर्शनसमुच्चय' की गुणरत्नकृत टीका में। दोनों जगह यापनीयों को स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का समर्थक बतलाया गया है। इसके अलावा उनके बारे में कुछ भी नहीं कहा गया। बोटिकों का विवरण अनेक ग्रन्थों में है, लेकिन उन सब में उन्हें वस्त्रपात्रादि परिग्रह को मूर्च्छा, भय और कषाय का कारण बतलानेवाला एवं एकमात्र जिनकल्प को ही मोक्षमार्ग प्रतिपादित करनेवाला, अत एव स्त्रीमुक्ति एवं केवलिभुक्ति का विरोधी, दिगम्बर कहा गया है। उनको महामिथ्यादृष्टि, सर्वापलापी और सर्वविसंवादी विशेषणों से विभूषित किया गया है, यहाँ तक कि उनके दृष्टिगोचर होने को महान् अपशकुन का कारण बतलाया है।[४१] जब कि यापनीयों को इनमें से एक भी विशेषण नहीं दिया गया, बल्कि उनके स्त्रीमुक्तिपोषक तर्कों को श्वेताम्बरों ने अपने लिए प्रमाणरूप में स्वीकार किया है। क्या इन विवरणों से सूचित होता है कि बोटिक और यापनीय एक ही परम्परा के नाम हैं? इनसे तो यह सूचित होता है कि ये दोनों, दिन और रात के समान परस्पर विपरीत परम्पराओं के नाम हैं। जो बोटिक सर्वापलापी हैं अर्थात् श्वेताम्बरसम्प्रदाय के स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति, गृहस्थमुक्ति, अन्यतीर्थिकमुक्ति आदि समस्त मौलिक सिद्धान्तों का निषेध करते हैं, वे स्त्रीमुक्ति आदि श्वेताम्बरसिद्धान्तों का समर्थन करनेवाले यापनीय कैसे हो सकते हैं? इन विवरणों से यह बात समझ में आ जाती है कि श्वेताम्बरसाहित्य में बोटिकों और यापनीयों को कहीं भी एक क्यों नहीं कहा गया? सारे विवरण सूचित करते हैं कि वे एक हैं ही नहीं, तब उन्हें एक कैसे कहा जा सकता था? डॉक्टर सा० ने बोटिकों और दिगम्बरों के एकत्वसूचक विवरणों को बोटिकों एवं यापनीयों के एकत्व का सूचक मान लिया है। यह स्त्रीत्व के सूचक अंगों को पुरुषत्व के सूचक अंग मान लेने के समान महान् भ्रान्ति से ग्रस्त हो जाने का सूचक है।

डॉक्टर सा० लिखते हैं कि सभी श्वेताम्बराचार्यों ने बोटिकों को भ्रम से दिगम्बर मान लिया है। (जै.ध.या.स./पृ.८)। किन्तु जब ये विवरण ही उन्हें दिगम्बर सिद्ध

---

४१. चक्कयरम्मि भमाडो, भुक्कामारो य पंडुरंगम्मि।
तच्चिन्नअ रुहिरपडनं, बोडिअमसिये धुवं मरणं॥ ओघनिर्युक्तिभाष्य।
अनुवाद—जैन साधु के चातुर्मास हेतु किसी ग्राम, नगर में प्रवेश करते समय यदि कोई चक्रधर भिक्षु सामने मिले, तो साधु को चातुर्मास में भ्रमण करना पड़ेगा, पांडुरंग भिक्षु के मिलने पर भूखों मरना पड़ेगा, बौद्ध भिक्षु के दर्शन होने पर रक्तपात होगा किन्तु बोटिक या अश्वेत भिक्षु मिले तो निश्चित रूप से मरण होगा। (सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री अभिनन्दन ग्रन्थ/पृष्ठ २०४ तथा 'श्रमण भगवान् महावीर'/पृ.२७८)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कर रहे हों, तब उन्हें दिगम्बर मानना भ्रम कैसे कहला सकता है? यह तो यथार्थज्ञान ही है। हाँ, उन्हें दिगम्बर न मानना भ्रम कहला सकता है। जो आचार्य स्वयं बोटिकों को दिगम्बर सिद्ध करनेवाले प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हों, वे उन्हें दिगम्बर न मानें, यह कैसे हो सकता था?

५

डॉक्टर सा० ने यापनीयसम्प्रदाय को भगवान् महावीर की परम्परा का सही रूप में प्रतिनिधित्व करनेवाला कहा है। (जै.ध.या.स./ लेखकीय/पृ.v)। डॉक्टर सा० की दृष्टि से भगवान् महावीर की सही परम्परा वही है, जो उन्होंने स्वयं कल्पित की है अर्थात् अचेल-सचेल दोनों मार्गों से मोक्ष माननेवाली परम्परा। यापनीयसम्प्रदाय को महावीर के नाम से कल्पित की गयी इस परम्परा का सही प्रतिनिधि अवश्य माना जा सकता है, किन्तु यापनीयों को बोटिक मानने पर यह सम्भव नहीं है। क्योंकि श्वेताम्बरशास्त्रों में बोटिकों को आठवाँ **निह्नव** कहा गया है। निह्नव का अर्थ है तीर्थंकर के उपदेश को अमान्य करनेवाला और अपना मत चलानेवाला मिथ्यादृष्टि पुरुष, जैसा कि श्री हरिभद्रसूरि ने कहा है—"**निह्नव इति कोऽर्थः? स्वप्रपञ्चतस्तीर्थकरभाषितं निह्नुतेऽर्थम्---इति निह्नवो मिथ्यादृष्टिः।**" (हारि.वृत्ति./आव.निर्यु./गा. ७७८/पृ. २०८)। अतः यापनीयों को बोटिक मानने पर वे (यापनीय) तीर्थंकर महावीर के नाम से कल्पित किये गये सचेलाचेल मोक्षमार्ग के उपदेश को अमान्य करनेवाले सिद्ध होते हैं, न कि सही प्रतिनिधित्व (अनुगमन) करनेवाले। इसलिए यापनीयों और बोटिकों के एकत्व की मान्यता का परित्याग किये बिना डॉक्टर सा० का उपर्युक्त मत सत्य सिद्ध नहीं हो सकता। श्वेताम्बराचार्यों ने महावीर के द्वारा जिस सचेल मोक्षमार्ग का उपदेश दिये जाने की कल्पना की है, उसे दिगम्बरों ने ही अमान्य किया है और मूलसंघ या निर्ग्रन्थसंघ नामक दिगम्बरसंघ के मत को ही श्वेताम्बरों ने नवीन प्रचलित मत माना है, इसलिए बोटिककथा के अनुसार दिगम्बर ही आठवें निह्नव सिद्ध होते हैं। इससे स्पष्ट है कि आवश्यकनिर्युक्ति आदि श्वेताम्बरग्रन्थों में दिगम्बरों को ही बोटिक कहा गया है, यापनीयों को नहीं। इस प्रकार बोटिक और यापनीय एक ही परम्परा के नाम नहीं है, अपितु परस्पर विपरीत परम्पराओं के अभिधान हैं।

६.४. आधुनिक श्वेताम्बर विद्वानों का मत : बोटिक-दिगम्बर एक

अनेक आधुनिक श्वेताम्बर आचार्यों और विद्वानों ने भी 'बोटिक' शब्द से 'दिगम्बर' अर्थ ही ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ—

१. उन्नीसवीं शताब्दी ई० के श्वेताम्बराचार्य श्री विजयानन्द सूरीश्वर 'आत्माराम' जी ने अपने ग्रन्थ 'तत्त्वनिर्णयप्रासाद' में लिखा है—"**तिस शिवभूति ने दो चेले करे**

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कौडिन्य १, कोष्टवीर २, इन दोनों की शिष्यपरम्परा से कालान्तर में मत की वृद्धि हो गई। ऐसें दिगम्बर-मत उत्पन्न हुआ।'' (पृष्ठ ५४४)।

२. माननीय पं० बेचरदास जी जैन लिखते हैं—''मेरी यह प्रामाणिक कल्पना है कि माथुरी वाचना के समय ही मुनियों में स्पष्टरूप से दो दल हो गये थे। श्वेताम्बरों में जो दिगम्बरों के विषय में यह दन्तकथा है कि वीरात् ६०९ में दिगम्बरों की उत्पत्ति हुई है, इस दन्तकथा में बतलाया हुआ समय और माथुरी वाचना का समय लगभग समीप का होने के कारण पूर्वोक्त मेरी मान्यता को पुष्टि मिलती है। --- एक ने दूसरे को बोटिक और निह्नव कहना प्रारंभ किया, तब दूसरे ने उसका जबाब भ्रष्ट और शिथिल शब्दों में दिया।'' (जैन साहित्य में विकार / पृ.४५)।

३. प्रसिद्ध इतिहासकार श्री चिमनलाल जैचन्दशाह ने लिखा है—''श्वेताम्बर मान्यतानुसार इस पन्थभेद का मूल नीचे लिखी बातों में दीखता है। रहवीर गाँव में शिवभूति अथवा सहस्रमल्ल नाम का एक व्यक्ति रहता था। एक समय उसकी माता उससे अप्रसन्न हो गई, इससे वह घर छोड़कर चला गया और जैन साधु बन गया। साधु की दीक्षा लेने के बाद राजा ने उसे एक मूल्यवान् कम्बल भेंट किया और वह उससे अभिमानी हो गया। उसके गुरु ने इसकी ओर उसका ध्यान दिलाया, तो वह तब से ही नग्न रहने लगा और उसने फिर दिगम्बरसम्प्रदाय चला दिया। उसकी बहिन उत्तरा ने भी अपने भाई का अनुकरण करने का प्रयत्न किया। परन्तु स्त्रियाँ नग्न रहें, यह उचित नहीं लगने से शिवभूति ने उससे कह दिया कि स्त्री मुक्ति की अधिकारिणी नहीं होती।'' (उत्तरभारत में जैनधर्म / पृ.६४)।

४. आचार्य श्री हस्तीमल जी लिखते हैं—''श्वेताम्बरपरम्परा में बोटिकमत (दिगम्बरमत) की उत्पत्ति के वर्णन में विशेषावश्यकभाष्य, आवश्यकचूर्णि और स्थानांग आदि में मूल-घटना की पूर्णरूपेण समानता और वैषम्यरहित मनःस्थिति का परिचय मिलता है, जब कि दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थों में विविधरूपता व विषम मनःस्थिति की प्रतिध्वनि प्रकट होती है। दोनों परम्पराओं के ग्रन्थों के एतद्विषयक उल्लेखों से इतना तो स्पष्ट है कि वीर नि० सं० ६०६ अथवा ६०९ के लगभग श्वेताम्बर-दिगम्बर का सम्प्रदायभेद प्रकट हुआ।'' (जै.ध.मौ.इ./भा.२/पृ. ६१३)।

५. श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री बतलाते हैं कि ''आवश्यकभाष्य, आवश्यकचूर्णि प्रभृति श्वेताम्बरग्रन्थों में उल्लेख है कि महावीर निर्वाण के ६०९ वर्ष के पश्चात् शिवभूति ने रथवीरपुर नगर में बोटिक-दिगम्बरमत की स्थापना की।'' (जै.आ.सा.म.मी./ पृ.५६३)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

६.५. श्वेताम्बरसाहित्य में बोटिकों की 'यापनीय' संज्ञा नहीं

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि बोटिकों को दिगम्बर तो सभी श्वेताम्बराचार्यों ने कहा है, किन्तु यापनीय किसी ने भी नहीं कहा। यहाँ तक कि 'षड्दर्शनसमुच्चय' के टीकाकार ने यापनीयों का एक अन्य नाम 'गोप्य' तो बतलाया है—"**गोप्या यापनीया इत्यप्युच्यन्ते**" (पृ.१६१), किन्तु 'बोटिक' नाम नहीं बतलाया। इससे भी बोटिकों की यापनीयों से भिन्नता और दिगम्बरों से अभिन्नता सिद्ध होती है।

माननीय डॉ० सागरमल जी स्वयं अपने वचनान्तर से यह सिद्ध करते हैं कि बोटिक और यापनीय एक नहीं थे। उन्होंने बोटिकों की उत्पत्ति बोटिककथा के अनुसार वीरनिर्वाण के ६०९ वर्ष बाद अर्थात् ईसा की द्वितीय शताब्दी में मानी है, जैसा कि उन्होंने निम्नलिखित वाक्यों में लिखा है—"आवश्यकमूलभाष्य में जो वीरनिर्वाण के ६०९ वर्ष बाद अर्थात् ईसा की द्वितीय शती में इस (बोटिक) सम्प्रदाय की उत्पत्ति का उल्लेख है, वह किसी सीमा तक सत्य प्रतीत होता है।" (जै.ध.या.स./पृ.१७)। किन्तु उन्होंने यापनीयसम्प्रदाय का उद्भव पाँचवी शताब्दी ई० में बतलाया है। पं० नाथूराम जी प्रेमी ने तत्त्वार्थ-भाष्य को यापनीयकृति माना है। इसका खण्डन करते हुए डॉक्टर सा० लिखते हैं—

"भाष्य तो यापनीयपरम्परा के पूर्व का है। भाष्य तीसरी-चौथी शती का है और यापनीयसम्प्रदाय चौथी-पाँचवी शती के पश्चात् ही कभी अस्तित्व में आया है।" (जै.ध.या.स./पृ.३५७)।

उमास्वाति के सम्प्रदायभेद का निर्धारण करते समय भी डाक्टर सा० लिखते हैं-"वे यापनीय भी नहीं हैं, क्योंकि यापनीयसम्प्रदाय का सर्वप्रथम अभिलेखीय प्रमाण भी विक्रम की छठी शताब्दी के पूर्वार्ध और ईसा की पाँचवीं शती के उत्तरार्ध (ई० सन् ४७५) का मिलता है।" (जै.ध.या.स./पृ.३७३)।

अन्यत्र भी उन्होंने कहा है—"तत्त्वार्थसूत्र के रचनाकाल तक यापनीय उत्पन्न ही नहीं हुए थे, अतः उसे (तत्त्वार्थसूत्र को) यापनीय (ग्रन्थ) भी नहीं कहा जा सकता।" (जै.ध.या.स./पृ.३५०)।

इस प्रकार डॉ० सा० के वचनों के अनुसार जब बोटिकसम्प्रदाय का उत्पत्तिकाल ईसवी द्वितीय शताब्दी है और यापनीयसम्प्रदाय का उदयकाल पाँचवी शती ईसवी है, तब स्पष्ट है कि डॉक्टर सा० भी दोनों सम्प्रदायों को एक नहीं मानते। निष्कर्ष यह कि किसी भी श्वेताम्बर आचार्य या विद्वान् ने बोटिकों को यापनीय नहीं कहा, जब कि उन्हें, 'दिगम्बर' अनेक श्वेताम्बराचार्यों ने कहा है। अतः श्वेताम्बरग्रन्थों में 'बोटिक' शब्द स्त्रीमुक्ति का निषेध करनेवाले दिगम्बरों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

७

कुन्दकुन्द के प्रथमतः यापनीयमतावलम्बी होने का मत असत्य

उपर्युक्त प्रमाणों से यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि बोटिक शिवभूति यापनीयमत का प्रवर्तक नहीं था, इसलिए मुनि कल्याणविजय जी की यह कथा स्वतः असत्य सिद्ध हो जाती है कि कुन्दकुन्द प्रारम्भ में बोटिक शिवभूति द्वारा प्रवर्तित यापनीयसम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे और कुछ समय पश्चात् उससे अलग होकर उन्होंने दिगम्बरमत की स्थापना की थी। (श्र.भ.म./पृ.३२७-३२८। देखिए, इसी प्रकरण का शीर्षक ३)।

मुनि जी ने कुन्दकुन्द को यापनीयमत में दीक्षित सिद्ध करने के लिए आवश्यकमूल-भाष्य की पूर्वोद्धृत १४८ वीं गाथा में आये 'कोडिन्नकोट्टवीरा' पद को तोड़ने-मरोड़ने की कोशिश की है, और आवश्यकमूलभाष्यकार के भाषाज्ञान में सन्देह व्यक्त किया है। वे लिखते हैं—

"भाष्य का पाठ 'कोडिन्नकोट्टवीरा' है, जिसका चूर्णिकार ने 'कोडिन्न' और 'कोट्टवीर' इस प्रकार पदच्छेद किया है और इन्हें शिवभूति का शिष्य लिखा है, परन्तु हमारे विचार में 'कोडिन्नकोट्ट' यह 'कोण्डकोण्ड' का अपभ्रंश है और 'वीर' यह वीरनन्दी, वीरसेन या इससे मिलते-जुलते नामवाले आचार्य का नाम है। भाष्य में इन्हें शिवभूति का शिष्य नहीं लिखा है, किन्तु 'परम्परास्पर्शक' (भाष्य के शब्द–**परंपरा-फासमुप्पण्णा**) लिखा है। इससे स्पष्ट है कि ये शिवभूति के दीक्षाशिष्य नहीं, परम्पराशिष्य थे। अधिक प्रसिद्ध होने के कारण या दिगम्बरशाखा में महत्त्वपूर्ण कार्यकर होने के कारण भाष्यकार ने शिवभूति के अनन्तर इनका नामोल्लेख किया है।" (श्र.भ.म./पा.टि./पृ.२९४-२९५)।

किन्तु जैसा पदच्छेद चूर्णिकार ने किया है, वैसा ही हरिभद्रसूरि तथा हेमचन्द्रसूरि ने भी किया है। देखिए—

१. "**बोटिकशिवभूतेः सकाशात् बोटिकलिङ्गस्य भवत्युत्पत्तिः। --- ततः कौडिन्यः कुट्टवीरश्च, 'सर्वो द्वन्द्वो विभाषया एकवद्भवती' ति कौण्डिन्यकोट्टवीरं तस्मात् परम्परास्पर्शमाचार्यशिष्यसम्बन्धलक्षणमधिकृत्योत्पन्ना सञ्जाता, बोटिकदृष्टिरध्याहरणीयेति गाथार्थः।**" (हारि.वृत्ति/आव.निर्यु./मूलभाष्य गा.१४८)।

२. "**ततः शिवभूतिना कौण्डिन्य-कोट्टवीरनामानौ द्वौ शिष्यौ दीक्षितौ। ---- तस्मात् कौण्डिन्य-कोट्टवीरात् परम्परास्पर्शमाचार्य-शिष्यसम्बन्ध-लक्षणमधिकृत्योत्पन्ना सञ्जाता 'बोटिकदृष्टिः' इत्यध्याहारः।**" (हेम.वृत्ति/विशे.भा./गा.२५५०-५१)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

मुनि कल्याणविजय जी ने इन चारों सूरियों के भाषाज्ञान और व्याकरणज्ञान पर प्रश्नचिन्ह लगाकर अपने ही ज्ञान को सही ठहराया है। यहाँ निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं—

१. इसका क्या प्रमाण है कि 'कोडिन्न और कोट्टवीर' यह पदच्छेद सही नहीं है, अपितु 'कोडिन्नकोट्ट और वीर' यह सही है?

२. इसका भी क्या प्रमाण है कि 'कोडिन्नकोट्ट' 'कोण्डकोण्ड' का अपभ्रंश (बिगड़ा हुआ रूप) है?

३. आवश्यकमूलभाष्यकार ने प्राकृत और संस्कृत के ज्ञाता होते हुए भी उक्त बिगड़े हुए रूप का प्रयोग क्यों किया?

इन प्रश्नों का समाधान करनेवाले प्रमाण प्रस्तुत किये बिना ही मुनि जी ने यह घोषित कर दिया कि उक्त पदच्छेद सही नहीं है और 'कोडिन्नकोट' 'कोण्डकोण्ड' का बिगड़ा हुआ रूप है।

किन्तु, मुनि जी से उक्त प्रमाणों की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए, क्योंकि उन्होंने यह दावा नहीं किया है कि उनकी घोषणा प्रमाणसिद्ध तथ्य है। उन्होंने तो यह कहा है कि 'हमारे विचार में यह ऐसा है।' और सर्वज्ञ के अतिरिक्त किसी भी छद्मस्थ का विचार प्रमाणसिद्ध हुए बिना सत्य नहीं हो सकता, अतः मुनि जी की घोषणा सत्य नहीं है। यतः यह सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि चूर्णिकार आदि द्वारा किया गया पदच्छेद दोषपूर्ण है और 'कोडिन्नकोट्ट' 'कोण्डकोण्ड' का अपभ्रंश है, अतः सिद्ध है कि न तो उक्त पदच्छेद दोषपूर्ण है, न ही उक्त शब्द अपभ्रंश है।

इस छलवाद के द्वारा मुनिजी ने यह साबित करने की कोशिश की है कि **कोण्डकोण्ड** (**कुन्दकुन्द**) शिवभूति के शिष्य थे, अर्थात् आरम्भ में यापनीयपरम्परा में दीक्षित हुए थे। इसी प्रकार **परम्परास्पर्शम्** (**परंपराफासं**) पद **उत्पन्ना** (**उप्पण्णा**) क्रिया का विशेषण है, जिसका अर्थ है शिवभूति के शिष्य 'कोडिन्न' और 'कोट्टवीर' से जो गुरुशिष्य-परम्परा चली, उससे बोटिकमत विकसित हुआ। किन्तु मुनि जी ने उसकी जगह **परम्परास्पर्शकम्** शब्द का प्रयोग कर उसे 'कोडिन्नकोट्ट' और 'वीर' अर्थात् **कोण्डकोण्ड** (**कुन्दकुन्द**) और **वीर** का विशेषण बना दिया है, जिससे यह अभिप्राय द्योतित होता है कि कुन्दकुन्द शिवभूति के साक्षात् शिष्य नहीं थे, अपितु परम्परा का स्पर्श करते हुए शिष्य बने थे अर्थात् परम्पराशिष्य थे। इस छलवाद का प्रयोग कर मुनि श्री कल्याणविजय जी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि

कुन्दकुन्द शिवभूति के समकालीन (ईसवी प्रथम शती के) नहीं थे, बल्कि विक्रम की छठी शताब्दी में हुए थे।

किन्तु पदच्छेद कैसा भी कर लिया जाय, जब शिवभूति यापनीयमत का प्रवर्तक था ही नहीं, तब लाख कोशिश करने पर भी यह सिद्ध नहीं हो सकता कि कुन्दकुन्द कभी यापनीय-परम्परा में दीक्षित हुए थे।

८

कुन्दकुन्द बोटिक शिवभूति से पूर्ववर्ती

बोटिक शिवभूति के दिगम्बरमत स्वीकार कर लेने पर भी कुन्दकुन्द का उसकी परम्परा में दीक्षित होना संभव नहीं है, क्योंकि वे उससे पूर्ववर्ती थे। कुन्दकुन्द ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के उत्तरार्ध और ईसोत्तर प्रथम शती के पूर्वार्ध में हुए थे, जब कि युवा बोटिक शिवभूति ने ईसोत्तर प्रथम शताब्दी के अन्तिम चरण (ई० सन् ८२, वीर० नि० सं० ६०९) में दिगम्बरमत स्वीकार किया था। कुन्दकुन्द के ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में होने का सप्रमाण प्रतिपादन 'आचार्य कुन्दकुन्द का समय' नामक दशम अध्याय में द्रष्टव्य है।

९

कुन्दकुन्द श्रुतकेवली भद्रबाहु के परम्परा-शिष्य

दिगम्बरसाहित्य में जो प्रमाण मिलते हैं, वे मुनि जी की इस मान्यता को सर्वथा झुठलाते हैं कि कुन्दकुन्द यापनीयगुरु के शिष्य थे। आचार्य कुन्दकुन्द ने स्वयं अपने को श्रुतकेवली भद्रबाहु का परम्पराशिष्य बतलाया है।[४२] वे बोधपाहुड में कहते हैं—

सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥ ६१॥

बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणिभद्दबाहू गमयगुरूभयवओ जयऊ॥ ६२॥

अनुवाद—"जिनेन्द्र भगवान् ने अर्थरूप से जो कथन किया है, वह भाषासूत्रों में शब्दविकार को प्राप्त हुआ है (अनेक प्रकार के शब्दों में गूँथा गया है)। भद्रबाहु

४२. "I am tempted to take the word śiṣya as, a Paramparā-siṣya and this is not without a parallel else where. With Jaina authors guru and śiṣya do not necessarily mean direct, and contemporary teachers and pupils, but might even mean paramparā guru and śiṣya, sometimes the influence of some previous teacher is so overwhelming that later pupils like to mention him as their guru." Prof. A.N. Upadhye : Pravacanasāra–Introduction, p.16.

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के शिष्य ने (मैंने) उन भाषासूत्रों पर से उसको उसी रूप में जाना है और (जानकर इस ग्रन्थ में) कथन किया है। जो द्वादशांग के ज्ञाता थे, जिन्होंने चौदहपूर्वों का अत्यन्त विस्तार किया था तथा जो गमकों (व्याख्याकारों) के गुरु थे, उन श्रुतज्ञानी (श्रुतकेवली) भद्रबाहु की जय हो।''

कुन्दकुन्द ने समयसार में भी कहा है कि मैं श्रुतकेवली द्वारा उपदिष्ट समयप्राभृत का कथन करूँगा-''**वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवलीभणियं।**'' (गा.१)।

श्रवणबेलगोल के शक सं० १०८५ (ई० सन् ११६३) के शिलालेख में भी कुन्दकुन्द को श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्य चन्द्रगुप्त के अन्वय में उत्पन्न बतलाया गया है। यथा—

श्रीभद्रस्सर्वतो यो हि भद्रबाहुरितिश्रुतः।
श्रुतकेवलिनाथेषु चरमः परमो मुनिः॥ ४॥

श्रीचन्द्रप्रकाशोज्ज्वलचन्द्रकीर्तिः श्रीचन्द्रगुप्तोऽजनि तस्य शिष्यः।
यस्य प्रभावाद्वनदेवताभिराराधितः स्वस्य गणो मुनीनाम्॥ ५॥

तस्यान्वये भूविदिते बभूव यः पद्मनन्दिप्रथमाभिधानः।
श्रीकोण्डकुन्दादिमुनीश्वराख्यस्सत्संयमादुद्गतचारणर्द्धिः॥ ६॥

अभूदुमास्वाति मुनीश्वरोऽसावाचार्य्यशब्दोत्तरगृद्धपिच्छः।
तदन्वये तत्सदृशोऽस्ति नान्यस्तात्कालिकाशेषपदार्थवेदी॥ ७॥[४३]

अन्वय का अर्थ है गुरु-शिष्य-क्रम। कुन्दकुन्द श्रुतकेवली भद्रबाहु के शिष्य चन्द्रगुप्त के अन्वय में हुए थे, इससे स्पष्ट है कि उन्हीं (भद्रबाहु) की शिष्यपरम्परा के कोई आचार्य कुन्दकुन्द के गुरु थे।

आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में निरपवाद अचेलमार्ग का ही निरूपण किया है, जिससे प्रमाणित होता है कि उनके परम्परागुरु भद्रबाहु निरपवाद-अचेलमार्गी थे। इसलिए उनकी शिष्यपरम्परा का भी निरपवाद-अचेलमार्गी होना अनिवार्य है। अतः भद्रबाहु के अन्वय में हुए कुन्दकुन्द के साक्षात् गुरु भी निरपवाद अचेलमार्गी थे, यह निर्विवाद है।

यदि कुन्दकुन्द यापनीयसम्प्रदाय के प्रवर्तक शिवभूति के साक्षात् या परम्पराशिष्य होते, तो वे उन्हें ही अपना गुरु बतलाते। किन्तु उन्होंने श्रुतकेवली भद्रबाहु को गुरु बतलाया है। अपनी गुरुपरम्परा के विषय में शिष्य के वचनों से अधिक प्रामाणिक

---

४३. जैनशिलालेखसंग्रह / माणिकचन्द्र / भाग १ / लेख क्रमांक ४०।

और किस के वचन हो सकते हैं? किन्तु मुनि कल्याणविजय जी ने स्वयं कुन्दकुन्द के वचनों को अमान्य कर शिवभूति को उनका परम्परया गुरु बतलाया है, जिसे सत्य सिद्ध करनेवाला कोई भी साहित्यिक या शिलालेखीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इससे सिद्ध है कि मुनि जी द्वारा शिवभूति को यापनीय-सम्प्रदाय का संस्थापक बतलाया जाना और फिर कुन्दकुन्द को उसकी परम्परा का शिष्य कहा जाना, उनके द्वारा सोच-समझकर गढ़ी गयी कहानी है।

१०

कुन्दकुन्द के दिगम्बरमत-प्रवर्तक होने का मत कपोलकल्पित

दिगम्बरमत कुन्दकुन्द से पूर्ववर्ती

यतः कुन्दकुन्द के यापनीयसंघ में दीक्षित होने की उद्भावना असत्य सिद्ध हो जाती है, अतः मुनि कल्याणविजय जी का यह निष्कर्ष भी मनगढ़न्त सिद्ध हो जाता है कि 'यापनीय कुन्दकुन्द ने यापनीयसंघ की मान्यताओं से असन्तुष्ट होकर विक्रम की छठी शती में दिगम्बर जैनमत का प्रवर्तन किया था।' (श्र.भ.म. / पृ. ३२७-३२८/ देखिए, इसी प्रकरण का शीर्षक ३) ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि दिगम्बरजैनमत कुन्दकुन्द से पूर्ववर्ती है। वे इस प्रकार हैं—

१०.१. पाँचवीं शती ई० के पूर्व निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ का अस्तित्व

मुनि जी ने डॉक्टर के० बी० पाठक के अनुसार कुन्दकुन्द को कदम्बवंशी राजा श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा का समकालीन (४७०-४९० ई०) माना है तथा उन्हें दिगम्बर-मत का प्रवर्तक भी बतलाया है। किन्तु इन्हीं श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के देवगिरि-ताम्र-पत्रलेख में **श्वेतपटमहाश्रमणसंघ** और **निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ** को तथा पाँचवीं शती ई० के ही मृगेशवर्मा के हल्सी-अभिलेख में **यापनीयों, निर्ग्रन्थों** और **कूर्चकों** को दान दिये जाने का उल्लेख है,[४४] जिससे स्पष्ट होता है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द श्वेताम्बरों और यापनीयों से भिन्न दिगम्बरों का वाचक है, अतः **दिगम्बरसम्प्रदाय** (निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ) श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के बहुत पहले से विद्यमान था। इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि यदि हम दिगम्बरपरम्परा को बहुत ही अर्वाचीन मानें, तो श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के समय तक निर्ग्रन्थसंघ को महाश्रमणसंघ का रूप धारण करने तथा लोकप्रसिद्ध एवं राजमान्य होने के लिए कम से कम पचास वर्ष का समय तो आवश्यक मानना ही होगा। किन्तु निर्ग्रन्थसंघ का उल्लेख तो २४२ ई० पू० के सम्राट्

४४. देखिए, अभिलेखों का मूलपाठ इसी अध्याय के षष्ठ प्रकरण में।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अशोक के स्तम्भलेख में भी मिलता है।[४५] यह ऐतिहासिक प्रमाण मुनि जी के इस कथन को असंगत बना देता है कि दिगम्बरमत का प्रवर्तन कुन्दकुन्द ने किया था। और इस असंगति से वह सारी कथा कपोलकल्पित सिद्ध हो जाती है, जो उन्होंने कुन्दकुन्द के द्वारा दिगम्बरमत के प्रवर्तन को युक्तिसंगत बनाने के लिए गढ़ी है।

उक्त असंगति का समर्थन अन्य प्रमाणों से भी होता है। ४७९ ई० के पहाड़पुर ताम्रपत्र में लिखा है कि वटगोहाली के विहार (मठ) में काशीदेशीय पञ्चस्तूपनिकाय के निर्ग्रन्थश्रमणों के आचार्य गुहनन्दी के शिष्य-प्रशिष्य वास करते थे।[४६] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जब ई० सन् ४७९ में निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य गुहनन्दी के शिष्य-प्रशिष्य विद्यमान थे, तब स्वयं गुहनन्दी और उनके गुरु-प्रगुरु उसके कितने वर्ष पूर्व विद्यमान रहे होंगे। कम से कम ७०-८० वर्ष पूर्व तो मानना ही होगा। इससे भी सिद्ध होता है कि दिगम्बरपरम्परा श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के बहुत पहले से चली आ रही थी। अतः इस प्रमाण से भी मुनि कल्याणविजय जी का यह कथन असंगत सिद्ध होता है कि दिगम्बरमत की स्थापना कुन्दकुन्द ने की थी।

एक प्रमाण यह भी है कि दिगम्बराचार्य पूज्यपाद स्वामी ने ४५० ई० में तत्त्वार्थसूत्र पर 'सर्वार्थसिद्धि' नामक टीका लिखी थी, जिसमें उन्होंने सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति तथा केवलि-कवलाहार आदि श्वेताम्बरीय एवं यापनीय-मान्यताओं को विपरीत मिथ्यादर्शन का उदाहरण बतलाया है। यथा—

"**अथवा पञ्चविधं मिथ्यादर्शनम्–एकान्तमिथ्यादर्शनं विपरीतमिथ्यादर्शनं संशयमिथ्यादर्शनं वैनयिकमिथ्यादर्शनम्, अज्ञानिकमिथ्यादर्शनं चेति। --- सग्रन्थो निर्ग्रन्थः, केवली कवलाहारी, स्त्री सिध्यतीत्येवमादिः विपर्ययः।**" (स.सि./८/१)।

पूज्यपाद ने लिङ्गसिद्ध जीवों की व्याख्या करते हुए भी लिखा है कि अवेद अथवा तीनों भाववेदों से सिद्धि होती है, किन्तु द्रव्यवेद से नहीं होती । द्रव्य की अपेक्षा जीव पुंल्लिङ्ग से ही सिद्ध होता है—"**लिङ्गेन केन सिद्धिः? अवेदत्वेन त्रिभ्यो वा वेदेभ्यः सिद्धिर्भावतो न द्रव्यतः। द्रव्यतः पुंल्लिङ्गेनैव।**" (स.सि./१०/९)।

तथा पूज्यपाद स्वामी ने जैनेन्द्रव्याकरण के सूत्रों में भूतबलि, समन्तभद्र, श्रीदत्त, यशोभद्र और प्रभाचन्द्र नामक पूर्वाचार्यों का निर्देश किया है। (ती.म.आ.प./खं.२/

---

४५. "---सव पासंडेसु --- बाभनेसु आजीविकेसु --- निगंठेसु पि मे कटे इमे वियापटा होहंति।" देहली-टोपरा-स्तम्भ-लेख/जैनशिलालेखसंग्रह/माणिकचन्द्र/भा.२/लेख क्र.१।

४६. "वटगोहाल्यामवास्यान् काशिक-पञ्चस्तूपनिकायिक-निर्ग्रन्थश्रमणाचार्य-गुहनन्दि-शिष्यप्रशिष्याधिष्ठितविहारे ---।" पहाड़पुर-ताम्रपत्र/जिला-राजशाही, बंगाल/लेख क्र.१९ जैनशिलालेखसंग्रह/भारतीय ज्ञानपीठ/भाग ४।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पृ.२२३)। तथा नन्दिसंघ की पट्टावलियों में पूज्यपाद की गुरुपरम्परा का भी उल्लेख है।

इन तथ्यों से भी स्पष्ट है कि दिगम्बरपरम्परा कदम्बवंशी राजा श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा (४७० ई०) के बहुत पहले से अस्तित्व में थी। अतः मुनि कल्याणविजय जी का कुन्दकुन्द को श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा का समकालीन मानना और दिगम्बरमत का प्रवर्तक भी कहना, इन दोनों बातों में घोर असंगति है। इससे सिद्ध है कि मुनि जी की कुन्दकुन्द के दिगम्बरमत-प्रवर्तक होने की मान्यता कपोलकल्पित है।

१०.२. कुन्दकुन्द-प्ररूपित मार्ग जिनप्रणीत : आचार्य हस्तीमल जी

आचार्य हस्तीमल जी ने अपने 'जैनधर्म का मौलिक इतिहास' नामक ग्रन्थ में लिखा है—"आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने दादागुरु द्वारा संस्थापित भट्टारकपरम्परा की नव्य-नूतन मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह किया। वे माघनन्दी के शिष्य जिनचन्द्र के पास भट्टारकपरम्परा में ही दीक्षित हुए थे। मेधावी मुनि कुन्दकुन्द ने अध्ययन पूर्ण करने के पश्चात् दिगम्बर-परम्परा द्वारा सम्मत आगमों के निदिध्यासन-चिन्तन मनन से जब जिनेन्द्रप्रभु द्वारा प्ररूपित जैनधर्म के वास्तविक स्वरूप और तीर्थंकरों द्वारा आचरित श्रमणधर्म को पहिचाना, तो उन्हें अपने प्रगुरु माघनन्दी द्वारा संस्थापित धर्म और श्रमणाचार-विषयक मान्यताएँ, धर्म और श्रमणाचार के मूलस्वरूप के अनुरूप प्रतीत नहीं हुई। उन्होंने सम्भवतः अपने प्रगुरु, गुरु और भट्टारकसंघ द्वारा सम्मत उन कतिपय अभिनव मान्यताओं के समूलोन्मूलन और पुरातन मान्यताओं की पुनः संस्थापना का संकल्प किया।" (जै.ध.मौ.इ./भा.३/पृ.१४०)।

इन वचनों से श्वेताम्बराचार्य हस्तीमल जी ने स्वीकार किया है कि दिगम्बरपरम्परा के आगमों में जिनेन्द्र प्रभु द्वारा प्ररूपित धर्म के वास्तविक स्वरूप एवं तीर्थंकरों द्वारा आचरित श्रमणधर्म का प्ररूपण है और कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में इसी का निरूपण किया है। इसका अभिप्राय यह है कि आचार्य हस्तीमल जी यह मानते हैं कि सवस्त्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति का निषेध जिनेन्द्र प्रभु द्वारा उपदिष्ट है, क्योंकि कुन्दकुन्द ने अपने ग्रन्थों में इनका निषेध किया है।

आचार्य हस्तीमल जी ने उपर्युक्त वचनों से मुनि कल्याणविजय जी तथा उनके अनुगामियों की इस मान्यता को अमान्य कर दिया है कि दिगम्बरपरम्परा का प्रवर्तन आचार्य कुन्दकुन्द ने विक्रम की छठी शताब्दी में किया था। उसे उन्होंने तीर्थंकरों द्वारा ही प्रवर्तित माना है।

किन्तु आचार्य जी ने कुन्दकुन्द को आरंभ में जो भट्टारकपरम्परा में दीक्षित माना है, वह अप्रामाणिक है। उसकी अप्रामाणिकता का प्रकाशन 'कुन्दकुन्द के प्रथमतः भट्टारक होने की कथा मनगढ़ंत' नामक अष्टम अध्याय में किया जायेगा।

ऐतिहासिक दृष्टि से दिगम्बरजैन-परम्परा सिन्धुसभ्यता, ऋग्वेद के रचना काल तथा बौद्धमत से भी प्राचीन है। इसके प्रमाण उत्तर अध्यायों में प्रस्तुत किये जायेंगे।

१०.३. आगमोक्त सरलमार्ग का निषेध अमनोवैज्ञानिक

मुनि कल्याणविजय जी ने अपने पूर्वोद्धृत वक्तव्य में कहा है कि "छठी सदी के विद्वान् आचार्य कुन्दकुन्द, देवनन्दी वगैरह ने प्राचीन परम्परा से मजबूत मोरचा लिया। पहले जो सूत्र, निर्युक्ति आदि प्राचीन आगमों को इनके पूर्वाचार्य मानते आये थे, इन्होंने उनका मानना भी अस्वीकार कर दिया और अपने लिए आचार, विचार और दर्शनविषयक स्वतंत्र साहित्य की रचना की, जिसमें वस्त्र-पात्र रखने का एकान्तरूप से निषेध किया। यद्यपि इस ऐकान्तिक निषेध के कारण उन्हें स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का भी निषेध करना पड़ा, क्योंकि स्त्रियों को सर्वथा अचेलक मानना अनुचित था और वस्त्रसहित रहते हुए उनकी मुक्ति मान लेने पर अपने वस्त्रधारी प्रतिस्पर्द्धियों की मुक्ति का निषेध करना असम्भव था। इसी तरह केवली का कवलाहार मानने पर उसके लाने के लिए पात्र भी मानना पड़ता और इस दशा में पात्रधारी स्थविरों का खण्डन नहीं करने पाते।" (श्र.भ.म./पृ.३०२-३०५)।

मुनि जी का यह कथन मनोवैज्ञानिक और तर्कसंगत नहीं है। एक सीधा-सरल प्रश्न उठता है कि जब यापनीयसम्प्रदाय में सवस्त्रपात्रलिंग से भी मुक्ति मानी गयी थी और वह मुक्ति का सरल मार्ग था, तब मुनि जी के अनुसार कुन्दकुन्द ने उसका निषेध क्यों किया, जिसका निषेध करने से स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति का भी निषेध आवश्यक हो गया, जब कि उक्त सिद्धान्त यापनीयमत के अनुसार आगमसम्मत थे? क्या कुन्दकुन्द को (जो मुनिजी के अनुसार उस समय स्वयं यापनीय थे) उनके आगमसम्मत होने पर विश्वास नहीं था? या वे हीनशक्ति पुरुषों और स्त्रियों को मुक्त नहीं होने देना चाहते थे? अथवा वे कोई उन्मत्त पुरुष थे, जो अकारण आगमसम्मत सिद्धान्तों के विरोध में खड़े हो गये थे? समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय जैसे अद्वितीय ग्रन्थों के कर्त्ता के विषय में तो कोई यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि वे उन्मत्त थे अथवा हीनशक्ति पुरुषों और स्त्रियों को मुक्त नहीं होने देना चाहते थे। तब एक ही कारण शेष रहता है कि उन्हें उक्त सिद्धान्तों के आगमसम्मत होने में विश्वास नहीं था। इसीलिए उन्होंने उनके विरोध में आवाज उठाई थी। और इससे फलित होता है कि कुन्दकुन्द के सामने ऐसे आगम थे, जिनमें सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि मान्यताओं का निषेध किया गया था और वे उन्हीं में विश्वास करते थे। किन्तु जैसा कि पूर्व में सिद्ध हो चुका है, कुन्दकुन्द ने कभी भी यापनीयसम्प्रदाय में प्रवेश नहीं किया था और उनके समय में यापनीयमत की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी, इसलिए

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उन्होंने यापनीय मान्यताओं के नहीं, अपितु श्वेताम्बरीय मान्यताओं के आगमसम्मत होने का निषेध किया था। इस तरह यह सिद्ध होता है कि सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति आदि को अमान्य करनेवाली दिगम्बरपरम्परा कुन्दकुन्द के पहले से चली आ रही थी।

इसके अतिरिक्त मानव-मनोविज्ञान यह है कि जब सरल और कठिन, दोनों मार्गों से इष्टफल की प्राप्ति हो सकती हो, तब मनुष्य सरल मार्ग ही अपनाता है और लोक भी सरलमार्ग का उपदेश देनेवाले की ओर ही आकृष्ट होता है। कहा भी गया है—

अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्।
इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत्॥[४७]

अनुवाद—"यदि मार्गस्थ आक के पेड़ में ही मधु मिल जाय, तो कोई पर्वत पर क्यों जायेगा? जब इष्ट वस्तु की प्राप्ति बिना प्रयत्न के संभव हो, तब ऐसा कौन समझदार आदमी होगा, जो उसे पाने के लिए व्यर्थ में कष्ट उठाना चाहेगा?"

कुन्दकुन्द ने परीषह-पीड़ा से बचानेवाले सवस्त्रलिंग और स्त्रीशरीर से मोक्ष की प्राप्ति असंभव बतलायी थी तथा शीतोष्णदंशमशकादि परीषहों का दुःख उत्पन्न करनेवाले एकमात्र अचेललिंग को ही मोक्ष का साधन प्ररूपित किया था। अतः उनके सिद्धान्त कठिन थे। यदि वे नये होते अर्थात् जिनेन्द्रदेव द्वारा उपदिष्ट न होते, तो कोई भी उन्हें स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं होता। क्योंकि जब जिनेन्द्रदेव ने मोक्ष का सरलमार्ग बतलाया हो, तब एक सामान्य पुरुष के द्वारा बतलाये गये कठिन मार्ग को अपनाने के लिए कौन तैयार होगा? **धर्म के क्षेत्र में तो प्रायः यह होता आया है कि सुखशील प्रवृत्ति के लोगों ने आगमोक्त कठिन चर्या की उपेक्षा कर आगम-विरुद्ध शिथिलाचार अपना लिया और नवीन शास्त्र लिखकर शिथिलाचार को जिनाज्ञा के नाम से प्रचारित कर दिया।** भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट ऐकान्तिक अचेलमार्ग का परित्याग कर सर्वथा सचेलमार्ग या सचेलाचेल मार्ग का प्रवर्तन इसी प्रवृत्ति के कारण हुआ था। तब कुन्दकुन्द द्वारा प्ररूपित कठिन मार्ग यदि नवीन होता, जिनेन्द्रप्रणीत अर्थात् आगमोक्त न होता, तो उसे उन्मत्तप्रलाप कहकर लोग दूर से ही नमस्कार कर लेते। इसी प्रकार स्त्रीमुक्ति का निषेध यदि स्वयं कुन्दकुन्द ने किया होता, जिनेन्द्रदेव के द्वारा न किया गया होता, तो क्या कोई स्त्री कुन्दकुन्द के सिद्धान्तों में विश्वास कर अपने को मुक्ति से वंचित करने के लिए तैयार होती? कदापि नहीं। किन्तु दो हजार से भी अधिक वर्षों से सम्पूर्ण दिगम्बरपरम्परा आचार्य कुन्दकुन्द के

४७. सांख्यकारिकागत कारिका १ की सांख्यतत्त्वकोमुदीटीका में उद्धृत।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों को गले का हार बनाये हुए है और उन्हें भगवान् महावीर और गौतम गणधर के बाद मंगल के रूप में स्मरण करती है। इससे सिद्ध है कि कुन्दकुन्द के द्वारा प्ररूपित मोक्षमार्ग भगवान् महावीर के उपदेश पर आश्रित था और दिगम्बरमतानुयायी इससे सुपरिचित थे। इसीलिए उन्होंने कुन्दकुन्द द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों को श्रद्धापूर्वक स्वीकार किया। कुन्दकुन्द ने कहा भी है कि "मैं अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु का परम्पराशिष्य हूँ[४८] और उनके उपदेश के आधार पर मैं समयसार की रचना कर रहा हूँ।"[४९] उनके ये शब्द इस बात को प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं कि दिगम्बरमत कुन्दकुन्द के पूर्व से चला आ रहा था। इसलिए मुनि कल्याणविजय जी ने जो उसे आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रवर्तित बतलाया है, वह सर्वथा असत्य है। अपने विषय में स्वयं आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा कहे गये इन वचनों को अमान्य करना मुनि कल्याणविजय जी और उनके अनुगामियों की अनधिकृत चेष्टा है।

१०.४. दक्षिण में दिगम्बरपरम्परा श्रुतकेवली भद्रबाहु से पूर्ववर्ती

मुनि कल्याणविजय जी ने कुन्दकुन्द के द्वारा सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति तथा केवलिभुक्ति न माननेवाले दिगम्बरमत की स्थापना किये जाने की कथा क्यों गढ़ी, यह विचारणीय है। बात यह है कि मुनि जी इस सत्य का अपलाप करना चाहते थे कि भारत में उपर्युक्त सिद्धान्तोंवाला दिगम्बरमत कुन्दकुन्द के पूर्व विद्यमान था। इसलिए उन्होंने यह कथा गढ़ी कि 'जब उत्तरभारत का सचेलाचेलमार्गी यापनीयसंघ दक्षिण में पहुँचा, तब कुन्दकुन्द उसमें दीक्षित हुए और उसी में रहकर उन्होंने भगवान् महावीरप्रणीत जैनसिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त किया। किन्तु आगे चलकर उन्होंने उन सिद्धान्तों में से आपवादिक सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति एवं केवलिभुक्ति को अमान्यकर उनका निषेध करनेवाले ग्रन्थों की रचना की तथा यापनीयमत को छोड़कर दिगम्बरमत की नींव डाली।' (यह कथा इसी प्रकरण के शीर्षक ३ में उद्धृत मुनि जी के उन वचनों से सूचित होती है, जो उन्होंने 'श्रमण भगवान् महावीर' के पृष्ठ ३२७-३२८ पर व्यक्त किये हैं)।

मुनि जी की यह कहानी साम्प्रदायिक पक्षपात से प्रेरित है। क्योंकि कुन्दकुन्द की अपने ग्रन्थों में की गयी ये घोषणाएँ कि "मैं अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु का परम्पराशिष्य हूँ और श्रुतकेवली के उपदेश के आधार पर ही अपने ग्रन्थों की रचना

---

४८. सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स॥ ६१॥
बारसअंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणिभद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयऊ॥ ६२॥ बोधपाहुड।

४९. वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुयकेवली भणियं॥ १॥ समयसार।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कर रहा हूँ,'' इस तथ्य का अकाट्य प्रमाण हैं कि सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति एवं केवलिभुक्ति को न माननेवाला दिगम्बरमत आचार्य कुन्दकुन्द के बहुत पहले से प्रचलित था।

जहाँ तक दक्षिणभारत का प्रश्न है, वहाँ उपर्युक्त दिगम्बरपरम्परा न केवल कुन्दकुन्द से पूर्व, अपितु अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष के समय ससंघ दक्षिण जाने के पहले से विद्यमान थी। इसकी युक्तिमत्ता पर प्रकाश डालते हुए आचार्य कुन्दकुन्दकृत ग्रन्थों के अँग्रेजी व्याख्याकार प्रो० ए० चक्रवर्ती नयनार लिखते हैं—

"When we take these historic discoveries with the Jaina traditions that a number of Tīrthankaras preceded Lord Mahāvīra we may not be altogether wrong in supposing that adherents of Jaina faith in some form or other must have existed even anterior to Mahāvīra and that Mahāvīra himself was more a reformer than the founder of the faith. If there were Jains influential enough to build Stūpas in honour of their saints even anterior to 600 B.C., will it be too much to suppose that the followers of this religion might have existed in South India even before Bhadrabāhu's migration to the south? In fact it stands to reason to suppose that a large body of ascetics on account of a terrible famine in the north migrated to a country where they would be welcomed by their devoted coreligionists. If the south were instead of a friendly territory waiting to receive the Saṅgha of learned ascetics a land populated with strangers and of alien faith, Bhadrabāhu would not have ventured to take with him into strange land a large body of ascetics who would depend entirely upon the generosity of the people. The Jaina tradition that the Pāndya king of the South was a Jaina from very early times and that Bhadrabāhu expected his hospitality might have some historical background." (Pañcāsti-kāyasāra, The Historical Introduction, pp.ii-iii)

भावार्थ—जब हम जैनपरम्परा के इन ऐतिहासिक अनुसन्धानों पर दृष्टि डालते हैं कि भगवान् महावीर के पूर्व अनेक तीर्थंकर हो चुके हैं, तब हमारा यह मानना तनिक भी गलत नहीं है कि जैनधर्म के अनुयायी महावीर के पूर्व भी विद्यमान थे और महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं, अपितु उपदेशक थे। यदि ईसापूर्व ६०० से भी पहले अपने सन्तों के सम्मान में स्तूप बनाने वाले जैन हो सकते हैं, तो क्या यह मानना गलत होगा कि इस धर्म के अनुयायी दक्षिण भारत में श्रुतकेवली भद्रबाहु के प्रवास से भी पहले विद्यमान थे? इसके गलत न होने की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि उत्तरभारत में भयंकर अकाल पड़ने पर आचार्य भद्रबाहु एक विशाल मुनिसंघ को लेकर इस विश्वास के साथ दक्षिण भारत चले गये थे, कि वहाँ के साधर्मी उनका स्वागत करेंगे। यदि भद्रबाहु को यह विश्वास न होता कि दक्षिण भारत में साधर्मी बन्धु हैं और वे उनका स्वागत करेंगे, तो इतने बड़े मुनिसंघ को लेकर

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वे अपरिचितों और परधर्मियों के बीच कदापि न जाते। जैन परम्परा में जो यह अनुश्रुति है कि दक्षिण का पाण्ड्य राजा शुरू से ही जैन था और भद्रबाहु को उसके आतिथ्य की अपेक्षा थी, इसकी कोई ऐतिहासिक पृष्ठिभूमि अवश्य होनी चाहिए।

सिद्धान्ताचार्य पं० कैलाशचन्द्र जी शास्त्री ने भी '**दक्षिणभारत में जैनधर्म**' नामक ग्रन्थ में निम्नलिखित शब्दों में इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया है—

"उत्तर भारत जैनधर्म की जन्मभूमि है। भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों का जन्म और निर्वाण उत्तर भारत में ही हुआ था, किन्तु उनका विहार दक्षिण भारत में भी हुआ था। इसलिए दक्षिण भारत में जैनधर्म के प्रवेश का कोई सुनिश्चित काल नहीं है। किन्तु भारतीय इतिहास के कतिपय अन्वेषक उपलब्ध ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु की दक्षिण-यात्रा के साथ दक्षिण में जैनधर्म का प्रवेश मानते हैं।

"दाक्षिणात्य अनुश्रुति के अनुसार, जिसका समर्थन साहित्यिक अभिलेखों और शिलालेखों से होता है, चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में उत्तर भारत में बारह वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने पर भद्रबाहु श्रुतकेवली ने बारह हजार मुनियों के संघ के साथ दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। चन्द्रगुप्त मौर्य भी उनके साथ थे। श्रवणबेळगोळ पहुँचने पर भद्रबाहु को लगा कि उनका अन्त समय निकट है, अतः उन्होंने संघ को आगे चोल, पाण्ड्य आदि प्रदेशों की ओर जाने का आदेश दिया और स्वयं श्रवणबेळगोळ में ही एक पहाड़ी पर, जिसे कलवप्पु या कटवप्र कहते थे, रह गये। अपने शिष्य चन्द्रगुप्त के साथ उन्होंने अपना अन्तिम समय वहीं बिताया और समाधिपूर्वक शरीर को त्यागा।

"उक्त आशय का एक शिलालेख उसी पहाड़ी पर, जिसे आज चन्द्रगिरि कहते हैं, अंकित है और उसका समय ईसा की छठी-सातवीं शताब्दी सुनिश्चित है। श्री लूईस राईस ने तथा प्राक्तन-विमर्शविचक्षण महामहोपाध्याय आर० नरसिंहाचार्य ने उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके प्रकाश डाला था।[५०] लूईस राईस के इस मत का कि चन्द्रगुप्त जैन था और वह दक्षिण की ओर गया था, थॉमस जैसे प्रमुख विद्वानों ने दृढ़ता से समर्थन किया था। 'जैनिज्म आर द अर्ली फेथ ऑफ अशोक' नामक निबन्ध में उसने कहा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैन था, इस विषय में विवाद की आवश्यकता नहीं है।[५१] मेगस्थनीज भी लिखता है कि वह ब्राह्मणों के सिद्धान्तों को नहीं मानता

---

५०. लूईस राईस–'मैसूर ऐण्ड कुर्ग फ्रॉम द इन्सक्रिप्शन्स'/पृ.२-१०। नरसिंहाचार्य-'इन्सक्रिप्शन्स ऍट श्रवणबेळगोळ'/पृ.३६-४०। स्मिथ-'अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया'/पृ.७५-७६।

५१. 'द जर्नल ऑव द रॉयल एशियाटिक सोसाइटी'/१९०१।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

था और श्रमणों का अनुयायी था। डॉ. फ्लीट[५२] और डॉ० बी० ए० स्मिथ[५३] ने भी इस बात को स्वीकार किया था कि चन्द्रगुप्त राज्य को त्यागकर साधु हो गया था और श्रवणबेळगोळ में उसका स्वर्गवास हुआ।

"अतः परम्परागत अनुश्रुति और प्राप्त अभिलेखों में कुछ मामूली बातों को लेकर मतभेद होते हुए भी यह एक निर्विवाद सत्य माना जाता है कि श्रुतकेवली भद्रबाहु के समय में जैन संघ दक्षिण की ओर गया था।[५४] और इस तरह कुछ विद्वान् ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में दक्षिण भारत में जैनधर्म का प्रवेश मानते हैं। किन्तु प्रकृत विषय का गम्भीरता से अध्ययन करनेवाले कुछ विद्वानों का मत है कि भद्रबाहु और चन्द्रगुप्त के आगमन से भी पूर्व दक्षिण भारत में जैनधर्म वर्तमान होना चाहिए। इसके वे नीचे लिखे कारण बतलाते हैं—

"१. इतने बड़े साधुसंघ को दक्षिण की ओर ले जाने से पूर्व भद्रबाहु को अवश्य ही यह विश्वास होना चाहिए था कि उस सुदूर देश में उनके संघ का उचित आतिथ्य होगा, क्योंकि जैन साधुओं के आहारादि की विधि ऐसी नहीं है, जिसका निर्वाह जैनधर्म से अनजान व्यक्ति कर सकता हो। अतः इससे प्रकट होता है कि कर्नाटक और तमिलनाडु के दक्षिण भागों में जैनधर्म के अनुयायी पूर्व से विद्यमान थे।[५५]

"२. बौद्ध ग्रन्थ 'महावंश' की रचना श्रीलंका के राजा धन्तुसेण (४६१-४७९ ई०) के समय में हुई थी। इसमें ५४३ ईसवीपूर्व से लेकर ३०१ ई० सन् तक के काल का वर्णन है। ४३७ ईसवीपूर्व के लगभग पाण्डुगाभय राजा के राज्यकाल में अनुराधापुर में राजधानी परिवर्तित हुई थी। महावंश में इस नये नगर की अनेक इमारतों का वर्णन है। उनमें से एक इमारत निर्ग्रन्थों के लिए थी। उसका नाम गिरि था और उसमें बहुत से निर्ग्रन्थ रहते थे। राजा ने निर्ग्रन्थों के लिए एक मंदिर भी बनवाया था।[५६]

"महावंश के इस लेख के अनुसार श्रीलंका में ईसा पूर्व ५वीं शती के लगभग जैनधर्म का प्रवेश हुआ होना चाहिए। और उत्तर भारत से दक्षिण भारत के प्रदेश

---

५२. 'एपिग्राफिका इण्डिका'/ जि.३ / पृ.१७१ और 'इण्डियन ऐण्टिक्वेरी'/ जिल्द २१/ पृ.१५६।
५३. 'अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया।'
५४. 'स्टडीज इन साउथ इण्डियन जैनिज्म'/ पृ.१९ आदि, 'मिडियावल जैनिज्म'/ पृ. ३-४। 'जैनिज्म ऐण्ड कर्नाटक कल्चर'/ पृ.५-६।
५५. 'प्रवचनसार' की अँग्रेजी प्रस्तावना : डॉ. ए.एन. उपाध्ये।
५६. 'स्टडीज इन साउथ इण्डियन जैनिज्म'/ पृ.३२ आदि।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

को अछूता छोड़ते हुए जैनधर्म का लंका में प्रवेश होना असम्भव है।'' (दक्षिणभारत में जैनधर्म / पृ.१-३)।

इस प्रकार दक्षिण भारत में अन्तिम श्रुतकेवली भद्रबाहु के ससंघ प्रवास से पूर्व दिगम्बर-जैनपरम्परा का अस्तित्व एक ऐतिहासिक सत्य है। अतः पाँचवीं शताब्दी ई० में तो क्या, ईसापूर्व प्रथम शताब्दी में भी कुन्दकुन्द के द्वारा दिगम्बरमत का प्रवर्तन मानना इतिहासविरुद्ध है।

१०.५. शिवभूति द्वारा जिनेन्द्रगृहीत अचेललिंग का अंगीकार

बोटिक शिवभूति समस्त तीर्थंकरों द्वारा अपनाये गये सर्वथा अचेललिंग को ही मोक्ष का एकमात्र मार्ग बतलाता है। इससे यह तथ्य प्रकाश में आता है कि दिगम्बरमत बोटिक शिवभूति अथवा आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा नहीं चलाया गया, बल्कि ऋषभादि तीर्थंकरों द्वारा उपदिष्ट है। उसका आचरण कठिन होने के कारण देहसुखाभिलाषी सचेलमार्गियों ने हीनसंहननधारी पुरुषों को उसके अयोग्य घोषित कर दिया था। किन्तु शिवभूति ने स्वयं को उसके अयोग्य मानने से इनकार कर दिया और सचेलमार्ग का त्याग कर सर्वथा अचेल दिगम्बरमार्ग अपना लिया। इस तरह उसने नवीनमत का प्रवर्तन नहीं किया था, अपितु परम्परागत मत का ही वरण किया था। निष्कर्षतः यह कथा दिगम्बरमत की मौलिकता और प्राचीनता पर प्रकाश डालती है। स्व० पं० कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री ने भी यही बात कही है। वे लिखते हैं—

''(बोटिक) कथा में भी यही बतलाया गया है कि जिनकल्प का विच्छेद होने के पश्चात् शिवभूति ने नग्न होकर जिनकल्प का प्रवर्तन किया और इस तरह बोटिकमत चल पड़ा। किन्तु इससे दिगम्बरमत अर्वाचीन प्रमाणित नहीं होता, क्योंकि जब जिनकल्प को दिगम्बरत्व का प्रतिरूप माना गया है और जम्बूस्वामी तक उसका प्रचलन रहा है तथा उसे ही शिवभूति ने धारण किया, तो उसने नवीनमत कैसे चलाया? जो पुराना था तथा एक पक्ष ने जिसके विच्छेद होने की घोषणा कर दी थी, उसी का पुनः प्रवर्तन करना नवीन मत का चलाना तो नहीं है। यदि जिनकल्प पहले कभी प्रचलित न हुआ होता तथा जैनपरम्परा में उसे आदर प्राप्त न हुआ होता, तो उसे नवीन मत कहा जा सकता था। किन्तु उत्तरकालीन श्वेताम्बरसाहित्य में जिनकल्प का समादर पाया जाता है। श्वेताम्बरीय आगमिक साहित्य के टीकाकारों ने प्रायः प्रत्येक कठिन आचार को जिनकल्प का आचार बताया है। उसके सम्बन्ध में केवल इतना ही विरोध था कि पंचम काल में उसका विच्छेद हो गया है, क्योंकि उसका धारण करना शक्य नहीं है। शिवभूति को भी यही कहकर समझाया गया था। किन्तु उसने यही उत्तर दिया कि असमर्थ के लिए जिनकल्प का विच्छेद भले ही हुआ हो, समर्थ के लिए उसका विच्छेद कैसे हो सकता है?''[५७]

---

५७. जैन साहित्य का इतिहास / पूर्वपीठिका / पृ.३९०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"अतः श्वेताम्बरकथा के अनुसार भी दिगम्बरपन्थ नया प्रमाणित नहीं होता। किन्तु उसमें जो जम्बूस्वामी के पश्चात् ही जिनकल्प का विच्छेद तथा शिवभूति के द्वारा उसकी पुनः प्रवृत्ति आदि बतलाई गई है, उसका समर्थन अन्य स्रोतों से नहीं होता और न यह बात ही गले उतरती है कि आदर्शमार्ग का एकदम लोप हो जाये, और फिर एक शिवभूति के द्वारा, जो न ऐतिहासिक व्यक्ति ही है और न कोई प्रभावशाली पुरुष ही प्रतीत होता है, पुनः दिगम्बरमार्ग का प्रचलन इतने जोरों से हो जाये। इन्हीं कारणों से किसी ऐतिहासिक विद्वान् ने संघभेद की उत्पत्ति में श्वेताम्बरकथा को प्रश्रय नहीं दिया, जबकि दिगम्बरकथा की घटना को अनेक इतिहासज्ञों ने स्थान दिया है।"[५८]

१०.६. श्वेताम्बरग्रन्थों में कुन्दकुन्द का उल्लेख नहीं

शिवभूति कोई प्रसिद्ध पुरुष नहीं था, फिर भी श्वेताम्बराचार्यों ने उसे दिगम्बरमत का प्रवर्तक कहा है। किन्तु आचार्य कुन्दकुन्द तो प्रसिद्ध पुरुष थे। यदि वे विक्रम की छठी शताब्दी में हुए होते, तो आवश्यक-निर्युक्तिकार भद्रबाहु के समकालीन होते। और यदि उन्होंने दिगम्बरमत का प्रवर्तन किया होता, तो भद्रबाहु आदि श्वेताम्बराचार्य इसके प्रत्यक्षदर्शी होते। अपनी आँखों के सामने एक विरोधीमत के उद्भव से उनमें तीव्र प्रतिक्रिया हुई होती और वे अपने 'आवश्यकनिर्युक्ति' आदि ग्रन्थों में कुन्दकुन्द को दिगम्बरमत का संस्थापक बतलाते तथा 'विशेषावश्यकभाष्य' आदि में जैसी निन्दा बोटिक शिवभूति की की गई है, वैसी ही कुन्दकुन्द की, की जाती। किन्तु 'आवश्यकनिर्युक्ति' आदि किसी भी श्वेताम्बरग्रन्थ में कुन्दकुन्द के दिगम्बरमत-प्रवर्तक होने का उल्लेख नहीं है। एक बोटिक शिवभूति जैसे साधारण पुरुष को उसका प्रवर्तक बतलाया है, वह भी वीर नि० सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में। यह इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि निर्युक्तिकार भद्रबाहु आदि के समय में न तो कुन्दकुन्द हुए थे, न ही उनके द्वारा दिगम्बरमत की स्थापना की गयी थी।

१०.७. दिगम्बरसंघ भद्रबाहु की परम्परा का संघ : डॉ० सागरमल जी

यद्यपि डॉ० सागरमल जी ने अपने पूर्वलिखित ग्रन्थ **जैनधर्म का यापनीयसम्प्रदाय** में मुनि कल्याणविजय जी एवं पं० दलसुख जी मालवणिया का अनुसरण करते हुए यह माना है कि दिगम्बरसंघ की स्थापना विक्रम की छठी शती में दक्षिण भारत के आचार्य कुन्दकुन्द ने की थी (ग्रन्थलेखक के वचन इसी प्रकरण के शीर्षक ४ में उद्धृत हैं), तथापि आठ वर्ष बाद लिखे गये अपने नवीन ग्रन्थ **जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा** में उन्होंने इस मान्यता का परित्याग कर दिया है और यह स्वीकार किया है कि वर्तमान दिगम्बरसंघ ईसापूर्व चौथी शताब्दी में हुए श्रुतकेवली भद्रबाहु की परम्परा

५८. वही / पृ.३९२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का संघ है। इसका समर्थन उन्होंने तमिलनाडु में प्राप्त ई० पू० प्रथम-द्वितीय शती के ब्राह्मीलिपि में उत्कीर्ण अभिलेखों से किया है। (ग्रन्थकार के वचन अध्याय ६ के प्रकरण २ में द्रष्टव्य हैं)। डॉ० सागरमल जी के इस प्रमाणसिद्ध संशोधित मत से मुनि कल्याणविजय जी एवं पं० दलसुख जी मालवणिया की यह मान्यता निरस्त हो जाती है कि आचार्य कुन्दकुन्द दिगम्बरमत के प्रवर्तक थे और यह स्थापित होता है कि दिगम्बर-परम्परा श्रुतकेवली भद्रबाहु और उनकी गुरुपरम्परा-जितनी पुरानी है अर्थात् भगवान् महावीर-जितनी प्राचीन।

११

बोटिकसंघ की दक्षिणयात्रा अप्रामाणिक

मुनि कल्याणविजय जी ने लिखा है-"यद्यपि शिवभूति के सम्प्रदाय का उद्भव उत्तरापथ में हुआ था, पर वहाँ उसका अधिक प्रचार नहीं हो सका।---इस स्थिति में शिवभूति या उनके अनुयायियों का वहाँ टिकना बहुत कठिन था। इस कठिनाई के कारण उस सम्प्रदाय ने उधर से हटकर दक्षिणापथ की तरफ प्रयाण किया।" (श्र.भ.म./पृ.३०१)।

इस घटना के समर्थन में मुनि जी ने कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया, न बोटिक संघोत्पत्ति-कथा का वर्णन करनेवाले ग्रन्थों में, न अन्य किसी ग्रन्थ अथवा शिलालेख में इसका उल्लेख है। इससे सिद्ध है कि बोटिकसंघ के उत्तर से दक्षिण में जाने की बात मुनि जी ने अपने मन से कल्पित की है।

पूर्व में सप्रमाण सिद्ध किया गया है कि शिवभूति ने किसी नये सम्प्रदाय को जन्म नहीं दिया था, अपितु जिनप्रणीत ऐकान्तिक अचेल (दिगम्बर) परम्परा को अंगीकार किया था। और वह परम्परा उत्तर-दक्षिण दोनों में विद्यमान थी। इसलिए शिवभूति के दिगम्बर बन जाने पर उसे उत्तरभारत में ही विशाल निर्ग्रन्थश्रमणसंघ प्राप्त हो गया था। अतः उसे अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए दक्षिणापथ जाने की आवश्यकता ही नहीं थी। फलस्वरूप शिवभूति या उसके शिष्यों के दक्षिणापथ चले जाने की कथा कपोलकल्पित है।

जहाँ तक यापनीयसंघ का सवाल है इतिहासविद् डॉ० गुलाबचन्द्र जी चौधरी ने उस के विषय में लिखा है कि "यह संघ दक्षिणभारत की अपनी देन है।"[५९] यापनीयसंघ पर विस्तृत शोध करनेवाले डॉ० ए० एन० उपाध्ये का भी कथन है कि यापनीयसंघ का उल्लेख दक्षिणभारत के ही शिलालेखों में मिलता है और उसका साहित्य

---

५९. जैनशिलालेखसंग्रह / माणिकचन्द्र / भाग ३ / प्रस्तावना / पृ.२५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भी दक्षिणभारत में ही उपलब्ध हुआ है।[६०] प्राचीन इतिहास के विद्वान् श्री काशीप्रसाद जी जायसवाल भी लिखते हैं कि यापनीयसंघ का उद्भव और विकास दक्षिणापथ में हुआ था, क्योंकि वे मुख्यतः कर्नाटक के शिलालेखों में ही दृष्टिगोचर होते हैं। (देखिये, अध्याय७/ प्र.१/शी.९)।

इतिहासज्ञों के ये विचार इस बात की पुष्टि करते हैं कि यापनीयसम्प्रदाय की उत्पत्ति दक्षिणापथ में ही हुई थी। अतः मुनि श्री कल्याणविजय का यह मत सर्वथा अप्रामाणिक सिद्ध होता है कि बोटिकसंघ दक्षिण में जाकर यापनीयसम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२
'मूलसंघ' यापनीयसंघ का पूर्वनाम नहीं

मुनि कल्याणविजय जी कहते हैं कि शिवभूति ने अपने सम्प्रदाय का नाम पहले मूलसंघ रखा, पश्चात् दक्षिणापथ में जाने पर 'यापनीय' कहलाने लगा।

मेरा कथन यह है कि बोटिकसंघ ऐकान्तिक अचेलमार्गी दिगम्बरसंघ था। अतः उसका मूलसंघ नाम उचित ही था। किन्तु यापनीयसंघ का पूर्वनाम मूलसंघ था, यह कथन प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ या शिलालेख में यापनीय-संघ को मूलसंघ नाम से अभिहित नहीं किया गया है। तथा मूलसंघ उसे कहते हैं, जिससे कोई अन्य संघ उद्भूत हुआ हो। किन्तु यापनीयसंघ से किसी अन्य संघ का उद्भव नहीं हुआ था। इसलिए उसके मूलसंघ नाम से अभिहित किये जाने की कल्पना तर्कसंगत नहीं है। इस विषय का विस्तार से विवेचन '**यापनीय संघ का इतिहास**' नामक सप्तम अध्याय में द्रष्टव्य है।

१३
यापनीयसंघ दिगम्बरसंघ का पूर्वनाम नहीं

पूर्वोक्त मुनि जी ने लिखा है-"दिगम्बरसम्प्रदाय का पूर्वनाम 'यापनीयसंघ' था, जो श्वेताम्बरीय परम्परा के आचार-विचार का अनुसरण करनेवाला और कतिपय जैन आगमों को भी माननेवाला था। परन्तु पिछले दिगम्बराचार्य यापनीयसंघविषयक अपना पूर्वसम्बन्ध भूल गये और नग्नता के समर्थक होते हुए भी श्वेताम्बरीय आगम और आचार-विचारों के कारण उसे 'खच्चर' तक की उपमा देने में न सकुचाये। देखिए 'षट्प्राभृत' (दंसणपाहुड/११) की टीका में श्रुतसागर के निम्नोद्धृत वाक्य—"**यापनीयास्तु**

६०. देखिए , प्रस्तुत ग्रन्थ का 'यापनीयसंघ का इतिहास' नामक सप्तम अध्याय।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

वेसरा इवोभयं मन्यन्ते, रत्नत्रयं पूजयन्ति, स्त्रीणां तद्भवे मोक्षं, केवलिजिनानां कवलाहारं, परशासने सग्रन्थानां च मोक्षं कथयन्ति।'' (श्र.भ.म./पृ.३३५)।

पूर्वोद्धृत वक्तव्य (शीर्षक ३) में मुनिजी ने कहा है कि ''यापनीयसम्प्रदाय आपवादिक सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के सिद्धान्तों को मानता था। कुन्दकुन्द इन्हें अनुचित मानते थे अतः वे इन्हें निरस्त करना चाहते थे। किन्तु उनके यापनीय-गुरु और सहधर्मियों ने साथ नहीं दिया, फलस्वरूप वे संघ से अलग हो गये और इन सिद्धान्तों को अमान्य करनेवाला नया दिगम्बरमत चला दिया।'' (मुनि जी के कथन का सार)। इससे स्पष्ट है कि दिगम्बरमत और यापनीयमत में महान् सैद्धान्तिक भेद था। फिर वे दोनों अभिन्न कैसे हो सकते हैं? और जब वे अभिन्न नहीं थे, तो यापनीयसंघ दिगम्बरसम्प्रदाय का पूर्वनाम कैसे हो सकता है? यह तो मिथ्याकथन कर दिगम्बरसम्प्रदाय को यापनीयसम्प्रदाय से उद्भूत एवं अर्वाचीन सिद्ध करने का कुप्रयास है।

तथा मुनि जी ने विक्रम की छठी शताब्दी में कुन्दकुन्द के द्वारा यापनीयसम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद उससे अलग होकर दिगम्बरमत की स्थापना किये जाने की कल्पना के आधार पर उसे यापनीयमत से उद्भूत एवं अर्वाचीन माना है। किन्तु पूर्व में वे शिलालेखीय एवं साहित्यिक प्रमाण उपस्थित किये गये हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि दिगम्बरपरम्परा विक्रम की छठी शताब्दी के बहुत पहले से चली आ रही थी। अतः वह यापनीयसम्प्रदाय से उद्भूत सिद्ध नहीं होती। अत एव यह भी सिद्ध नहीं होता कि दिगम्बरसम्प्रदाय का पूर्वनाम यापनीयसंघ था। किन्तु मुनि कल्याणविजय जी ने इतिहासग्रन्थ में ऐसा लिखकर इतिहास को कपोलकल्पनाओं का अभिलेख बनाने का प्रयास किया है।

१४
परस्परविरोधी धराशायी होती कहानियाँ

मुनि जी ने अपने पूर्वोद्धृत मनगढ़न्त निष्कर्षों में एक स्थान पर कहा है कि ''शिवभूति के द्वारा स्थापित एवं **मूलसंघ** नाम से प्रसिद्ध (सचेलाचेल) सम्प्रदाय, जब कुन्दकुन्द के द्वारा किये गये सुधारों के फलस्वरूप विभाजित हुआ, तब यापनीयसंघ, काष्ठासंघ, माथुरसंघ आदि संघ बन गये।'' लेकिन दूसरे स्थान पर कहते हैं कि ''यापनीय-संघ के टूटने से दिगम्बरसंघ, द्राविड़संघ आदि संघ बने।'' (देखिये, इसी प्रकरण का शीर्षक ३)।

अर्थात् पूर्वकथन के अनुसार कुन्दकुन्द द्वारा प्रणीत माने गये दिगम्बरमत के साथ ही यापनीयसंघ उत्पन्न हुआ और दूसरे कथन के अनुसार यापनीयसंघ से

दिगम्बरमत प्रकट हुआ। इन कथनों में महान् अन्तर्विरोध है। इस विरोध से निम्नलिखित विसंगतियाँ पैदा होती हैं—

१. यदि कदम्बवंशीय श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के काल (विक्रम की छठी शती) में कुन्दकुन्द के सुधारवादी अभियान के फलस्वरूप शिवभूतिप्रणीत मूलसंघ के टूटने से यापनीयसंघ और दिगम्बरसंघ की उत्पत्ति मानी जाय, तो यह सम्भव नहीं है। क्योंकि श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा और मृगेशवर्मा के शिलालेखों (क्र. ९८ और ९९) में निर्ग्रन्थमहा-श्रमणसंघ (दिगम्बरसंघ), श्वेतपटमहाश्रमणसंघ, यापनीयसंघ तथा कूर्चकों को तो दान दिये जाने का उल्लेख है, किन्तु 'मूलसंघ' नाम के किसी संघ का उल्लेख नहीं है। इससे सिद्ध है कि विक्रम की छठी शताब्दी में निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ से अलग किसी मूलसंघ का अस्तित्व नहीं था। अतः उसके टूटने से यापनीयसंघ, दिगम्बरसंघ आदि के उत्पन्न होने की कथा अप्रामाणिक है।

२. मृगेशवर्मा के शिलालेख में यापनीयसंघ का उल्लेख है। इससे उसकी उत्पत्ति मृगेशवर्मा के काल से कम से कम पचास वर्ष पूर्व माननी होगी। और कुन्दकुन्द के सुधारवादी अभियान से यापनीयसंघ एवं दिगम्बरसंघ की उत्पत्ति मानने पर कुन्दकुन्द का अस्तित्व भी मृगेशवर्मा एवं श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा से कम से कम पचास वर्ष पूर्व मानना होगा। इस स्थिति में कुन्दकुन्द श्रीविजयशिवमृगेशकालीन, अत एव उनके गुरु सिद्ध नहीं होते, जबकि मुनि जी ने ऐसा माना है।

३. यदि श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के काल में मूलसंघ की बजाय यापनीयसंघ से दिगम्बरसंघ का उद्भव माना जाय तो यह भी असंगत है। क्योंकि श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के शिलालेख में निर्ग्रन्थ महाश्रमणसंघ (दिगम्बरसंघ) को दान दिये जाने का वर्णन है, जिससे सिद्ध होता है कि उसका अस्तित्व श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के बहुत पहले से था।

४. मुनि जी ने विक्रम की छठी शताब्दी में तथाकथित शिवभूतिवाले मूलसंघ के विभाजन से दिगम्बरसंघ, यापनीयसंघ, काष्ठासंघ, माथुरसंघ, द्राविड़संघ आदि की उत्पत्ति बतलायी है। यह प्रामाणिक नहीं है। यापनीयसंघ के सिद्धान्त तो मुनि जी के अनुसार तथाकथित शिवभूतिवाले मूलसंघ से पृथक् नहीं थे, अतः यापनीयसंघ की उत्पत्ति को तो मूलसंघ का केवल नाम परिवर्तन ही कहा जा सकता है। शेष चारों संघ सवस्त्रमुक्ति, स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के विरोधी थे, अतः वे दिगम्बरसंघ की ही विभिन्न शाखाएँ थीं। यदि इनकी उत्पत्ति एक साथ उक्त मूलसंघ के विभाजन से हुई थी, तो मुनि जी का यह कथन असंगत हो जाता है कि दिगम्बरमत की

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

नींव कुन्दकुन्द ने डाली थी। क्योंकि एक साथ उत्पन्न होने पर इन चारों संघों के संस्थापक पुरुष दिगम्बरमत की स्थापना करनेवाले सिद्ध होते हैं।

दूसरी बात यह है कि इनकी एक साथ उत्पत्ति का कोई प्रमाण मुनि जी ने उपस्थित नहीं किया, जब कि देवसेनकृत **दर्शनसार** में उनकी उत्पत्ति भिन्न-भिन्न समयों में बतलायी गयी है, जैसे **द्राविड़संघ** की उत्पत्ति विक्रममृत्यु-संवत् ५२६ में, **काष्ठासंघ** की ७५३ में, **माथुरसंघ** की ९५३ में और **यापनीयसंघ** की ७०५ या २०५ में। इससे सिद्ध होता है मुनिजी का इनको विक्रम की छठी शताब्दी (पाँचवीं शती ई०) में एक साथ उत्पन्न बतलाना अप्रामाणिक है।

इस प्रकार तथाकथित शिवभूति-प्रवर्तित सम्प्रदाय से कभी मूलसंघ-नामधारी अवस्था में और कभी यापनीय-नामधारी अवस्था में दिगम्बरादि संघों की उत्पत्ति की कहानियाँ परस्परविरोधी हैं। वे एक दूसरे को अप्रामाणिक ठहराती हैं और उपर्युक्त विसंगतियों को जन्म देती हैं, फलस्वरूप उनमें से कोई भी पैर नहीं जमा पाती, सब धराशायी हो जाती हैं। अतः हम पाते हैं कि वे अत्यन्त अतर्कसंगत रीति से कपोलकल्पित हैं।

✧✧✧

तृतीय प्रकरण

उत्तरभारतीय सचेलाचेल निर्ग्रन्थसंघ कपोलकल्पित

१

अचेल-सचेल दोनों लिंगों से मुक्ति के उपदेश की कल्पना

डॉ० सागरमल जी ने इतिहास के विरुद्ध एक यह उद्भावना की है कि 'भगवान् महावीर ने अचेललिंग और सचेललिंग दोनों से मुक्ति होने का उपदेश दिया है। सचेललिंग से मुक्ति संभव होने से स्त्री भी तद्भवमुक्ति के योग्य बतलायी गई है।' श्वेताम्बर-साहित्य में अचेललिंग को जिनकल्प और सचेललिंग को स्थविरकल्प के नाम से अभिहित किया गया है। डॉक्टर सा० की मान्यता है कि उत्तरभारत में तीर्थंकर महावीर के समय से ही उनका अनुयायी जो श्रमणसंघ था, वह अचेल और सचेल दोनों लिंगों को मोक्षमार्ग मानता था। इस संघ को उन्होंने **उत्तरभारतीय निर्ग्रन्थसंघ** नाम से अभिहित किया है। (जै.ध.या.स./पृ.३६६)। मैंने इसके साथ **सचेलाचेल** विशेषण जोड़-कर डॉक्टर सा० के अभिप्राय को स्पष्ट कर दिया है, ताकि पाठकों को **निर्ग्रन्थ** शब्द से यह भ्रम न हो कि इस संघ के साधु नग्न ही रहते थे। डॉक्टर सा० ने इस संघ (सम्प्रदाय या परम्परा) में श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों की समस्त मान्यताओं को समाविष्ट कर दिया है। सचेलमुक्ति, स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, परतीर्थिकमुक्ति, केवलि-कवलाहर, मल्लितीर्थंकर का स्त्री होना और महावीर का गर्भपरिवर्तन, ये मान्यताएँ श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों में समान हैं, जो इसमें समाविष्ट की गयी हैं। परीषहादिसहन में असमर्थ मोक्षार्थी पुरुषों के लिए सचेललिंग और समर्थ पुरुषों के लिए अचेललिंग के विधान की मान्यता यापनीयों की विशिष्ट मान्यता है। डॉ० सागरमल जी ने इसे दृष्टि में रखते हुए अचेललिंग का विधान भी स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ में कर दिया है, ताकि वे इस संघ से श्वेताम्बर और यापनीय दोनों सम्प्रदायों की उत्पत्ति बतला सकें। इस प्रकार डॉक्टर सा० ने **उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निग्रन्थसंघ** इस नये नाम से श्वेताम्बरसंघ को ही भगवान् महावीर के उपदेशों का पालन करनेवाला भारत का प्राचीनतम जैन श्रमणसंघ बतलाया है।

डॉक्टर सा० ने स्वकल्पित उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा का अस्तित्व पहले तो वीरनिर्वाण संवत् ६०९ (ई० सन् ८२)[६१] तक माना था, क्योंकि श्वेताम्बरग्रन्थों

---

६१. डॉ० सागरमल जी ने भगवान् महावीर का निर्वाण ईसापूर्व ४६७ में मानकर वीरनिर्वाण सं० ६०९ को ई० सन् १४२ (वि.सं.१९९) के समकक्ष माना है। अतः उन्होंने बोटिकमत (उनके अनुसार यापनीयमत) की उत्पत्ति ई० सन् १४२ (ईसा की द्वितीय शताब्दी)

में इसी समय बोटिकमत की उत्पत्ति बतलायी गयी है, जिसे डॉक्टर सा० ने यापनीयमत माना है। (जै.ध.या.स./पृ.१६-१७)। यह उनके अनुसार उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा के विभाजन से ही उत्पन्न हुआ था। किन्तु बाद में उन्होंने अपना मत बदल दिया और ईसा की पाँचवीं शती के प्रथम चरण तक उसे विद्यमान मान लिया। अपना परिवर्तित मत प्रस्तुत करते हुए वे लिखते हैं—

"यह सही है कि ईसा की दूसरी शताब्दी से वस्त्रपात्र के प्रश्न पर विवाद प्रारंभ हो गया, फिर भी यह निश्चित है कि पाँचवीं शताब्दी से पूर्व श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय जैसे सम्प्रदाय अस्तित्व में नहीं आ पाये थे। निर्ग्रन्थसंघ (दिगम्बर), श्वेतपट-महाश्रमणसंघ और यापनीयसंघ का सर्वप्रथम उल्लेख हल्सी के पाँचवीं शती के अभिलेखों में ही मिलता है।" (जै.ध.या.स./पृ.३६८)।

"स्पष्ट सम्प्रदायभेद, सैद्धान्तिक मान्यताओं का निर्धारण और श्वेताम्बर, दिगम्बर और यापनीय जैसे नामकरण पाँचवीं शताब्दी के बाद ही अस्तित्व में आये हैं।' (जै.ध.या.स./पृ.३७२)।

इस प्रकार श्वेताम्बर-यापनीय संघों का उत्पत्तिकाल ईसा की पाँचवीं शताब्दी (देवगिरि-हल्सी-अभिलेख / ई० सन् ४७०-४९० से कुछ वर्ष पूर्व) घोषित कर डॉ० सागरमल जी ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि श्वेताम्बर-यापनीयों की जननी उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा ईसा की पाँचवीं सदी के प्रारंभ तक विद्यमान थी।

डॉक्टर सा० मानते हैं कि ऐकान्तिक अचेलमार्गी श्रमणसंघ या श्रमणपरम्परा (दिगम्बर-परम्परा) का प्रवर्तन ईसा की पाँचवीं शती में दक्षिणभारत में आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा किया गया। डॉक्टर सा० ने इसे **दक्षिणभारतीय निर्ग्रन्थसंघ** नाम दिया है। 'दक्षिणभारतीय निर्ग्रन्थसंघ' नाम का प्रयोग डॉक्टर सा० के निम्नलिखित कथन में मिलता है—"दक्षिणभारत का वह निर्ग्रन्थसंघ (मूलसंघ) आगमों को विच्छिन्न मानने लगा था। --- इस प्रकार आगमों के विच्छिन्न होने के प्रश्न पर दक्षिणभारत के निर्ग्रन्थ-मूलसंघ और यापनीयों में मतभेद रहा होगा।" (जै.ध.या.स./पृ.४६)।

निम्नलिखित उद्धरणों में उन्होंने दक्षिणभारतीय निर्ग्रन्थसंघ को आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा स्थापित बतलाया है—

में बतलायी है। (जै.ध.या.स./विषय प्रवेश/पृ.१६-१७)। यह उचित नहीं है। प्रायः सभी दिगम्बर और श्वेताम्बर विद्वानों ने वीरनिर्वाणवर्ष ईसापूर्व ५२७ माना है। तदनुसार वीरनिर्वाण संवत् ६०९ सन् ८२ के समकक्ष सिद्ध होता है। (देखिये, अध्याय १०/प्रकरण ५/शी.३.३—'विरोधी तर्कों का निरसन')।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"ई० सन् की पाँचवीं-छठी शताब्दी तक जैनपरम्परा में कहीं भी स्त्रीमुक्ति का निषेध नहीं था। स्त्रीमुक्ति एवं सग्रन्थ (सवस्त्र) की मुक्ति का सर्वप्रथम निषेध आचार्य कुन्दकुन्द ने सुत्तपाहुड में किया है।" (जै.ध.या.सं./पृ.३९४)। "कुन्दकुन्द ही मूलसंघ के प्रथम आचार्य थे।" (जै.ध.या.स./पृ.४६)। "कुन्दकुन्द की स्त्रीमुक्ति-निषेधक परम्परा सुदूर दक्षिण में ही प्रस्थापित हुई थी।" (जै.ध.या.स./पृ.४०२)।

इस प्रकार सवस्त्रमुक्ति एवं स्त्रीमुक्ति के निषेधक एकान्त अचेलमार्गी दिगम्बरसंघ को कुन्दकुन्द द्वारा स्थापित दक्षिणभारतीय निर्ग्रन्थसंघ बतलाकर उत्तरभारत के निर्ग्रन्थसंघ को अचेलसचेल-उभयात्मक तथा स्त्रीमुक्ति आदि का समर्थक प्ररूपित करते हुए डॉक्टर सा० लिखते हैं—

"महावीर के काल से ही निर्ग्रन्थसंघ में नग्नता का एकान्त आग्रह नहीं था, किन्तु उसे अपवाद के रूप में ही स्वीकृत किया गया था।" (जै.ध.या.स./पृ.२५)।

"उमास्वाति भी मतभेदों के बावजूद उसी उत्तरभारत की आगमिक निर्ग्रन्थ परम्परा के आचार्य हैं, जिससे श्वेताम्बरों और यापनीयों का विकास हुआ है और जो स्त्रीमुक्ति, गृहस्थमुक्ति, अन्यतैर्थिकमुक्ति, केवलिभुक्ति आदि की समर्थक रही है।" (जै.ध.या.स./पृ.२५०)।

"महावीर के धर्मसंघ में जब वस्त्रपात्र आदि में वृद्धि होने लगी और अचेलकत्व की प्रतिष्ठा क्षीण होने लगी, तब उससे अचेलता के पक्षधर यापनीय और सचेलता के पक्षधर श्वेताम्बर ऐसी दो धाराएँ निकलीं।" (जै.ध.या.स./पृ.२४)।

"वस्तुतः जब उत्तरभारत में प्रवर्तित महावीर के श्रमणसंघ में वस्त्रपात्र रखने का आग्रह जोर पकड़ने लगा, भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट एवं आचरित अचेलकत्व अर्थात् जिनकल्प का विच्छेद बताकर उसका उन्मूलन किया जाने लगा और वस्त्र-पात्र के आपवादिक मार्ग (स्थविरकल्प) को ही तत्कालीन परिस्थितियों में एकमात्र मार्ग माना जाने लगा, तो शिवभूति प्रभृति कुछ प्रबुद्ध मुनियों ने उसका विरोध किया। इस विरोध की फलश्रुति-स्वरूप ही उस सम्प्रदाय का जन्म हुआ, जो यापनीयों की पूर्व अवस्था थी और जिसे श्वेताम्बरों ने बोटिक या बोडिय कहा था।" (जै.ध.या.स./पृ.३८६-३८७)।

इन कथनों से स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. सागरमल जी की कल्पनानुसार भगवान् महावीर ने औत्सर्गिक अचेल जिनकल्प एवं आपवादिक सचेल स्थविरकल्प, इन दोनों मार्गों से मोक्ष की प्राप्ति बतलाई है और उत्तरभारत का निर्ग्रन्थसंघ इसी सचेलाचेलमार्ग का अनुगामी था।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

डॉक्टर सा० ने इस उत्तरभारतीय सचेलाचेल निर्ग्रन्थसंघ को **मूलधारा** और **अविभक्त परम्परा** शब्दों से विशेषित करते हुए कहा है कि इसी मूलधारा या अविभक्त परम्परा से श्वेताम्बर और यापनीय संघों का जन्म हुआ था, अतः यह इन दोनों संघों की पूर्वज परम्परा है। (देखिये, इसी अध्याय के चतुर्थ प्रकरण का प्रथम अनुच्छेद)। इस आधार पर मैंने अभिव्यक्ति की सुविधा के लिये इस संघ या परम्परा को दो नामों से अभिहित किया है—१. उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ या परम्परा और २. श्वेताम्बर-यापनीय-मातृपरम्परा।

डॉक्टर सा० का कथन है कि आचारांगादि आगमग्रन्थ, उनकी निर्युक्तियाँ, प्रकीर्णक तथा कर्मसाहित्य के ग्रन्थ भी इसी उत्तरभारतीय सचेलाचेल निर्ग्रन्थसंघ के हैं, जो श्वेताम्बरों और यापनीयों को उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे। (जै. ध. या. स./पृ.६८)।

डॉक्टर सा० ने जो सचेल श्रमणों के संघ को भी निर्ग्रन्थसंघ नाम से अभिहित किया है, उसके अनौचित्य का प्रतिपादन आगे षष्ठ प्रकरण में में किया जायेगा। यहाँ केवल इस मान्यता को कपोलकल्पित सिद्ध किया जा रहा है कि भगवान् महावीर ने सचेल और अचेल दोनों मार्गों से मोक्ष होने का उपदेश दिया था और उत्तरभारत में उन्हीं के समय से सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ विद्यमान था।

२

उक्त कपोलकल्पना द्वारा अनेक प्रयोजनों की सिद्धि का प्रयास

भगवान् महावीर के निर्ग्रन्थसंघ को सचेलाचेल बतलाकर मान्य विद्वान् ने अपनी कपोलकल्पना द्वारा अनेक प्रयोजनों को सिद्ध करनेका प्रयास किया है। यथा—

१. दिगम्बरपरम्परा को भगवान् महावीर की परम्परा से अलग सिद्ध करना।

२. महावीर के तीर्थ को सचेलाचेल सिद्ध करना।

३. श्वेताम्बरों और यापनीयों को ही महावीर की परम्परा का उत्तराधिकारी ठहराना।

४. और इस प्रकार जो ग्रन्थ श्वेताम्बरों का नहीं है और स्पष्टतः यापनीयों का भी नहीं है, किन्तु जिसकी कुछ विषयवस्तु श्वेताम्बरग्रन्थों की विषयवस्तु से मिलती-जुलती है, उसे यदि वह यापनीयसम्प्रदाय की उत्पत्ति के पूर्व रचा गया है, तो उत्तरभारतीय सचेलाचेल परम्परा के आचार्यों द्वारा रचित सिद्ध करना और यदि उसके बाद रचा गया है, तो उस परम्परा के उत्तराधिकारी यापनीयसंघ के आचार्य द्वारा रचित बतलाना, और इस तरह उसके दिगम्बरग्रन्थ होने का अपलाप करना।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३

कपोलकल्पित होने के शास्त्रीय प्रमाण

३.१. भगवान् महावीर का निर्ग्रन्थसंघ सर्वथा अचेलमार्गी

उत्तराध्ययनसूत्र के केशी-गौतम-संवाद में बतलाया गया है कि भगवान् महावीर ने अचेलकधर्म का उपदेश दिया था और भगवान् पार्श्वनाथ ने सचेलधर्म का—

अचेलगो य जो धम्मो जो इमो संतरुत्तरो।
देसिदो वद्धमाणेण पासेण य महाजसा॥ २३/२९॥

श्री हरिभद्रसूरि ने तो अपने ग्रन्थ **पञ्चाशक** में महावीर के अतिरिक्त भगवान् ऋषभदेव को भी अचेलधर्म का ही प्रवर्तक (उपदेशक) बतलाया है—

आचेलक्को धम्मो पुरिमस्स य पच्छिमस्स य जिणस्स।
मज्झिमगाण जिणाणं होइ सचेलो अचेलो य ॥ १२॥

प्रथम और चरम तीर्थंकरों के तीर्थ में साधुओं के लिए जो दस प्रकार का कल्प (आचार) निर्धारित किया गया है, उसमें आचेलक्य का निर्देश सर्वप्रथम किया गया है—

आचेलक्कुद्देसिय-सेज्जायर-रायपिंड-किइकम्मे।
वय-जेट्ठ-पडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पो॥

यह **कल्पनिर्युक्ति** की गाथा है। (देखिये, 'श्रमण भगवान् महावीर'/पृ. ३३६)। **जीतकल्पभाष्य** की भी यह १९७२ वीं गाथा है। (जै.ध.या.स./पृ.१३२)।

तत्त्वार्थसूत्र में भी साधु के बाईस परीषहों में नाग्न्यपरीषह बताया गया है, जो साधु के लिए अचेललिंग धारण करने के उपदेश का सूचक है। शीत, उष्ण, दंशमशक आदि परीषहों को जीतने का उपेदश भी अचेलत्व की अनिवार्यता का ज्ञापक है, क्योंकि वस्त्रधारी को ये परीषह संभव नहीं है। **आचारांग** में भी इसका समर्थन किया गया है। (देखिये, आगे अध्याय ३/प्रकरण १/शीर्षक ६, ७, ९)।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि भगवान् महावीर के निर्ग्रन्थसंघ को सचेलाचेलमार्गी कहना आगमविरुद्ध है अर्थात् कपोलकल्पित है।

डॉ० सागरमल जी ने भी आगे चलकर स्वमत में परिवर्तन करते हुए अपने नवीन ग्रन्थ **जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा** (पृ.२६) में भगवान् महावीर के निर्ग्रन्थसंघ को अचेलमार्गी ही स्वीकार किया है। देखिए—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

''दक्षिण की जलवायु उत्तर की अपेक्षा गर्म थी, अतः अचेलता के परिपालन में दक्षिण में गये निर्ग्रन्थसंघ को कोई कठिनाई नहीं हुई, जब कि उत्तर के निर्ग्रन्थसंघ में कुछ पार्श्वापत्यों के प्रभाव से और कुछ अतिशीतल जलवायु के कारण यह अचेलता अक्षुण्ण नहीं रह सकी और एक वस्त्र रखा जाने लगा।''

३.२. महावीर-प्रणीत जिनकल्प और स्थविरकल्प दोनों सर्वथा अचेल

अचेलकधर्म के प्रणेता होने के कारण तीर्थंकर महावीर द्वारा उपदिष्ट जिनकल्प और स्थविरकल्प दोनों सर्वथा अचेल हैं। उनका स्वरूप दिगम्बरग्रन्थों में वर्णित है। वामदेवकृत **भावसंग्रह** में जिनकल्पी मुनियों के स्वरूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है—''अब जिनकल्प नामक चारित्र का वर्णन किया जाता है, जिससे भव्यों को निश्चितरूप से मुक्तिवधू का संग प्राप्त होता है। जिनकल्पिक मुनि शुद्धसम्यग्दर्शनयुक्त, इन्द्रियकषायों के विजेता और एकादशांगश्रुत को एक अक्षर के समान जाननेवाले होते हैं। पैरों में काँटा लगने और आँखों में धूल जाने पर स्वयं अलग नहीं करते, दूसरों के अलग करने पर मौन रहते हैं। वे वज्रवृषभनाराच-संहननधारी होते हैं, सतत मौन धारण करते हैं और गुफा, पर्वत, वन या नदीतट पर रहते हैं। वर्षाकाल में मार्ग के जीवों से व्याप्त होने पर छह मास तक निःस्पृह और निराहार कायोत्सर्ग में स्थित रहते हैं। मोक्ष-साधन में उनकी निष्ठा होती है, रत्नत्रय से विभूषित होकर निःसंग धर्मध्यान और शुक्लध्यान में लीन रहते हैं। ये मुनि 'जिन' की तरह अनियतवासी होकर विचरते हैं, इस कारण आचार्यों ने इन्हें जिनकल्पिक कहा है।'' (श्लोक २६३-२६९)।

स्थविरकल्प के स्वरूप का वर्णन करते हुए प्राकृत-भावसंग्रहकार देवसेन कहते हैं—''पाँचों प्रकार के वस्त्रों का त्याग, आकिंचन्य, प्रतिलेखन, पंचमहाव्रत-पालन, नवधाभक्तिपूर्वक पाणितल में प्राप्त आहार को दिन में एक बार खड़े होकर ग्रहण करना, भिक्षा की याचना न करना, बाह्याभ्यन्तर तप का अभ्यास करना, षडावश्यक का पालन, भूमिशयन, केशलोच, पंचेन्द्रियरोध और जिनवरसदृश प्रतिरूप ग्रहण करना स्थविरकल्प के लक्षण हैं। हीनसंहनन और दुःषमकाल के प्रभाव से आजकल स्थविरकल्प-स्थित साधु पुर, नगर और ग्रामवासी हो गये हैं। वे वह उपकरण भी ग्रहण करते हैं, जिससे चारित्र की हानि न हो। योग्य होने पर पुस्तकदान भी स्वीकार करते हैं। समुदाय में विहार, यथाशक्ति धर्मप्रभावना, भव्यजीवों को धर्मोपदेश, शिष्यों का पालन और ग्रहण स्थविरकल्पिकों का आचार है। यद्यपि संहनन तुच्छ, काल दुःषम और मन चपल है, तथापि धीरपुरुष उत्साहपूर्वक महाव्रतों का पालन करते हैं।'' (श्र.भ.म./पृ.२८८-२८९ से उद्धृत)।

३.३. श्वेताम्बरमान्य जिनकल्प और स्थविरकल्प दोनों सचेल

किन्तु श्वेताम्बरग्रन्थों में जिनकल्पिक और स्थविरकल्पिक मुनियों के जो लिंग प्ररूपित किये गये हैं, वे दोनों सचेल हैं। सर्वोच्च जिनकल्पिक को भी कम से कम मुखवस्त्रिका और ऊननिर्मित रजोहरण धारण करना अनिवार्य बतलाया गया है। यह निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध है—

३.३.१. **जिनकल्पी भी सचेल और अनग्न**—हेमचन्द्रसूरि ने विशेषावश्यक-भाष्य की "**जिणकप्पियादओ पुण सोवहओ सव्वकालमेगंतो**" (२५८४) इस गाथा की उत्थानिका में कहा है कि जिनकल्पिक सदा सचेल होते हैं—"**जिनकल्पिकादयस्तु सदैव सचेलकाः।**" जिनकल्पिकों और स्थविरकल्पिकों के सचेलत्व पर श्वेताम्बर मुनि उपाध्याय धर्मसागर जी (१५७२ ई०) ने **प्रवचनपरीक्षा** नामक ग्रन्थ में विस्तार से प्रकाश डाला है। वह इस प्रकार है—

"ये तु जिनकल्पिकास्ते द्विविधा—लब्धिमन्तोऽलब्धिमन्तश्च। तत्र लब्धिरपि कर्मणां क्षयोपशमवैचित्र्यवशात् केषाञ्चित् पात्रविषया केषाञ्चिद्वस्त्रविषया केषञ्चिदुभयविषयाऽपि। तत्रापि येषां पात्रविषया तैः पाणिपात्रतयैव भवितव्यं, पाणिनैवाशनादावाह्रीयमाणे न कापि संयमविराधना, नापि प्रवचनजुगुप्सा, प्रत्युत प्रवचनप्रभावना, सा च लब्धिरेवं

माइज्ज घडसहस्सा अहवा मायंति सागरा सव्वे।
एआरिसलद्धीओ सो पाणिपडिग्गही होइ॥ त्ति

ते च वस्त्राणि बिभ्रति, तद्विषयकलब्ध्यभावात्। तत्रापि सामर्थ्यानुसारेण कश्चिदेकं कल्पं कश्चिद् द्वौ कश्चित्त्रीन् कल्पान् बिभर्ति। तेषां च क्रमेण रजोहरण-मुखवास्त्रिकोपेतानि त्रीणि चत्वारि पञ्च वोपकरणानि भवन्ति। एवं वस्त्रानावृता अपि ये नग्ना न दृश्यन्ते ते वस्त्रविषयकलब्धिमन्तः, वस्त्रजन्यकार्यविषयकलब्धिभाज इत्यर्थः। तेषां वस्त्रकार्यस्य लब्ध्यैव कृतत्वाद्वस्त्राभावः। न हि कश्चिदप्यादित्योद्योतिते वस्तुनि प्रदीपमपेक्षते, प्रदीप-कार्यस्य सूर्येणैव कृतत्वात्। तत्रापि शीतादिसहन-सामर्थ्यमपेक्षणीयं, पात्राणि च बिभ्रति तद्विषयकलब्ध्यभावात्। तेषां चोपकरणानि नवैव भवन्ति, नियतसप्तसंख्याकेषु पात्रनियो-गोपकरणेषु विकल्पाभावात्। ये तु वस्त्रपात्रोभयविषयकलब्धिमन्तो न ते पात्रं न वा वस्त्राणि बिभ्रति, द्वयोरपि प्रयोजनाभावाद् उभयजन्यस्यापि कार्यस्य लब्ध्यैव कृतत्वात्। तेषामुपकरणे रजोहरण-मुखवस्त्रिकालक्षणे भवतः। ये त्वलब्धिभाजस्तैरवश्यं वस्त्रपात्राद्युपकरणं धर्त्तव्यमेव, यदुक्तं—'**निरतिशयिना वस्त्रपात्रादिकमन्तरेण चरणस्य प्रसाधयितुमशक्यत्वाद्**' इति श्रीधर्मसंग्रहणीवृत्तौ २२६ पत्रात्मके पुस्तके १९२ पत्रे, तेषां च मध्ये सामर्थ्यानुसारेण कश्चिदेकं कल्पं धरति तस्य दशोपकरणानि। यस्तु द्वौ कल्पौ बिभर्ति तस्यैकादश। यस्य कल्पत्रयं तस्य द्वादशोपकरणानि भवन्ति, यदुक्तं—

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पत्त-पत्ताबंधो पायट्ठवणं च पायकेसरिआ।
पडलाइं रयत्ताणं गुच्छगओ पायनिज्जोगो॥

'पायनिज्जोगु' त्ति पात्रपरिकरः।

तिन्नेव य पच्छागा रयहरणं चेव होइ मुहपत्ती।
एसो दुवालसविहो उवही जिणकप्पिआणं तु॥

'पच्छाग' त्ति प्रच्छादकाः कल्पाः, द्वौ सौत्रौ एकस्त्वौर्णिक इति त्रयः कल्पाः। एवमुपकरणभेदैरष्टौ विकल्पा जिनकल्पे भवन्ति। यदुक्तं—

दुग तिग चउक्क पणगं नव दस इक्कारसेव बारसगं।
एए अट्ठ विगप्पा जिणकप्पे हुंति उवहिस्स॥

पुत्तीरयहरणेहिं दुविहो तिविहो अ इक्ककप्पजुओ।
चउहा कप्पदुगेणं कप्पतिगेणं तु पंचविहो॥

दुविहो तिविहो चउहा पंचविहोविहु सपायनिज्जोगो।
जायइ नवहा दसहा इक्कारसहा दुवालसहा॥

इति (पञ्चवस्तु०/७७२/३/४)।

एवंविधो हि जिनकल्पः सम्प्रति व्युच्छिन्नः। यत्कालोत्पन्नः सिद्ध्यति तत्कालोत्पन्न एव जिनकल्पं प्रतिपद्यन्ते, नान्यः, सम्प्रति तथास्वरूपाभावात्। सम्प्रत्येकः स्थविरकल्प एव। तद्वान् पुनर्जघन्यतोऽपि चतुर्दशोपकरणवानेव। तानि चोपकरणानि द्वादश जिनकल्पोक्तान्येव, मात्रकं चोलपट्टकश्चेति चतुर्दश। यदुक्तं—

एए चेव दुवालस मत्तग अइदेग चोलपट्टो उ।
एसो चउदसरूवो उवही पुण थेरकप्पंमि॥ इति (पं० ७७९)।

तत्र मात्रकं सर्वयतिसाधरणवस्तुग्रहणयोग्यः पात्रविशेषः। स्थविरकल्पे उत्कृष्टपदिकोपकरणचिन्तायां तु शीताद्यसहिष्णून् तपस्विबालग्लानादीन् प्रतीत्य यावत् संयमनिर्वाहहेतुर्द्विगुणोऽप्यधिको वा उपधिः श्रीनिशीथचूर्ण्याद्यागमोक्तोऽवगन्तव्यः। एवमुक्तप्रकारेण जिनकल्पिकाः स्थविरकल्पिकाश्चेत्युभयेऽपि प्रागुक्तगुणहेतवे वस्त्राणि बिभ्रति। अन्यथा प्रवचनखिंसादयः स्त्रीजनस्यात्मनश्च मोहोदयादयो बहवो दोषाः स्युः।" (प्रव.परी./वृत्ति./१/२/३१/पृ.९३-९५)।

अनुवाद

"जिनकल्पिक साधु दो प्रकार के होते हैं : लब्धिमान् और अलब्धिमान्। लब्धि भी कर्मों की विचित्रता के अधीन होती है, अतः किसी को केवल पात्रविषयक लब्धि

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्राप्त होती है, किसी को वस्त्रविषयक और किसी को उभयविषयक। पात्रविषयक लब्धिवाले पाणिपात्री होते हैं। पाणिपात्र में ही आहारादि लाने पर उनसे किसी भी प्रकार की संयमविराधना नहीं होती, न ही जिनशासन का तिरस्कार होता है, प्रत्युत प्रभावना होती है। **उस लब्धि का स्वरूप ऐसा है कि जिसे वह प्राप्त होती है, उसकी पाणि में हजारों घड़े जल अथवा समस्त सागर समा जाते हैं।** पात्रलब्धिवाले वस्त्रधारण करते हैं, क्योंकि उनके पास वस्त्रलब्धि नहीं होती । वस्त्रों में अपने सामर्थ्यानुसार कोई एक कल्प (चादर), कोई दो कल्प और कोई तीन कल्प (दो चादर और एक कम्बल) रखता है, जिससे किसी के पास रजोहरण और मुखवस्त्रिका सहित तीन, किसी के पास चार और किसी के पास पाँच उपकरण हो जाते हैं। इसीप्रकार जो वस्त्र से आच्छादित न होने पर भी नग्न नहीं दिखते, वे वस्त्रलब्धियुक्त होते हैं, अर्थात् वस्त्र का कार्य करनेवाली लब्धि उनके पास होती है। वस्त्र का कार्य लब्धि से ही सम्पन्न हो जाने के कारण उन्हें वस्त्र की आवश्यकता नहीं होती, जैसे सूर्य से वस्तुएँ दिखाई देने पर किसी को दीपक की जरूरत नहीं होती। वस्त्रलब्धिवाले में शीतादि के सहन का सामर्थ्य भी आ जाता है, किन्तु उसे पात्र धारण करना पड़ता है, क्योंकि वह पात्रविषयकलब्धि से रहित होता है। वस्त्रलब्धियुक्त, किन्तु पात्रलब्धिरहित साधुओं के पास नौ ही उपकरण होते हैं, क्योंकि सात प्रकार का पात्र-परिकर उनमें से सभी के लिए अनिवार्य है। किन्तु जिनके पास वस्त्र और पात्र दोनों से सम्बन्धित लब्धियाँ होती हैं, वे न पात्र ग्रहण करते हैं, न वस्त्र, क्योंकि उनका दोनों से प्रयोजन नहीं होता। उनके वस्त्र और पात्र दोनों से होने वाले कार्य लब्धि से ही सिद्ध हो जाते हैं। उनके उपकरण दो ही होते हैं : रजोहरण और मुखवस्त्रिका।

"जो लब्धिमान् नहीं होते, उन्हें वस्त्रपात्रादि उपकरण धारण करना अनिवार्य है, जैसा कि २२६ पृष्ठोंवाली '**धर्मसंग्रहणीवृत्ति**' में १९२वें पृष्ठ पर कहा गया है—"**अतिशय-रहित साधु के लिए वस्त्रपात्रादि के बिना चारित्र की साधना संभव नहीं है।**" उनमें से सामर्थ्यानुसार कोई एक चादर रखता है, तो उसके दस उपकरण हो जाते हैं। जो दो चादर रखता है उसके ग्यारह उपकरण होते हैं और तीन चादर (दो सूती और एक ऊनी) रखनेवाला बारह उपकरणों का धारक होता है। ऐसा ही निम्नलिखित गाथाओं में कहा गया है—

"पात्र, पात्रबन्ध, पात्रस्थापन, पात्रकेसरिका (पात्रप्रमार्जनिका) पटल, रजस्त्राण और गुच्छक, यह पात्रनिर्योग है।" पात्रनिर्योग का अर्थ है पात्रपरिकर।

"इनके अतिरिक तीन प्रच्छादक (कल्प), रजोहरण और मुखपट्टिका इनको मिलाकर कुल बारह उपकरण जिनकल्पिकों के होते हैं।"

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"प्रच्छादक का अर्थ है कल्प, दो सूती और एक ऊनी, इस तरह उनकी संख्या तीन है। इस प्रकार उपकरणभेद से जिनकल्पी साधुओं के आठ भेद होते हैं, जैसा कि कहा गया है—

"जिनकल्प में उपधि के आठ विकल्प होते हैं : दो, तीन, चार, पाँच, नौ, दस, ग्यारह और बारह। किसी जिनकल्पी के पास मुखपट्टिका और रजोहरण, केवल ये दो उपकरण होते हैं, किसी के पास इनके अतिरिक्त एक कल्प होने पर तीन उपकरण होते हैं। किसी के पास उनके साथ दो कल्प होने पर चार उपकरण हो जाते हैं। जिसके पास मुखपट्टिका और रजोहरण के अतिरिक्त तीन कल्प होते हैं, वह पाँच उपकरणोंवाला होता है। इन दो, तीन, चार और पाँच उपकरणवालों के साथ सात-सात प्रकार का पात्रनिर्योग होने पर जिनकल्पी साधु क्रमशः नौ, दस, ग्यारह और बारह उपकरणवाले हो जाते हैं। इस तरह उपकरणभेद से जिनकल्पी साधु आठ प्रकार के होते हैं, ऐसा **पञ्चवस्तु** में कहा गया है।

"इस प्रकार का जिनकल्प वर्तमान में व्युच्छिन्न हो गया है। जिस काल में उत्पन्न होने पर सिद्धि (मुक्ति) प्राप्त होती है, उसी काल में उत्पन्न होनेवाला जिनकल्प धारण कर सकता है, दूसरा नहीं। वर्तमानकाल ऐसा नहीं है, इसलिए इसमें जिनकल्प धारण करना संभव नहीं है। इस समय केवल स्थविरकल्प ही प्रवर्तमान है। उसे धारण करनेवाले के कम से कम चौदह उपकरण होते हैं। उनमें बारह तो वे ही हैं, जो जिनकल्पिकों के हैं। मात्रक (एक प्रकार का पात्र) और चोलपट्टक ये दो उनके अतिरिक्त उपकरण हैं। यही बात 'पञ्चवस्तु' की '**एए चेव**' इत्यादि गाथा में कही गई है।

"मात्रक एक ऐसा पात्रविशेष है, जिसमें सभी प्रकार के यतियों के योग्य वस्तु लायी जा सकती है। स्थविरकल्प में शीतादि न सह सकनेवाले बाल, वृद्ध, ग्लान आदि साधुओं के संयमनिर्वाह हेतु दुगुने अथवा उससे भी अधिक उपकरणों की अनुमति निशीथचूर्णि आदि आगमों में दी गई है। इस प्रकार जिनकल्पिक और स्थविरकल्पिक दोनों पूर्वोक्त गुणों (लोकमर्यादा का पालन, लज्जा तथा ब्रह्मचर्य की रक्षा, शीतातपदंश-मशकजन्य पीड़ाओं के निरोध द्वारा सद्ध्यान की प्राप्ति, जैनसंघ की निन्दा का परिहार, स्त्रियों में कामविकारोत्पत्ति का निवारण एवं जीवहिंसा की निवृत्ति)[६२] की सिद्धि के

---

६२. लोआणुवत्तिधम्मो लज्जा तह बंभचेररक्खा य।
सीआतवदंस-मसगपीडारहिअस्स सज्झाणं॥ ३०॥
पवयणखिंसा परवग्गमोहुदयवारणं च वत्थेहिं।
तसथावराणजयणा पत्तेहिं तहेव विण्णेया॥ ३१॥ प्रवचनपरीक्षा/१/२/पृ.९१-९२।

लिए वस्त्र धारण करते हैं। अन्यथा जैनसंघ की निन्दा, स्त्रियों तथा स्वयं में कामविकार की उत्पत्ति आदि अनेक दोष उत्पन्न हो सकते हैं।''

विशेषावश्यकभाष्य के वृत्तिकार श्री हेमचन्द्रसूरि (११६४ ई०) ने भी जिनकल्पियों के लब्धिमान् और अलब्धिमान् दो भेद बतलाये हैं और कहा है कि यदि पात्रलब्धिमान् जिनकल्पिक भी पात्र रखता है, तो वह अलब्धिमान् रुग्ण-वृद्ध जिनकल्पिक को पात्र में आहार लाकर दे सकता है। इससे दयाधर्म का पालन होता है और परस्पर समता एवं स्वास्थ्य भी तुल्य रहता है—

''**एवं च पात्रे परिग्रहे सति लब्धिमतामलब्धिमतां च शक्तानामशक्तानां च, वास्त-व्यानां प्राघूर्णकानां च सर्वेषामपि साधूनां परस्परं समता स्वास्थ्यं च तुल्यता भवति। पात्रे हि सति लब्धिमान् भक्तपानादिकं समानीयालब्धिमते ददाति।**'' (हेम. वृत्ति/विशे. भा./ २५७९)।

इस प्रकार श्वेताम्बरसाहित्य में जिन साधुओं को जिनकल्पिक कहा गया है, वे भी सचेल और अनग्न ही होते थे। जो जिनकल्पिक केवल मुखवस्त्रिका और ऊननिर्मित रजोहरण धारण करते थे, उनकी नग्नता वस्त्रलब्धि से आच्छादित हो जाती थी, अतः वे मुखवस्त्रिका और रजोहरण रखने के कारण सचेल भी होते थे और अनग्न भी। तथा जिन जिनकल्पिकों के पास वस्त्रलब्धि नहीं होती थी, वे एक, दो या तीन कल्प (चादर) रखते थे। उनमें से एक को भी कन्धे पर लटका लेने या ओढ़ लेने से गुह्यांग ढँक जाता था। इस प्रकार वे भी सचेल और अनग्न रहते थे। यह कल्पना नहीं की जा सकती कि वे चादर ओढ़ते हुए या कन्धे पर लटकाकार रखते हुए भी अपने गुह्यांग को खुला रखते होंगे, क्योंकि इससे यह सिद्ध होगा कि वे अपरिग्रह को धर्म नहीं मानते थे, अपितु गुह्यांग के प्रदर्शन को धर्म मानते थे, जो धर्म तो किसी भी प्रकार हो ही नहीं सकता था, एक अश्लील कृत्य ही हो सकता था। प्रवचनपरीक्षाकार ने दिगम्बरों की नग्नता को लक्ष्य करके इसे भण्डिकचेष्टा कहा है और वेश्याओं के ही समक्ष करना उचित बतलाया है, कुलस्त्रियों के समक्ष नहीं।[६३]

दिगम्बरमुनि तो शरीर पर एक धागा भी रखने को परिग्रह मानते हैं, इसलिए अपरिग्रहमहाव्रत के पालनार्थ वे सर्वथा अचेल रहते हैं। इस कारण उनका गुह्यांग अनभिप्रायपूर्वक खुला रहता है, किन्तु जो मुनि चादर रखते हुए भी उसे खुला रखे,

६३. ''किं च नग्नस्य ते वेश्यादिजनोपान्त एवोपवेशनादिकं युक्तं, भण्डिकचेष्टायाः तत्रैव युक्तत्वात् न पुनः कुलस्त्रीमध्येऽवाच्यं दर्शयतस्तवावस्थानं युक्तं लोके तव तासां चातिनिन्दनीयत्वात्।'' प्रवचनपरीक्षा/वृत्ति १/२/३१/पृ.९५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उसके कृत्य को तो साभिप्राय ही मानना होगा। और तब प्रवचनपरीक्षाकार का भण्डिकचेष्टा का आरोप उस पर शतशः चरितार्थ होगा।

अतः यह कल्पना नहीं की जा सकती कि जिनकल्पी साधु कल्पधारण करते हुए भी गुह्यांग को खुला रखते होंगे। वे निश्चय ही कल्प को शरीर पर इस प्रकार डालते होंगे, जिससे गुह्यांग छिप जाता होगा। **प्रवचनपरीक्षाकार ने भी कहा है कि जिनकल्पियों के कल्प रखने का उद्देश्य शीतादि निवारण के अतिरिक्त नग्नता को छिपाना भी है,** जिससे जिनशासन का उपहास एवं स्त्रियों में कामविकार की उत्पत्ति न हो सके। यह उनके पूर्वोक्त निम्नलिखित वचनों से प्रकट है—

"**एवमुक्तप्रकारेण जिनकल्पिकाः स्थविरकल्पिकाश्चेत्युभयेऽपि प्रागुक्तगुण-हेतवे वस्त्राणि बिभ्रति। अन्यथा प्रवचनखिंसादयः स्त्रीजनस्यात्मनश्च मोहोदयादयो बहवो दोषाः स्युः।**" (प्रव.परी./वृत्ति/१/२/३१/पृ.९५)।

प्रवचनपरीक्षाकार ने तो दिगम्बरों पर आक्षेप करते हुए यहाँ तक कहा है कि भले ही शीतादिपरीषह सहन करने के लिए वस्त्र त्याग दिया जाय, किन्तु अत्यन्त अवाच्य (नाम न लेने योग्य) अवयव पुरुषचिह्न को छिपाने के लिए तो वस्त्र-धारण करना ही चाहिए—

"**अथ शीतादिसहनार्थं वस्त्रं परिह्रियते इति चेत् परिह्रियतां नाम तदर्थं, परमा-वाच्यावयवगोपननिमित्तं तु धर्त्तव्यमेव।**" (प्रव.परी./वृत्ति/१/२/३१/पृ.९५)

इससे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि जिनकल्पिक साधुओं के कल्प धारण करने का प्रयोजन मुख्यतः गुह्यांग को छिपाना ही था।

इस प्रकार जब जिनकल्पी भी सचेल और अनग्न होते थे, तब यह दावा मिथ्या सिद्ध हो जाता है कि जिनकल्प और स्थविरकल्पवाली निर्ग्रन्थपरम्परा सचेलाचेल थी, वस्तुतः वह केवल सचेल थी।

३.३.२. **श्वेताम्बर-जिनकल्पिकों का नग्न रहना असंभव**—'प्रवचनपरीक्षा' के उपर्युक्त वचनों से सिद्ध है कि श्वेताम्बरमत में नग्नता को अश्लील तथा स्त्रियों में कामविकारजनक माना गया है। इसलिए श्वेताम्बर जिनकल्पिकों का नग्न रहना संभव नहीं था। यही कारण है कि वस्त्रलब्धियुक्त जिनकल्पिकों की नग्नता को वस्त्रलब्धि से आच्छादित माना गया है। तथा जो वस्त्रलब्धिरहित हैं उनके लिए एक से लेकर तीन तक कल्प रखने का विधान किया गया है, ताकि उनकी नग्नता कल्प से आच्छादित रहे। यहाँ तक कि तीर्थंकरों के भी गुह्यांग का प्रकट होना अश्लील एवं कामविकारोत्पादक माना गया है, इसीलिए श्वेताम्बरग्रंथों में यह कल्पना की गयी है कि उनका गुह्यांग

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उनके शुभप्रभामंडल से आच्छादित रहता है। (देखिए, पंचम अध्याय : पुरातत्त्व में दिगम्बरपरम्परा के प्रमाण)।

इस प्रकार श्वेताम्बर जिनकल्पी और स्थविरकल्पी साधुओं में अन्तर मात्र यह माना गया है कि जिनकल्पी ऋद्धिलब्ध-देहावरणधारी या कटिवस्त्ररहित-वस्त्रपात्रधारी होते थे और स्थविरकल्पी कटिवस्त्रसहित-वस्त्रपात्रधारी।

३.३.३. **श्वेताम्बर-जिनकल्पिकों का नग्नत्व औचित्यविहीन**—जिनकल्पिकों का नग्न रहना औचित्यविहीन भी था, क्योंकि जब वस्त्रधारण करने से भी मुक्ति हो सकती है, तब नग्न रहने का क्या औचित्य है? यह तो निष्प्रयोजन कष्ट सहना है। श्वेताम्बरमुनि उपाध्याय धर्मसागर जी ने यह बात स्वयं स्वीकार की है। वे बोटिक शिवभूति के द्वारा स्त्रीमुक्ति का निषेध किये जाने पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं—

''अथ यदा शिवभूतिना नग्नभावोऽभ्युपगतस्तदानीमुत्तरानाम्न्याः स्वभगिन्या वस्त्र-परिधानमनुज्ञातम्। एवं च सति यदि स्त्रीणां मुक्तिं प्ररूपयति तदा सवस्त्र-निर्वस्त्रयोरविशेषापत्त्या स्वकीयनग्नभावस्य केवलं क्लेशतैवापद्येतेति विचिन्त्य स्त्रीणां मुक्तिर्निषिद्धा।'' (प्रव.परी./ वृत्ति/१/२/१८/ पृ.८२)।

अनुवाद—''जिस समय शिवभूति ने नग्नता (दिगम्बरवेश) स्वीकार की, उस समय उसने उत्तरा नाम की अपनी बहिन के लिए वस्त्र पहनने की आज्ञा दी। अब यदि वह स्त्रियों के लिए मुक्ति का प्ररूपण करता है, तो सवस्त्र और निर्वस्त्र दोनों को मुक्ति संभव हो जाने से स्वयं का नग्न रहना केवल क्लेश का ही कारण सिद्ध होगा, ऐसा सोचकर उसने स्त्रियों के लिए मुक्ति का निषेध कर दिया।

इस तरह जिनकल्पिकों के नग्न रहने का औचित्य भी घटित नहीं होता। अतः उनका शरीर लौकिक वस्त्र या अलौकिक वस्त्र से आच्छादित ही बतलाया गया है।

३.३.४. **वस्त्रलब्धिमान् जिनकल्पिक नाममात्र से अचेल**—हेमचन्द्रसूरि ने विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार सभी जिनकल्पिक साधुओं को सचेल बतलाया है। उन्होंने तीर्थंकरों को भी मुखवस्त्रिका और रजोहरण धारण न करते हुए भी[६४] कन्धे पर देवदूष्य वस्त्र डालकर प्रव्रजित होने के कारण सचेल ही कहा है।[६५] किन्तु

६४. ''येन कारणेन तीर्थकृतां वस्त्राद्यनुपयोगः तेन कारणेनार्हन् स्वलिङ्गपरलिङ्गगृहस्थलिङ्गै रहितः स्यात्। तत्र स्वलिङ्गं रजोहरणादि, परलिङ्गमन्यतीर्थिकलिङ्गं पिच्छिकादिकं, गृहस्थलिङ्गं तु प्रतीतमेव।'' प्रवचनपरीक्षा / वृत्ति / १/२/११/पृ.७८।

६५. ''यद्यपि तत्संयमस्यानुपकारि वस्त्रं, तथापि सवस्त्रमेव तीर्थं 'सवस्त्रा एव साधवस्तीर्थे चिरं भविष्यन्ति' इत्यस्यार्थस्योपदेशनं ज्ञापनं तदर्थं गृहीतैकवस्त्राः सर्वेऽपि तीर्थकृतोऽभिनिष्क्रामन्तीति। तस्मिंश्च वस्त्रे च्युते क्वापि पतितेऽचेलका वस्त्ररहितास्ते भवन्त, न पुनः सर्वदा।'' हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५८१-८३।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रवचनपरीक्षाकार ने वस्त्रपात्र-लब्धिमान् जिनकल्पिकों को मुखवस्त्रिका-रजोहरणधारी होते हुए भी मुख्यावृत्त्या अचेल बतलाया है।[६६]

इसका कारण यह है कि वस्त्रलब्धिमान् जिनकल्पी साधुओं की नग्नता अलौकिक वस्त्र से ही आच्छादित रहती थी, अतः उन्हें लौकिक वस्त्र धारण करना आवश्यक नहीं होता था। मात्र इस बहाने उन्हें अचेल या नग्न कहा गया है। किन्तु उनका शरीर यथाजातरूप से अचेल नहीं होता था, अतः वे यथार्थतः नहीं, अपितु नाममात्र से अचेल होते थे। इस प्रकार शब्दछल के द्वारा श्वेताम्बरपरम्परा में अचेल या नग्न साधुवर्ग का अस्तित्व सिद्ध करने की चेष्टा की गई है।

इन तथ्यों से सिद्ध है कि श्वेताम्बरमतोक्त जिनकल्प और स्थविरकल्प दोनों सचेल हैं।

३.४. आचारांगवर्णित अचेलत्व अव्यवहृत

आचारांग में कहा गया है कि यदि शीतादि-परीषह सहन करने की शक्ति हो और लज्जा को भी जीत लिया जाय, तो सर्वथा अचेल रहना चाहिए अर्थात् न कटिवस्त्र धारण करना चाहिए, न कल्प (चादर या कम्बल)। (देखिए, अध्याय ३/प्रकरण १/शीर्षक ६,७)। अचेलत्व का यह स्वरूप दिगम्बर-परम्परा-सम्मत है, जिसे आचारांग में स्वीकृति प्रदान कर भगवान् महावीर की मूल परम्परा सूचित की गयी है, किन्तु श्वेताम्बरसंघ में वह आचरण का अंग कभी नहीं बना। वृत्तिकार शीलाङ्काचार्य ने इसे जिनकल्पिकों का आचारण कहकर व्युच्छिन्न घोषित किया भी है। श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी लिखते हैं—"गणिपिटक के पाँचवें अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) में भगवान् महावीर के प्रमुख शिष्य गणधर गौतमस्वामी के वस्त्र, पात्र, मुखवस्त्रिका आदि धर्मोपकरणों का स्पष्ट उल्लेख विद्यमान है।" (जै.ध.मौ.इ./भा.३/पृ.२०६)।

इसकी पुष्टि 'प्रवचनपरीक्षा' की वृत्ति के निम्नलिखित वाक्य से होती है—

"अर्हतः संयमयोगेषूपकारी वस्त्रपात्रादिर्न भवति। इतरेषां सुधर्मादिसाधूनां भवति। तेन तीर्थकृता सह साम्यं न साधोरिति।" (प्रव.परी./वृत्ति/१/२/१०/पृ.७८)।

---

६६. "इहाचेलक्यं द्विधा मुख्यमौपचारिकं च। तत्र मुख्यं तीर्थकृतां कस्यचिज्जिनकल्पिकस्य च। ---जिनकल्पिकस्य तु कस्यचित्तथाविधलब्धिमतो जिनकल्पप्रतिपत्तेः रजोहरण-मुखवस्त्रिकातिरिक्तोप-करणाभावात् सर्वथा वस्त्राभावादेवाचेलकत्वं मुख्यमेव। उक्तशेषसाधूनां तूपचरितं, यतस्ते परिशुद्धजीर्णादिवस्त्रं मूर्च्छादिराहित्येन परिभुञ्जानाः सत्यपि वस्त्रेऽचेला एव भण्यन्ते।" प्रवचनपरीक्षा/वृत्ति/१/२/६/पृ.७५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"वस्त्रपात्रादि तीर्थंकरों के संयम, योग आदि में उपकारी नहीं होते, किन्तु सुधर्मादि साधुओं के संयमादि में उपकारी होते हैं, अतः तीर्थंकरों के साथ साधुओं की समानता नहीं होती।"

श्वेताम्बर साध्वी श्री संघमित्रा जी के अनुसार "भगवान् महावीर की परम्परा आचार्य सुधर्मा से प्रारंभ होती है। दिगम्बर-परम्परा में यह श्रेय गणधर इन्द्रभूति गौतम को है। सुधर्मा की जैनसंघ को सबसे महत्त्वपूर्ण देन द्वादशाङ्गी की रचना है।" (जैनधर्म के प्रभावक आचार्य/पृ.७)। इससे संकेत मिलता है कि जब गौतम, सुधर्मा जैसे प्रथम-संहननधारी एवं द्वादशांगधर गणधरों ने आचारांगवर्णित अचेलत्व को अंगीकार नहीं किया, तब अन्यों के द्वारा किये जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इससे स्पष्ट है कि श्वेताम्बरपरम्परा में आचारांगवर्णित अचेलत्व का किसी भी मुनि के द्वारा आचरण नहीं किया गया। इसका कारण अत्यन्त तर्कसंगत था। भले ही आचारांग में अचेलत्व को श्रेष्ठ कहा गया हो (देखिए, तृतीय अध्याय), किन्तु जब सचेलत्व को भी मुक्ति का मार्ग बतलाया गया हो, तब अचेलत्व की श्रेष्ठता तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। सरल और सुखकर मार्ग से कार्य की सिद्धि संभव होने पर कठिन और क्लेशकारक मार्ग को अपनाना औचित्यपूर्ण (तर्कसंगत) सिद्ध नहीं होता। वह मानवबुद्धि और स्वभाव के विपरीत है। **अतः आचारांग में भगवान् महावीर के अचेलकधर्म को स्थान देकर भी सचेलत्व का विकल्प साथ में रख देने से वह अनुपयोगी और अग्राह्य बन गया।** इसलिए वह सचेलमुक्ति माननेवालों में कभी व्यवहृत नहीं हुआ। आचारांग में उसे वैकल्पिकरूप से स्थान दिये जाने के दो महत्त्वपूर्ण कारण थे—१.लोक में यह सुप्रसिद्ध था कि तीर्थंकर महावीर ने मोक्ष के लिए अचेलत्व को अंगीकार किया था और मोक्षार्थियों को भी उसी के अंगीकरण का उपदेश दिया था, इसलिए अचेलत्व को अमान्य करना संभव नहीं था, तथा २.अचेलत्व को आगमों में स्थान देने से तीर्थंकर महावीर के अनुयायी होने का प्रमाणपत्र मिलना भी संभव था। **इन दो कारणों से वर्तमान आचारांग आदि आगमों में अचेलत्व के उपदेश को स्थान दिया गया, किन्तु वैकल्पिक सचेलमार्ग का समावेश कर तथा अचेलत्व (जिनकल्प) के विच्छेद की घोषणा कर उसे निष्प्राण एवं निरर्थक बना दिया गया।**

३.५. जिनकल्प के व्युच्छेद की घोषणा

इस प्रकार श्वेताम्बर-सम्मत जिनकल्प प्रथम तो अचेल था ही नहीं, दूसरे, श्वेताम्बरग्रन्थों में कहा गया है कि अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् वह व्युच्छिन्न हो गया, अर्थात् उसकी प्रवृत्ति बन्द हो गई, क्योंकि उसे धारण करने के लिए अनेक अतिशयों (विशेष योग्यताओं) की आवश्यकता होती है, जैसे उत्तमधृति,

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"वस्त्रपात्रादि तीर्थंकरों के संयम, योग आदि में उपकारी नहीं होते, किन्तु सुधर्मादि साधुओं के संयमादि में उपकारी होते हैं, अतः तीर्थंकरों के साथ साधुओं की समानता नहीं होती।"

श्वेताम्बर साध्वी श्री संघमित्रा जी के अनुसार "भगवान् महावीर की परम्परा आचार्य सुधर्मा से प्रारंभ होती है। दिगम्बर-परम्परा में यह श्रेय गणधर इन्द्रभूति गौतम को है। सुधर्मा की जैनसंघ को सबसे महत्त्वपूर्ण देन द्वादशाङ्गी की रचना है।" (जैनधर्म के प्रभावक आचार्य/पृ.७)। इससे संकेत मिलता है कि जब गौतम, सुधर्मा जैसे प्रथम-संहननधारी एवं द्वादशांगधर गणधरों ने आचारांगवर्णित अचेलत्व को अंगीकार नहीं किया, तब अन्यों के द्वारा किये जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इससे स्पष्ट है कि श्वेताम्बरपरम्परा में आचारांगवर्णित अचेलत्व का किसी भी मुनि के द्वारा आचरण नहीं किया गया। इसका कारण अत्यन्त तर्कसंगत था। भले ही आचारांग में अचेलत्व को श्रेष्ठ कहा गया हो (देखिए, तृतीय अध्याय), किन्तु जब सचेलत्व को भी मुक्ति का मार्ग बतलाया गया हो, तब अचेलत्व की श्रेष्ठता तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती। सरल और सुखकर मार्ग से कार्य की सिद्धि संभव होने पर कठिन और क्लेशकारक मार्ग को अपनाना औचित्यपूर्ण (तर्कसंगत) सिद्ध नहीं होता। वह मानवबुद्धि और स्वभाव के विपरीत है। **अतः आचारांग में भगवान् महावीर के अचेलकधर्म को स्थान देकर भी सचेलत्व का विकल्प साथ में रख देने से वह अनुपयोगी और अग्राह्य बन गया।** इसलिए वह सचेलमुक्ति माननेवालों में कभी व्यवहृत नहीं हुआ। आचारांग में उसे वैकल्पिकरूप से स्थान दिये जाने के दो महत्त्वपूर्ण कारण थे—१.लोक में यह सुप्रसिद्ध था कि तीर्थंकर महावीर ने मोक्ष के लिए अचेलत्व को अंगीकार किया था और मोक्षार्थियों को भी उसी के अंगीकरण का उपदेश दिया था, इसलिए अचेलत्व को अमान्य करना संभव नहीं था, तथा २.अचेलत्व को आगमों में स्थान देने से तीर्थंकर महावीर के अनुयायी होने का प्रमाणपत्र मिलना भी संभव था। **इन दो कारणों से वर्तमान आचारांग आदि आगमों में अचेलत्व के उपदेश को स्थान दिया गया, किन्तु वैकल्पिक सचेलमार्ग का समावेश कर तथा अचेलत्व (जिनकल्प) के विच्छेद की घोषणा कर उसे निष्प्राण एवं निरर्थक बना दिया गया।**

३.५. जिनकल्प के व्युच्छेद की घोषणा

इस प्रकार श्वेताम्बर-सम्मत जिनकल्प प्रथम तो अचेल था ही नहीं, दूसरे, श्वेताम्बरग्रन्थों में कहा गया है कि अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् वह व्युच्छिन्न हो गया, अर्थात् उसकी प्रवृत्ति बन्द हो गई, क्योंकि उसे धारण करने के लिए अनेक अतिशयों (विशेष योग्यताओं) की आवश्यकता होती है, जैसे उत्तमधृति,

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रथमसंहनन, पूर्ववेदित्व आदि।[६७] जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद पंचम काल के प्रभाव से मनुष्यों में इन अतिशयों की उत्पत्ति का अभाव हो गया। अतः जिनकल्प धारण करने की योग्यता भी समाप्त हो गई। इसे प्रमाणित करने के लिए जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक-भाष्य में निम्नलिखित गाथा रचकर इसे तीर्थंकरवचन के रूप में निर्दिष्ट किया है—

मण-परमोहि-पुलाए-आहारग-खवग-उवसमे कप्पे।
संजमतिय-केवलि-सिज्झणा य जंबुम्मि बुच्छिण्णा॥ २५९३॥

अनुवाद—"मनःपर्ययज्ञान, परमावधिज्ञान, पुलाकलब्धि, आहारकशरीर, क्षपकश्रेणी, उपशमश्रेणी, जिनकल्प, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात, ये तीन संयम, केवलित्व और सिद्धि (मोक्षप्राप्ति), इन दस गुणों को प्राप्त करने की मनुष्यों की शक्ति जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद व्युच्छिन्न हो गयी।"

यह गाथा जिनभद्रगणी द्वारा ही रची गयी है, इसकी पुष्टि प्रवचनपरीक्षा (१/२/१५/पृ.७९) के निम्नलिखित वचनों से होती है—"**यदुक्तं भाष्यकारेण—मण-परमोहि-पुलाए---।**" (वि० २५९३)। अभिधान राजेन्द्र कोष (भाग ४/पृ.१४९०) में भी ऐसा ही उल्लेख है।

श्री जिनभद्रगणि-क्षमाश्रमण ने बोटिक शिवभूति-सम्मत जिनलिंगरूप अचेल जिनकल्प को भी उक्त गाथा के द्वारा जम्बू-स्वामी के निर्वाण के बाद व्युच्छिन्न घोषित किया है। शिवभूति जिनेन्द्रगृहीत अचेललिंग को ही मोक्षार्थियों के लिए ग्राह्य बतलाता है और स्वयं भी उसे ही ग्रहण करने के लिए कृतसंकल्प होता है, तब गुरु आर्यकृष्ण कहते हैं—

"**तं जइ जिणवयणाओ पवज्जसि, पवज्ज तो स छिन्नो त्ति।**" (विशे.भा./गा. २५९२)= "--- **यदि जिनवचनादर्हदुपदेशाज्जिनकल्पं प्रतिपद्यसे त्वम्, ततस्तर्हि 'स जिनकल्पो व्यवच्छिन्नः' इतीदमपि प्रतिपद्यस्व।**" (वही / हेम.वृत्ति.)।

अनुवाद—"यदि तुम जिनोपदेश का अनुसरण करते हुए जिनकल्प अंगीकार करना चाहते हो, तो जिनोपदेश का ही अनुसरण करते हुए यह भी स्वीकार करो कि उसका व्युच्छेद हो गया है।"

उक्त गाथा से 'आचारांग' और 'स्थानांग' में उपदिष्ट अचेलत्व भी व्युच्छिन्न सिद्ध हो जाता है। उसे टीकाकार शीलांकाचार्य ने जिनकल्प नाम दे भी दिया है। (देखिये, आगे शीर्षक ३.८)।

---

६७. उत्तमधिइ-संघयणा पुव्वविदोऽतिसइणो सयाकालं।
जिणकप्पिया वि कप्पं कयपरिकम्मा पवज्जंति॥ २५९१॥ विशेषावश्यकभाष्य।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इस प्रकार उपर्युक्त गाथा से सूचित होता है कि श्वेताम्बरग्रन्थों में अचेल और सचेल, दोनों प्रकार के जिनकल्पों का उल्लेख मात्र किया गया है, उन्हें अंगीकार करने योग्य नहीं माना गया।

३.६. आर्य महागिरि का जिनकल्प दिगम्बरपरम्परा का जिनलिंग

यद्यपि श्वेताम्बरसाहित्य में ऐसा उल्लेख है कि जिनकल्प के व्युच्छिन्न होने के लगभग १२५ वर्ष बाद आर्य महागिरि ने पुनः जिनकल्प का आचरण आरंभ किया था, तथापि उसकी प्रेरणा श्वेताम्बरपरम्परा से प्राप्त नहीं हो सकती थी, क्योंकि श्वेताम्बरशास्त्रों में जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद से ही अचेलत्व के आचरण का विच्छेद मान लिया गया था और तभी से श्वेताम्बरपरम्परा में कोई अचेललिंगधारी मुनि नहीं हुआ। एकमात्र दिगम्बरपरम्परा में अचेललिंगधारी मुनियों का अस्तित्व था, अतः उससे ही आर्य महागिरि को अचेलकधर्म के अंगीकार की प्रेरणा मिल सकती थी। तात्पर्य यह कि आर्य महागिरि ने दिगम्बरपरम्परा (मूलसंघ) में आचरित अचेलत्व को ही अंगीकृत किया था, इसीलिए श्वेताम्बराचार्यों ने उसे जिनकल्प न कहकर जिनकल्पतुल्य-वृत्ति या जिनकल्पाभास कहा है।[६८] इसे श्वेताम्बर-परम्परा में मान्यता प्राप्त नहीं हुई।

इस पर प्रकाश डालते हुए मुनि कल्याणविजय जी लिखते हैं—"आचार्य स्थूलभद्र के शिष्यों में से सबसे बड़े आर्य महागिरि ने पिछले समय में अपना साधुगण आर्य सुहस्ती को सौंप दिया और आप वस्त्रपात्र का त्याग कर जिनकल्पिक साधुओं का सा आचार पालने लगे। यद्यपि वे स्वयं जिनकल्पिक होने का दावा नहीं करते थे, तथापि उनका झुकाव वस्तुतः जिनकल्प की ही तरफ था।

"उस समय के सब से बड़े श्रुतधर होने के कारण आर्य महागिरि के इस आचरण का किसी ने विरोध नहीं किया, बल्कि 'जिनकल्प की तुलना करनेवाले'

---

६८. क—महागिरिर्निजं गच्छमन्यदादात्सुहस्तिने।
विहर्तुं जिनकल्पेन त्वेकोऽभून्मनसा स्वयम्॥ ११/३॥
व्युच्छेदाज्जिनकल्पस्य गच्छनिश्रास्थितोऽपि हि।
जिनकल्पार्हया वृत्त्या विजहार महागिरिः॥ ११/४॥ परिशिष्टपर्व।
ख—गुरुगच्छधुराधारणधोरेया धरियलद्धिणो धारी।
चिरकाले वोलीणे महागिरि चिंतए ताण॥ २॥
गुरुतरनिज्जरकारी न संपयं जइ वि अत्थि जिणकप्पो।
मह तह वि तदब्भासो पणासए पुव्वपावाइं॥ ३॥
उपदेशमाला / विशेषवृत्ति / पत्र ३६९।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कहकर उनके सतीर्थ्य आर्य सुहस्ती जैसे युगप्रधान ने उनकी प्रशंसा की, पर आगे जाते यह प्रशंसा महँगी पड़ी। आर्य महागिरि तो वीर निर्वाण संवत् २६१ में स्वर्गवासी हो गये, पर उन्होंने जो जिनकल्प का अनुकरण किया था, उसकी प्रवृत्ति बंद नहीं हुई। उनके कतिपय शिष्यों ने भी उनका अनुसरण किया। परिणामस्वरूप आर्य महागिरि और सुहस्ती सूरि के शिष्यगण में अन्तर और मनमुटाव बढ़ने लगा और अन्त में खुल्लमखुल्ला नग्नचर्या और करपात्रवृत्ति का विरोध होने लगा। महागिरि की परम्परावाले, आचाराङ्ग के अचेलकत्व-प्रतिपादक उस उल्लेख से अपनी प्रवृत्ति का समर्थन करते थे, तब विरोधपक्षवाले उस उल्लेख का अर्थ जिनकल्पिकों का आचार होना बताते थे और स्थविरों के लिये वैसा करना निषिद्ध समझते थे। वे कहते थे कि 'बिलकुल वस्त्र न रखना और हाथ में भोजन करना जिनकल्पिकों का आचार है, स्थविरकल्पिकों को उसकी तुलना भी नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जब इस समय उत्तम संहनन न होने से जिनकल्प पाला ही नहीं जाता, तो उसका स्वाँग करने से क्या लाभ?' इस प्रकार दोनों की तना-तनी बढ़ती जाती थी। सम्भवतः आर्य महागिरि के शिष्य रोहगुप्त और प्रशिष्य आर्य गंग भी बाद में जिनकल्पिक पक्ष में मिल गये थे, जो कि तीन राशियों के और दो क्रियाओं के अनुभव की प्ररूपणा करने के अपराध में संघ से बहिष्कृत किये गये थे। यद्यपि रोहगुप्त, गांगेय वगैरह के मिल जाने के कारण वह पक्ष कुछ समय के लिए विशेष आग्रही बन गया था, पर अन्त में वह निर्बल हो गया। आर्य महागिरि के शिष्य-प्रशिष्यों के स्वर्गवास के बाद दो तीन पीढ़ी तक चल कर वह नामशेष रह गया।

"इस प्रकार आचाराङ्ग के एक उल्लेखरूप बीज से सचेलकता-अचेलकता के मतभेद का अंकुर उत्पन्न हुआ और कुछ समय के बाद मुरझा गया। यद्यपि इस तनातनी का असर स्थायी नहीं रहा, तथापि इतना जरूर हुआ कि पिछले आचार्यों के मन में आर्य महागिरि के शिष्यों के संबंध में वह श्रद्धा नहीं रही, जो वैसे श्रुतधरों के ऊपर रहनी चाहिये थी। यही कारण है कि वालभी युगप्रधान पट्टावली में आज हम महागिरि के शिष्य बलिस्सह और स्वाति जैसे बहुश्रुतों का नाम नहीं पाते।" (श्र.भ.म./ पृ. २८९-२९१)।

आर्य महागिरि द्वारा प्रारंभ की गई यह जिनकल्पतुल्य नग्नपरम्परा आर्यरक्षित के समय (ई० पू० ५ से ई० सन् ५७) से बहुत पहले ही बन्द हो चुकी थी, जैसा कि मुनि कल्याणविजय जी ने लिखा है—

"आर्यरक्षित के स्वर्गवास के बाद धीरे-धीरे साधुओं का निवास बस्तियों में होने लगा और इसके साथ ही नग्नता का भी अन्त होता गया। पहले बस्ती में जाते

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

समय बहुधा जिस कटिबन्ध का उपयोग होता था, वह बस्ती में बसने के बाद निरन्तर होने लगा। धीरे-धीरे कटि-वस्त्र का भी आकार-प्रकार बदलता गया। पहले मात्र शरीर का अगला गुह्य अंग ही ढँकने का विशेष ख्याल रहता था, पर बाद में सम्पूर्ण नग्नता ढाँक लेने की जरूरत समझी गयी और उसके लिये वस्त्र का आकार-प्रकार भी कुछ बदलना पड़ा। फलतः उसका नाम 'कटिबन्ध' मिटकर चोलपट्टक (चुल्लपट्ट-छोटा वस्त्र) पड़ा। इस प्रकार स्थविरकल्पियों में जो पहले ऐच्छिक नग्नता का प्रचार था, उसका धीरे-धीरे अन्त हो गया। आर्य महागिरि के समय से जिनकल्प की तुलना के नाम से कतिपय साधुओं ने जो नग्न रहने की परम्परा चालू की थी, वह उस समय के बहुत पहले ही बंद हो चुकी थी।'' (श्र.भ.म./ पृ.२९२)।

मुनि श्री कल्याणविजय जी ने कहा है कि आर्य महागिरि के शिष्य अपने द्वारा अंगीकृत अचेलत्व का समर्थन आचारांग के अचेलत्व-प्रतिपादक उल्लेखों से करते थे। उनका यह कथन उचित प्रतीत होता है, क्योंकि आचारांग में भगवान् महावीर-प्रणीत अचेलत्व का ही उल्लेख है, जिसका आचरण श्वेताम्बरपरम्परा ने तो असंभव मानकर त्याग दिया था, किन्तु दिगम्बरपरम्परा में प्रवर्तमान था। अतः आर्य महागिरि को उसके आचरण की प्रत्यक्ष प्रेरणा दिगम्बर साधुओं से ही प्राप्त हो सकती थी। इसलिए यह मानना अत्यन्त युक्तिमत् है कि आर्य महागिरि श्वेताम्बरपरम्परा छोड़कर दिगम्बरपरम्परा में आ गये थे। अचेलत्व के अपनाये जाने पर उनका जो विरोध, उपेक्षा और तिरस्कार हुआ, उससे इस बात की पुष्टि होती है।

अतः आर्य महागिरि द्वारा अचेलत्व के अंगीकार किये जाने से यह सिद्ध नहीं होता कि जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् उदित हुए सचेलसंघ में वैकल्पिकरूप से अचेल-आचार प्रचलित था।

३.७. सचेल जिनकल्प कपोलकल्पित

श्वेताम्बरग्रन्थों में जिस सचेल जिनकल्प के विच्छेद की घोषणा की गयी है, वह वस्तुतः था ही नहीं, वह कपोलकल्पित है। यह निम्नलिखित हेतुओं से सिद्ध होता है—

१. भगवान् महावीर ने अचेलकधर्म का उपदेश दिया था, उसमें सचेल जिनकल्प या सचेल स्थविरकल्प के लिए स्थान नहीं हो सकता।

२. श्वेताम्बर-आगम आचारांग एवं स्थानांग में मुनिधर्म के जिनकल्प और स्थविरकल्प भेद स्वीकार नहीं किये गये हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३. वस्त्रलब्धिरहित जिनकल्पिक साधुओं को चादर या कम्बल ओढ़नेवाला बतलाया गया है, जो तत्त्वार्थसूत्र में उपदिष्ट नाग्न्यपरीषहजय एवं शीतादिपरीषहजय के प्रतिकूल है।

४. वस्त्रलब्धिमान् साधुओं के विषय में यह माना गया है कि उनका शरीर वस्त्रलब्धिजनित अलौकिकवस्त्र से आच्छदित हो जाता है, अतः न तो उनकी नग्नता दिखाई देती है, न ही उन्हें शीतादिपरीषह होते हैं। इस तरह वस्त्रलब्धि भी उनके नाग्न्यपरीषहजय एवं शीतादिपरीषहजय में बाधक है।

५. सचेल स्थविरकल्प से मोक्षप्राप्ति मान लिये जाने पर जिनकल्प की मान्यता अयुक्तिमत् सिद्ध होती है।

६. श्वेताम्बराचार्यों ने जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद साधुओं के लिए वस्त्रधारण की अनिवार्यता इसलिए बतलायी है कि पंचमकाल में वज्रवृषभनाराचसंहनन उपलब्ध न होने से शीतादिपरीषहजय संभव नहीं है, न ही लज्जा और जुगुप्सा पर विजय प्राप्त की जा सकती है—"**तद् वस्त्रं निरतिशयेन तथाविधधृतिसंहननादिरहितेन साधुनाऽवश्यं धारणीयम्**" (हेम.वृत्ति./ विशे.भा./ गा.२६०२-३)। किन्तु जिनकल्पी साधुओं को भी इन्हीं कारणों से चादर और कम्बल (कल्प) रखने की अनुमति दी गयी है, जैसा कि प्रवचनपरीक्षाकार ने कहा है—"**एवमुक्तप्रकारेण जिनकल्पिकाः स्थविरकल्पिकाश्चेत्युभयेऽपि प्रागुक्तगुणहेतवे वस्त्राणि बिभ्रति। अन्यथा प्रवचन-खिंसादयः स्त्रीजनस्यात्मनश्च मोहोदयादयो बहवो दोषाः स्युः।**" (प्रव.परी./वृत्ति/१/२/३१/पृ.९५)। इससे सिद्ध है जिनकल्पिक साधु भी स्थविरकल्पिकों के समान वज्रवृषभनाराचसंहननधारी नहीं होते थे। फिर भी उन्हें वज्रवृषभनाराचसंहननधारी बतलाया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि श्वेताम्बरमतोक्त जिनकल्प प्रामाणिक एवं युक्तिमत् नहीं है, अपितु कपोलकल्पित है।

३.८. अचेलत्व की 'जिनकल्प' संज्ञा स्वकल्पित

श्वेताम्बर-आगम आचारांग में भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट और दिगम्बरमत-सम्मत अचेलत्व को स्वीकार किया गया है। उसमें शीत से बचने के लिए कुल तीन वस्त्र ग्राह्य बतलाये गये हैं और शीत के क्रमशः कम होने पर एक-एक वस्त्र त्यागते जाने का उपदेश दिया गया है। एक वस्त्र का त्याग कर देनेवाले साधु को अवमचेल, दो का त्याग कर देनेवाले को एकशाटक और तीनों का त्याग कर नग्न हो जाने वाले साधु को अचेल कहा गया है। यथा—

"**अह पुण एवं जाणिज्जा–उवाइक्कंते खलु हेमंते गिम्हे पडिवन्ने अहापरिजुन्नाइं वत्थाइं परिट्ठविज्जा, अदुवा संतरुत्तरे, अदुवा ओमचेले, अदुवा एगसाडे, अदुवा अचेले।**" (आचारांग/१/७/४/२०९)।

और इस तरह नग्न हो जानेवाले साधु के शरीर को वस्त्रलब्धिजन्य अलौकिक वस्त्र से आच्छादित भी नहीं बतलाया गया है। इससे स्पष्ट है कि आचारांग में स्वीकृत यह अचेलत्व महावीरोपदिष्ट एवं दिगम्बरमत-सम्मत है।

आचारांग के वृत्तिकार आचार्य शीलांक (९-१०वीं शती ई०) ने अचेलत्व को जिनकल्पिक साधु का आचार बतलाया है, जिसका उदाहरण 'अचेल' शब्द की व्याख्या में मिलता है। वे 'अचेल' शब्द की व्याख्या स्थविरकल्पिक और जिनकल्पिक साधुओं के अभिप्राय से करते हैं। स्थविरकल्पिक साधु के अभिप्राय से 'अचेल' शब्द के 'नञ्' अव्यय को अल्पार्थ में ग्रहण कर अचेल शब्द का अर्थ 'अल्पचेल' करते हैं और जिनकल्पिक के अभिप्राय से उक्त अव्यय को निषेधार्थ में लेकर 'वस्त्ररहित' अर्थ प्रतिपादित करते हैं। यथा—

''अल्पार्थे नञ् , यथाऽयं पुमानज्ञः, स्वल्पज्ञान इत्यर्थः। यः साधुर्नास्य चेलं वस्त्रमस्तीत्यचेलः, अल्पचेल इत्यर्थः। --- यदि वा जिनकल्पिकाभिप्रायेणैवैतत्सूत्रं व्याख्येयं, तद्यथा—'जे अचेले' इत्यादि, नास्य चेलं वस्त्रमस्तीत्यचेलः।'' (शीलांकाचार्य-वृत्ति/आचारांग /१/६/३/१८२)।

आचार्य शीलांक का अचेलत्व (नग्नत्व) को जिनकल्पिक साधुओं का आचार बतलाना अर्थात् अचेलत्व को जिनकल्प नाम देना आचारांग के अभिप्राय के विरुद्ध है, क्योंकि आचारांग में कहीं भी श्रमणाचार के जिनकल्पिक और स्थविरकल्पिक भेद नहीं मिलते। न ही उसमें किसी को वस्त्रलब्धिसहित या वस्त्रलब्धिरहित कहा गया है, न ही यह कहा गया है कि अचेलत्व के आचरण में वही समर्थ होता है, जो वज्रवृषभनाराच-संहननधारी हो। जैसा विशेषावश्यकभाष्य में यह कहा गया है कि जो वज्रवृषभनाराचसंहननधारी नहीं होता, वह लज्जा, जुगुप्सा (लोकनिन्दाभय) और परीषहों को जीतने में सदा असमर्थ होता है, अतः उसे वस्त्र अवश्य धारण करना चाहिए (देखिये, पादटिप्पणी ८४), वैसा आचारांग में नहीं कहा गया है। उसमें तो यह कहा गया है कि जो साधु परीषह-सहन कर सकता है, किन्तु लज्जा के कारण वस्त्र त्यागने में असमर्थ है, उसे कटिवस्त्र धारण करना उचित है, किन्तु जो लज्जा, जुगुप्सा तथा परीषहों को सहन कर सकता है, उसे अचेल ही रहना चाहिए। (देखिये, अध्याय ३/प्रकरण १/शीर्षक ६,७)। तात्पर्य यह कि आचारांग में एक ही साधु को शीतादिपरीषहजय में समर्थ, किन्तु लज्जाजय में असमर्थ तथा उसी को कभी शीतादिपरीषह तथा लज्जा दोनों को जीतने में समर्थ बतलाया गया है, इससे सिद्ध है कि यह कथन वज्रवृषभनाराच-संहननधारियों के विषय में नहीं है, अपितु हीनसंहननधारियों के विषय में है, क्योंकि प्रथमसंहननधारी तो लज्जा, जुगुप्सा और परीषह तीनों को जीतने में नियम से समर्थ

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

होते हैं। अभिप्राय यह कि आचारांग में अचेलत्व का उपदेश न जिनकल्पिक साधुओं के लिए है, न स्थविरकल्पिकों के लिए, अपितु वह उत्तमसंहननधारियों के लिए भी है और हीनसंहननधारियों के लिए भी। अतः सिद्ध है कि आचार्य शीलांक ने अचेलत्व को जो जिनकल्प संज्ञा दी है, वह आचारांगोक्त नहीं है, अपितु स्वकल्पित है।

इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अनेक विद्वानों ने अचेलत्व और सचेलत्व के आधार पर किये गये जिनकल्प और स्थविरकल्परूप भेदों को कल्पित माना है। पण्डित कैलाशचन्द्र जी सिद्धान्तशास्त्री हरिषेणकृत भद्रबाहुकथा का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

"उक्त कथा में एक उल्लेखनीय बात यह है कि उसमें जिनकल्प और स्थविरकल्प के भेद को पीछे से कल्पित बतलाया है[६९] और श्वेताम्बरीय आगमिक साहित्य के अवलोकन से भी उसका समर्थन होता है। **आचारांगसूत्र में तो ये दोनों भेद हैं ही नहीं, अन्य भी प्राचीन आगमों में नहीं हैं।** हाँ, 'कल्पसूत्रनिर्युक्ति' में हैं और इसलिए उसे उसी समय की उपज कहा जा सकता है।" (जै.सा.इ./पू.पी./पृ.३८७)।

प्रसिद्ध श्वेताम्बर विद्वान् पं० बेचरदास जी ने आचारांगादि में उक्त कल्पद्वय का उल्लेखाभाव बतलाते हुए लिखा है—"वीरनिर्वाण के बाद का यह समय देश की प्रजा के लिये बड़ा ही भीषण था। मगध देश में, जहाँ वर्धमान का साम्राज्य था, दुर्भिक्ष के बादल छा गये। वीरनिर्वाण को अभी पूरे दो सौ वर्ष भी न बीतने पाये थे कि देश में भयंकर दुर्भिक्ष शुरू हो गया। बड़ी कठिनाइयों का सामना करके देश यथा-तथा उस दुर्भिक्ष को पार कर कुछ ठीक स्थिति में आ रहा था कि इतने ही में वीर निर्वाण की पाँचवीं-छठी शताब्दी में पुनः बारहवर्षीय अकाल-राक्षस ने मगध को अपने विकराल गाल में दबा लिया। यह बड़ा भयंकर अकाल था, इसमें त्यागियों का तप भी डोलायमान हो गया था, आचारों में महान् परिवर्तन हो गया था और अन्न के अभाव से दिन-प्रतिदिन स्मरण-शक्ति नष्ट होने लगी थी। इससे परम्परागत जो कंठस्थ विद्या चली आ रही थी, वह विस्मृत होने लगी थी। इतना ही नहीं, किन्तु उसका विशेष हिस्सा विस्मृत हो भी चुका था। शेष बचे हुए श्रुत को किसी तरह कायम रखने की भावना से दुर्भिक्ष के अन्त में मथुरा में आर्य श्रीस्कंदिलाचार्य ने विद्यमान समस्त श्रुतधरों को एकत्रित किया। उनमें जो मताग्रही, सुखशील और नरम दल के मुनि थे, वे भी आये। परन्तु इसी में मतभेद पड़ा और वह यह कि मुनियों

---

६९. इष्टं न यैर्गुरोर्वाक्यं संसारार्णवतारकम्।
जिन-स्थविरकल्पं च विधाय द्विविधं भुवि॥ ६७॥ भद्रबाहुकथानक / बृहत्कथाकोश।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के आचार के लिये क्या लिखना चाहिए? क्या नग्नता का ही विधान किया जाय या वस्त्रपात्रता का? एक पक्ष कहता था कि नग्नता का ही विधान होना चाहिये, दूसरा पक्ष वस्त्रपात्रता के विधान की बात पर जोर दे रहा था। इस प्रकार की पारस्परिक तकरार होने पर भी दीर्घदर्शी स्कंदिलाचार्य ने और उनके बाद के उद्धारक देवर्द्धिगणी श्रमाश्रमण जी ने सूत्रों में कहीं पर भी केवल नग्नता या मात्र वस्त्रपात्रता का ही उल्लेख नहीं किया, परन्तु दोनों बातों का संघटित न्याय किया है। माथुरीवाचना के मूलनायक पुरुष और वलभीवाचना के नायक पुरुष, इन दोनों महात्माओं का मैं हृदयपूर्वक कोटिशः अभिनन्दन करता हूँ कि इन्होंने उस-उस समय के किसी तरह के वातावरण में न आकर आचारप्रधान आचारांगसूत्र में मुनियों के आचारों की संकलना करते हुए मात्र साधारणतया ही भिक्षु और भिक्षणी के आचार बतलाये हैं। उसमें कहीं पर भी जिनकल्प या स्थविरकल्प एवं श्वेताम्बर या दिगम्बर का नाम तक भी नहीं आने दिया।'' (जैनसाहित्य में विकार/ पृ.४४)।

पं० बेचरदास जी के अन्तिम वाक्यों से प्रकट होता है कि आचारांगसूत्र में भिक्षु-भिक्षुणियों के आचारों की अन्तिम संकलना ई० सन् ४५४-४६६ में श्री देवर्द्धिगणि-क्षमाश्रमण ने वलभी में की थी। उसमें स्थविरकल्प और जिनकल्प का भेद नहीं है। इससे सिद्ध है कि श्वेताम्बर-साहित्य में उक्त दो कल्पों की कल्पना सर्वप्रथम छठी शती ई० में 'कल्पसूत्रनिर्युक्ति' में की गयी है। (जै.सा.इ./ पू.पी./ पृ.३८७ तथा श्र. भ.म./ पृ.२८५)। और जिनकल्प के विच्छेद की कल्पना विशेषावश्यकभाष्यकार (७वीं शती ई०) ने की है।

३.९. जिनकल्प-नामकरण के प्रयोजन

अब इस जिज्ञासा का समाधान आवश्यक है कि कल्पित वस्त्रलब्धि से युक्त अर्थात् अलौकिक वस्त्र से आच्छादित साधु अचेल (नग्न) नहीं होता, किन्तु लौकिक वस्त्र धारण न करने के कारण उसे अचेल कहा गया है और उसके इस अवास्तविक अचेलत्व को जिनकल्प संज्ञा दी गयी है, इसका क्या प्रयोजन था? तथा बोटिक शिवभूति द्वारा समर्थित और धारण किया गया दिगम्बरवेश वास्तविक अचेलत्व है, किन्तु चतुर्थकाल में संभव होनेवाले तपविशेष के अभाव में वह जिनकल्प नहीं कहला सकता, फिर भी जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने उसे जिनकल्प नाम दिया है, इसका भी क्या प्रयोजन था? इसके पीछे निम्नलिखित प्रयोजन थे—

१. श्वेताम्बराचार्यों ने नग्नता के दृष्टिगोचर होने को लोकानुवृत्ति (लज्जारूप लोकधर्म) के विरुद्ध एवं स्त्रियों में कामोदय का हेतु माना है, इसलिए उन्होंने यह

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कल्पना की है कि तीर्थंकरों का भी नग्न शरीर शुभप्रभामण्डल से[७०] आच्छादित रहता है तथा जिनकल्पिक साधुओं की नग्नता वस्त्रलब्धि से[७१] प्राप्त अलौकिकवस्त्र से ढँक जाती है। वस्त्रलब्धि के द्वारा नग्नत्व का आच्छादन हो जाने से लौकिकवस्त्र-परिधान की आवश्यकता नहीं होती। अतः मात्र लौकिक वस्त्र धारण न करने की अपेक्षा वस्त्रलब्धिमान् साधु को अचेल कहा गया है। इस तरह लोकानुवृत्ति आदि की श्वेताम्बरमान्यताओं को अक्षुण्ण रखते हुए **श्वेताम्बर-परम्परा में भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट अचेलधर्म की स्वीकृति द्योतित करना** वस्त्रलब्धिमय जिनकल्प की कल्पना का अर्थात् अवास्तविक अचेलत्व को 'जिनकल्प' संज्ञा देने का प्रयोजन था।

२. दिगम्बरमत में जिनकल्प एक ऐसी उत्कृष्टचर्या का नाम है, जो वज्रवृषभनाराच-संहनन होने पर ही संभव है, किन्तु अचेलत्व के आचरण के लिए उक्त संहनन अनिवार्य नहीं है, अचेलत्व तो **दिगम्बरमतोक्त** हीनसंहननधारी स्थविरकल्पिक साधुओं का भी अनिवार्य धर्म है। श्वेताम्बराचार्यों ने जिनकल्प के साथ प्रथमसंहनन की अनिवार्यता को देखकर अचेलत्व को जिनकल्प नाम दे दिया, जिससे कि अचेलत्व के साथ प्रथमसंहनन की अपरिहार्यता सिद्ध हो और पंचमकाल में उसका आचरण असंभव साबित हो जाय।

३. पंचमकाल में अचेलत्व का आचरण असंभव सिद्ध हो जाने से यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि दिगम्बरपरम्परा द्वारा आचरित अचेलकधर्म तीर्थंकरोपदिष्ट नहीं है, अतः तीर्थंकर के उपदेश के विरुद्ध होने से दिगम्बरमत निह्नवमत (स्वकल्पित मिथ्यामत) है। इस प्रकार **दिगम्बरमत को निह्नवमत सिद्ध करना अचेलत्व को जिन-कल्प नाम देने का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन था।**

४. दिगम्बरमत के निह्नवमत सिद्ध हो जाने से यह भी अपने-आप साबित हो जाता है कि **एकमात्र सचेलधर्म का अनुयायी श्वेताम्बरमत ही तीर्थंकरप्रणीत है। उसे ही भगवान् ने पंचमकाल में भी आचरणीय बतलाया है। अचेलत्व को जिनकल्प नाम देकर श्वेताम्बराचार्य अन्ततः यही सिद्ध करना चाहते थे।**

---

७०. "जिनेन्द्राणां गुह्यप्रदेशो वस्त्रेणेव शुभप्रभामण्डलेनाच्छादितो न चर्मचक्षुषां दृग्गोचरीभवति। --- अन्येषां च स्त्र्यादीनां तद्रूपदर्शनानन्तरं मोहोदयहेतुत्वाभावः ---।" प्रवचनपरीक्षा/ वृति/ १/२/३१/ पृ. ९२।

७१. "एवं वस्त्रानावृता अपि ये नग्ना न दृश्यन्ते ते वस्त्रविषयकलब्धिमन्तः वस्त्रजन्यकार्यविषय-कलब्धिभाज इत्यर्थः। तेषां वस्त्रकार्यस्य लब्ध्यैव कृतत्वाद् वस्त्राभावः---तत्रापि शीतादिसहनसामर्थ्यमपेक्षणीयम्।" वही/ १/२/३१/पृ. ९३-९४।

३.१०. जिनकल्प-नामकरण के प्रयोजन ही विच्छेद-घोषणा के प्रयोजन

अचेलत्व को प्रथमसंहनन से जुड़ा **जिनकल्प** नाम दे देने से ही जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद उसका व्युच्छेद सिद्ध हो जाता है, क्योंकि पंचमकाल में उत्तमसंहननधारी मनुष्य उत्पन्न नहीं होते। अतः अचेलत्व को जिनकल्प नाम देने के जो प्रयोजन ऊपर वर्णित किये गये हैं, वे ही जिनकल्प-विच्छेद की घोषणा के प्रयोजन थे। स्वयं श्वेताम्बर मुनियों एवं विद्वानों ने उन्हें स्वीकार किया है। सुप्रसिद्ध श्वेताम्बरमुनि श्री नगराज जी डी० लिट्० लिखते हैं—

"श्वेताम्बर-आगमों में जिनकल्प तथा स्थविरकल्प के रूप में नग्न और सवस्त्र, दोनों मुनि आचार-विधियों का निरूपण है। फलतः इससे श्वेताम्बर-श्रमण-आचार के साथ-साथ दिगम्बर-श्रमण-आचार को भी पुष्टि मिलती है। दिगम्बर, जिनशास्त्रों को अप्रामाणिक कहें, उन्हीं शास्त्रों से दिगम्बर-आचार का समर्थन हो, यह श्वेताम्बरों को कब स्वीकार होता? यह असम्भाव्य नहीं जान पड़ता कि कहीं इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप तो श्वेताम्बरों ने आर्य जम्बू के पश्चात् जिनकल्प का विच्छेद घोषित न कर दिया हो, जिससे उसका शास्त्रीय समर्थन असामयिक एवं अनुपादेय बन जाये। अन्वेषक और समीक्षक विद्वान् जानते हैं कि धर्म-सम्प्रदाय के इतिहास में ऐसी घटनाएँ अघटनीय नहीं होतीं।" (आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन/ खण्ड २/ पृ. ५५८)।

पण्डित बेचरदासजी ने जिनकल्प-विच्छेद की घोषणा के रहस्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-"इससे यह बात स्पष्ट मालूम हो जाती है कि जम्बूस्वामी के बाद जिनकल्प का लोप हुआ बतलाकर अब से जिनकल्प की आचरणा को बन्द करना और उस प्रकार आचरण करनेवालों का उत्साह या वैराग्य भंग करना, इसके सिवा इस उल्लेख में अन्य कोई उद्देश्य मुझे मालूम नहीं देता।---जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद जो जिनकल्पविच्छेद होने का वज्रलेप किया गया है और उसकी आचरणा करनेवाले को जिनाज्ञा के बाहर समझने की जो स्वार्थी एवं एकतरफी दंभी धमकी का ढिंढोरा पीटा गया है, बस इसी में श्वेताम्बरता और दिगम्बरता के विषवृक्ष की जड़ समाई हुई है। तथा इसके बीजारोपण का समय भी वही है जो जम्बूस्वामी के निर्वाण का समय है।" (जैन साहित्य में विकार/पृ.४२)। --- इस विषय को दिगम्बरों की पट्टावली भी पुष्ट करती है। श्वेताम्बरों और दिगम्बरों की पट्टावली में श्री वर्धमान, सुधर्मा तथा जम्बूस्वामी तक के नाम समान रीति से और एक ही क्रम से उल्लिखित पाये जाते हैं, परन्तु उसके बाद के आनेवाले नामों में सर्वथा भिन्नता प्रतीत होती है और वह भी इतना विशेष भिन्नत्व है कि जम्बूस्वामी के बाद उनमें से एक भी

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

नाम पूरे तौर पर नहीं मिलता। इस प्रकार जम्बूस्वामी के बाद ही ये पट्टावलियाँ जुदी-जुदी गिनी जाने लगीं। यदि इसका कोई कारण हो, तो वह एकमात्र यही है कि जिस समय से सर्वथा जुदे-जुदे पट्टधरों के नामों की योजना प्रारम्भ हुई, उस समय जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद, वर्धमान के साधुओं में भेद पड़ चुका था। वह पड़ा हुआ भेद धीरे-धीरे द्वेष व विरोध के रूप में परिणत होता रहा। उस समय जो स्वयं मुमुक्षु पुरुष थे, वे तो यथाशक्य उच्च त्यागाचरण सेवन करते थे, और जो पहले से ही सुखशीलता के गुलाम बन चुके थे, वे कुछ मर्यादित छूट रखकर पराकाष्ठा के त्याग की भावना रखते थे। अर्थात् जम्बूस्वामी के बाद भी उन मुमुक्षुओं में से कई एक तो भगवान् महावीर के कठिन त्यागमार्ग का ही अनुसरण करते थे और कई एक जिन्होंने परिमित छूट ली थी, वे कदाचित् अथवा निरन्तर एकाध कटिवस्त्र रखते होंगे, पात्र भी रखते होंगे तथा निरन्तर निर्जन वनों में न रहकर कभी बस्तियों में भी रहते होंगे।--- उनमें से एक पक्ष वस्त्रपात्रवाद में ही मुक्ति की प्राप्ति देखता था और दूसरा पक्ष मात्र नग्नता में ही मोक्ष मानता था।'' (जैन साहित्य में विकार/ पृ.४३)

अचेल-जिनकल्प के विच्छेद की घोषणा को एक छल निरूपित करते हुए पं० बेचरदास जी लिखते हैं—

''विशेषावश्यक के इस (जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद दस चीजों के व्युच्छिन्न होने के) उल्लेख को भाष्यकार श्री जिनभद्रसूरि ने जिनवचन अर्थात् तीर्थंकर का वचन बतलाया है और टीकाकार श्री मलधारी हेमचन्द्र ने भी मक्खी पर मक्खी मारने के समान उसी बात को दृढ़ किया है। बलिहारी है श्रद्धान्धता की। गाथा में लिखा है कि जम्बू के समय ये दस बातें विच्छिन्न हो गईं। इस प्रकार का उल्लेख तो वही कर सकता है, जो जम्बूस्वामी के बाद हुआ हो। यह बात मैं विचारक पाठकों से पूछता हूँ कि जम्बूस्वामी के बाद कौन-सा २५वाँ तीर्थंकर हुआ है, जिसका वचनरूप यह उल्लेख माना जाय? यह एक ही नहीं, किन्तु ऐसे संख्याबद्ध उल्लेख हमारे कुलगुरुओं ने पवित्र तीर्थंकरों के नाम पर चढ़ा दिये हैं, जिससे हम विवेकपूर्वक कुछ भी नहीं विचार सकते। क्या यह कुछ कम तमस्तरण है?'' (जैन साहित्य में विकार/ पृ.४२ / पा.टि.)।

यहाँ पं० बेचरदास जी ने जम्बस्वामी के निर्वाण के बाद दस वस्तुओं के विच्छेद का कथन करनेवाली 'मण-परमोहि-पुलाए' इत्यादि गाथा को 'विशेषावश्यक' का बतलाया है। किन्तु यह विशेषावश्यकभाष्यकार द्वारा रचित है, यह इसी प्रकरण के शीर्षक ३.५ में स्पष्ट कर दिया गया है।

श्वेताम्बर सन्तों और विद्वानों के ये वचन भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि अचेलत्व का जिनकल्प-नामकरण एवं उसके विच्छेद की घोषणा उपर्युक्त प्रयोजनों की सिद्धि के लिए अभिप्रायपूर्वक की गयी है, ये जिनोक्त नहीं हैं।

३.११. अचेलत्व के आचरण का विच्छेद नहीं, परित्याग

श्री जिनभद्रगणी द्वारा जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् जिनकल्प के नाम से अचेलकधर्म के व्युच्छिन्न हो जाने की जो घोषणा की गयी है, उससे दो बातें प्रकट होती हैं। एक तो यह कि जम्बूस्वामी के निर्वाण के पूर्व अचेलकधर्म प्रवर्तमान था। दूसरी यह कि उनके निर्वाण के बाद आविर्भूत हुए श्वेताम्बरसम्प्रदाय में उसका आचरण नहीं होता था। किन्तु जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद रचित वैदिक-परम्परा के साहित्य, बौद्धसाहित्य एवं संस्कृतसाहित्य में निर्ग्रन्थों (दिगम्बरजैन मुनियों) को 'नग्न' 'अह्रीक' (लज्जाहीन) आदि शब्दों से अभिहित किया गया है। (देखिये, आगे चतुर्थ अध्याय)। दिगम्बर-पट्टावलियों में जम्बूस्वामी के निर्वाण के अनन्तर अनेक श्रुतकेवलियों, दश-पूर्वधारियों आदि का उल्लेख मिलता है। तत्पश्चात् अनेक दिगम्बरजैनाचार्यों द्वारा रचित कसायपाहुड, षट्खण्डागम, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, भगवती-आराधना, मूलाचार, तत्त्वार्थसूत्र, तिलोयपण्णत्ती, सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। शिलालेखों में भी बहुसंख्यक दिगम्बरजैन आचार्यों और मुनियों के नाम उत्कीर्ण हैं। आज भी बहुत-से दिगम्बर जैन मुनियों का अस्तित्व प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इससे सिद्ध होता है कि अचेलकधर्म के आचरण का विच्छेद नहीं हुआ था, अपितु श्वेताम्बरसम्प्रदाय के संस्थापक मुनियों ने कष्टकर होने से उसका परित्याग कर सुखकर सचेलधर्म का प्रचलन किया था। अचेलकधर्म की प्रवृत्ति तो दिगम्बरजैनपरम्परा में आज भी विद्यमान है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष यह कि श्रीजिनभद्रगणि-वर्णित जिनकल्प प्रथम तो अचेल था ही नहीं, दूसरे, जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद उसे व्युच्छिन्न मान लिया गया, तीसरे, अचेलत्व का जिनकल्प नाम कपोलकल्पित है, चौथे, आचारांगोक्त अचेलत्व श्वेताम्बरपरम्परा में कभी व्यवहृत नहीं हुआ और पाँचवें, आर्य महागिरि ने जिस अचेलक धर्म को अंगीकार किया था, वह दिगम्बरमुनिधर्म था। इन पाँच प्रमाणों से सिद्ध है कि यापनीयसंघ की उत्पत्ति (पंचम शताब्दी ई०) के पूर्व भारत के किसी भी कोने में ऐसी कोई भी जैनपरम्परा विद्यमान नहीं थी, जिसमें सचेलमुनिधर्म के साथ वैकल्पिक अचेलमुनिधर्म प्रचलित था। अतः डॉ० सागरमल जी का यह कथन सर्वथा कपोलकल्पित है कि उत्तरभारत में भगवान् महावीर के समय से ही सचेलाचेल निर्ग्रन्थ-परम्परा विद्यमान थी।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

४

कपोलकल्पित होने के ऐतिहासिक प्रमाण

ऐतिहासिक प्रमाणों से भी उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा का अस्तित्व मिथ्या सिद्धा होता है। यथा—

१. जैसे पाँचवीं शती ई० के देवगिरि एवं हल्सी के अभिलेखों में श्वेतपट-महाश्रमणसंघ, निर्ग्रन्थ-महाश्रमणसंघ, यापनीयसंघ एवं कूर्च्चकसंघ का उल्लेख है, वैसे पाँचवीं शती ई० या उससे पूर्व के किसी भी अभिलेख में **उत्तरभारतीय निर्ग्रन्थसंघ** या **उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ** का उल्लेख नहीं है। न ही किसी सम्प्रदाय के साहित्य में उसकी चर्चा है। अत: उसका अस्तित्व इतिहास से प्रमाणित नहीं है, अर्थात् वह कपोलकल्पित है।

२. उपर्युक्त अभिलेखों में **निर्ग्रन्थ** शब्द श्वेताम्बरों, यापनीयों और कूर्च्चकों के प्रतिपक्षी दिगम्बरों के लिए प्रयुक्त है। इससे सिद्ध होता है कि परम्परा से दिगम्बरजैन मुनि ही लोक में **निर्ग्रन्थ** शब्द से अभिहित होते थे। इसलिए दिगम्बरजैन मुनियों से भिन्न सचेलाचेल-सम्प्रदाय के मुनियों के लिए 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग हो ही नहीं सकता था, क्योंकि ऐसा करने से उन मुनियों की पृथक् सम्प्रदाय के रूप में पहचान असंभव हो जाती। इससे सिद्ध है कि 'उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ' नाम का संघ कपोलकल्पित है।

३. ईसा की पाँचवी शती के पूर्व भी सम्राट् अशोक के दिल्ली (टोपरा) के सातवें स्तम्भलेख (ई० पू० २४२) में निर्ग्रन्थों (निगंठेसु) अर्थात् दिगम्बरजैन मुनियों का उल्लेख हुआ है। (देखिये, अध्याय २ / प्र.६ / शी.२)। तथा ईसापूर्व छठी शती के बुद्धवचन-संग्रहरूप त्रिपिटक-साहित्यगत **अंगुत्तरनिकाय** नामक-ग्रन्थ में और प्रथम शताब्दी ई० के बौद्धग्रन्थ **दिव्यावदान** में **निर्ग्रन्थ** शब्द से दिगम्बरजैन साधुओं का कथन किया गया है। (देखिये, अध्याय ४ / प्र.२ / शी.१.१ एवं १४)। इसी प्रकार अशोक-कालीन अथवा ईसापूर्व प्रथम शती के बौद्ध ग्रन्थ **अपदान** में **सेतवत्थ** (श्वेतवस्त्र=श्वेतपट) नाम से श्वेताम्बर साधुओं की चर्चा की गयी है। (देखिये, अध्याय ४/ प्र.२ / शी. १.२)। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर संघों का उदय ईसापूर्वकाल में ही हो चुका था, अत: पाँचवीं शताब्दी ई० में उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-संघ के विभाजन से श्वेताम्बर और यापनीय संघों के जन्म की मान्यता कपोलकल्पित है। इस प्रकार श्वेताम्बर-यापनीय-संघोत्पत्तिरूप कार्य के अभाव से उसके कारण-रूप उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ का अभाव सिद्ध होता है।

४. डॉक्टर सा० की कल्पनानुसार उक्त संघ में सचेल और अचेल दोनों लिंगों

श्री दिगम्बर जैन पचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में से साधक को अपनी शक्ति के अनुसार किसी भी लिंग को स्वीकार करने की स्वतंत्रता थी। कोई भी मुनि शक्ति या इच्छा के अभाव में अचेललिंग ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं था। अत: किसी को भी सचेललिंग का आग्रहकर संघ से अलग होने की आवश्यकता नहीं थी। और यापनीयों की मान्यता के अनुसार उसमें दोनों लिंगों का विधान था ही, अत: उन्हें भी अलग सम्प्रदाय बनाने की जरूरत नहीं थी। इस तरह विभाजन की कारणसामग्री का सद्भाव ही उक्त संघ में नहीं था। फलस्वरूप उसका विभाजन और उससे श्वेताम्बर-यापनीय सम्प्रदायों की उत्पत्ति मानना अयुक्तिसंगत है। जब उक्त संघ का विभाजन ही असंभव था, तब वह कहाँ चला गया? वर्तमान में दिखायी क्यों नहीं देता? स्पष्ट है कि उसका अस्तित्व ही नहीं था, वह कपोलकल्पित है।

५. जब भी किसी पूर्व संघ से नया संघ जन्म लेता है, तब नये संघ का ही नया नामकरण होता है, पूर्व संघ का नहीं, क्योंकि उसके सिद्धान्त पूर्ववत् ही रहते हैं, अत: उसका नाम भी यथावत् रहता है। इसी कारण उसकी मौलिकता और प्राचीनता कायम रहती है। जैसे भारत से पाकिस्तान अलग हुआ, तो पाकिस्तान का ही 'पाकिस्तान' यह नया नाम रखा गया, भारत का 'भारत' नाम ज्यों का त्यों रहा आया, जैसे निर्ग्रन्थसंघ (वर्तमान नाम 'दिगम्बरजैनसंघ') से श्वेताम्बरसंघ का उद्भव हुआ, तो श्वेताम्बरसंघ का ही 'श्वेताम्बरसंघ' यह नया नामकरण हुआ, निर्ग्रन्थसंघ 'निर्ग्रन्थसंघ' के ही नाम से श्वेताम्बरसंघ के साथ विद्यमान रहा और है, अथवा जैसे मूर्तिपूजक-श्वेताम्बरसंघ से स्थानकवासी-श्वेताम्बरसंघ का जन्म हुआ, तो मूर्तिपूजक-श्वेताम्बरसंघ इसी नाम से नवोदित स्थानकवासी श्वेताम्बरसंघ के साथ वर्तमान में भी जीवित है। अत: उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ से यदि श्वेताम्बर और यापनीय संघों की उत्पत्ति हुई होती, तो उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ इसी नाम से उनके साथ विद्यमान रहता। किन्तु उनके साथ इस संघ का किसी भी अभिलेख या ग्रन्थ में नामोनिशाँ नहीं मिलता। इससे सिद्ध है इसका अस्तित्व ही नहीं था।

६. जिस काल (पाँचवीं शती ई० के प्रारंभ) में उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ का विघटन माना गया है, ठीक उसी काल में बिलकुल उसी सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-संघ के लक्षणोंवाले यापनीयसंघ का उदय हुआ था। इससे सिद्ध होता है कि उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निग्रन्थसंघ था ही नहीं, क्योंकि यदि होता, तो उसी के लक्षणोंवाले यापनीयसंघ के उदय की आवश्यकता नहीं होती।

इस प्रकार शास्त्रीय और ऐतिहासिक, इन द्विविध प्रमाणों से यह भलीभाँति सिद्ध हो जाता है कि उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ का अस्तित्व एक वास्तविकता नहीं थी, वह डॉ० सागरमल जी द्वारा कपोलकल्पित है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

५

डॉक्टर सा० के मत में परिवर्तन

महावीर के निर्ग्रन्थसंघ का सर्वथा अचेल होना मान्य

अचेल निर्ग्रन्थसंघ से सचेल श्वेताम्बरसंघ का उद्भव मान्य

श्वेताम्बरसंघ से यापनीयसंघ की उत्पत्ति स्वीकार्य

उपर्युक्त तथ्यों पर ध्यान जाने के कारण ही 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के प्रकाशन (सन् १९९६ ई०) के आठ वर्षों बाद डॉ० सागरमल जी को उत्तरभारत में सचेलाचेल-निर्ग्रन्थपरम्परा के अस्तित्व की स्वमान्यता का परित्याग कर यह स्वीकार करना पड़ा है कि तीर्थंकर महावीर का निर्ग्रन्थसंघ सर्वथा अचेल था। सन् २००४ ई० में प्रकाशित अपने नये लघुग्रन्थ **जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा** में वे लिखते हैं—

"तमिलनाडु में लगभग ई० पू० प्रथम-द्वितीय शती से ब्राह्मीलिपि में अनेक जैन अभिलेख मिलते हैं, जो इस तथ्य के साक्षी हैं कि निर्ग्रन्थसंघ महावीर के निर्वाण के लगभग दो-तीन सौ वर्ष पश्चात् ही तमिल प्रदेश में पहुँच चुका था।---आज भी तमिल जैनों की विपुल संख्या है और वे भारत में जैनधर्म के अनुयायियों की प्राचीनतम परम्परा के प्रतिनिधि हैं। ये नयनार एवं पंचमवर्णी के रूप में जाने जाते हैं।" (पृ. २५-२६)।

"दक्षिण में गया निर्ग्रन्थसंघ अपने साथ विपुल प्राकृत जैनसाहित्य तो नहीं ले जा सका, क्योंकि उस काल तक जैनसाहित्य के अनेक ग्रन्थों की रचना ही नहीं हो पायी थी। वह अपने साथ श्रुतपरम्परा से कुछ दार्शनिक विचारों एवं महावीर के कठोर आचारमार्ग को ही लेकर चला था, जिसे उसने बहुत काल तक सुरक्षित रखा। आज की दिगम्बरपरम्परा का पूर्वज यही दक्षिणी अचेल निर्ग्रन्थसंघ है।" (पृ.२६)।

"दक्षिण की जलवायु उत्तर की अपेक्षा गर्म थी, अतः अचेलता के परिपालन में दक्षिण में गये निर्ग्रन्थसंघ को कोई कठिनाई नहीं हुई, जब कि उत्तर के निर्ग्रन्थसंघ में कुछ पार्श्वापत्यों के प्रभाव से और कुछ अतिशीतल जलवायु के कारण यह अचेलता अक्षुण्ण नहीं रह सकी और एक वस्त्र रखा जाने लगा।" (पृ.२६)।

"यह मान्यता समुचित ही है कि भद्रबाहु की परम्परा से ही आगे चलकर दक्षिण की अचेलक-निर्ग्रन्थ-परम्परा का विकास हुआ।" (पृ. २८)।

"**दक्षिण का अचेल-निर्ग्रन्थसंघ भद्रबाहु की परम्परा से और उत्तर का सचेल-निर्ग्रन्थ-संघ स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित हुआ।**" (पृ.२८-२९)।

"ईसा की द्वितीय शती में महावीर के निर्वाण के छह सौ नौ वर्ष पश्चात् उत्तमभारत के निर्ग्रन्थसंघ में विभाजन की एक अन्य घटना घटित हुई, फलतः **उत्तरभारत का निर्ग्रन्थ-संघ सचेल एवं अचेल ऐसे दो भागों में बँट गया।** पार्श्वापत्यों (भगवान् पार्श्वनाथ के अनुयायियों) के प्रभाव से आपवादिकरूप में एवं शीतादि के निवारणार्थ गृहीत हुए वस्त्र, पात्र आदि जब मुनि की अपरिहार्य उपधि बनने लगे, तो परिग्रह की इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति को रोकने के प्रश्न पर आर्यकृष्ण और आर्य शिवभूति में मतभेद हो गया। आर्यकृष्ण जिनकल्प का उच्छेद बताकर गृहीत वस्त्रपात्र को मुनिचर्या का अपरिहार्य अंग मानने लगे, जब कि आर्य शिवभूति ने इनके त्याग और जिनकल्प के आचरण पर बल दिया। --- आर्य शिवभूति की उत्तरभारत की इस अचेलपरम्परा को श्वेताम्बरों ने **बोटिक (भ्रष्ट)** कहा, किन्तु आगे चलकर यह परम्परा **यापनीय** के नाम से प्रसिद्ध हुई।" (पृ.२९-३०)।

इस वक्तव्य में डॉक्टर सा० ने माना है कि भगवान् महावीर का निर्ग्रन्थसंघ अचेल था। उस संघ का एक श्रमणसमुदाय धर्मप्रचारार्थ दक्षिण भारत चला गया, जो आगे चलकर दिगम्बरसंघ के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा उत्तरभारत में स्थित रहे श्रमणसममुदाय ने शीतल जलवायु की दुस्सहता के कारण एक वस्त्र धारण करना शुरू कर दिया। फिर धीरे-धीरे उसके वस्त्रपात्रादि-परिग्रह में वृद्धि हो गयी, जिसके फलस्वरूप ईसा की द्वितीय शताब्दी में उससे अचेलता-समर्थक यापनीयसम्प्रदाय उत्पन्न हुआ। **इससे स्पष्ट है कि डॉक्टर सा० ने अपनी इस पूर्व मान्यता का परित्याग कर दिया है कि भगवान् महावीर का निर्ग्रन्थसंघ सचेलाचेल था और उससे सचेलता के समर्थक श्वेताम्बरसम्प्रदाय का एवं अचेलता के समर्थक यापनीयसम्प्रदाय का उद्भव हुआ था तथा दिगम्बरसम्प्रदाय की स्थापना विक्रम की छठी शती में दक्षिणभारत में आचार्य कुन्दकुन्द ने की थी। डॉक्टर सा० ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि भगवान् महावीर के अचेल निर्ग्रन्थसंघ से एक वस्त्र स्वीकार कर लेनेवाले सचेल-निर्ग्रन्थसंघ का जन्म हुआ। यह सचेल-निर्ग्रन्थसंघ श्वेताम्बरसंघ ही था, क्योंकि यह अचेलत्व को अस्वीकार कर एकमात्र सचेललिंग से मोक्ष की प्राप्ति मानने लगा था। तथा इस सचेल-निर्ग्रन्थसंघ अर्थात् श्वेताम्बरसंघ के विभाजन से यापनीयसंघ का उद्भव हुआ और दिगम्बरसंघ उस अचेल-निर्ग्रन्थसंघ का उत्तराधिकारी या नामान्तर है, जो महावीर के निर्वाण के दो-तीन सौ वर्ष बाद ही तमिलप्रदेश में पहुँच गया था।** इस प्रकार डॉक्टर सा० ने सचेल श्वेताम्बरसंघ से अचेल दिगम्बरसंघ की प्राचीनता भी स्वीकार की है।

यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है। डॉ० सागरमल जी ने १९९६ ई० में लिखित अपने 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ में पहले बोटिकमत के नाम से यापनीयमत की उत्पत्ति वीरनिर्वाण सं० ६०९ (डॉक्टर सा० के अनुसार ई० सन् १४२) में मानी थी। (देखिये, इसी अध्याय की पा.टि. ६१)। किन्तु, बाद में इस मत को निरस्तकर उसकी उत्पत्ति ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में मान ली। (देखिये, इसी अध्याय का प्र. ३/शी.१)। अब आठ वर्षों बाद ई० सन् २००४ मे लिखे गये अपने नये ग्रन्थ **जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा** में पुनः वीरनिर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२, डॉक्टर सा० के अनुसार ई० सन् १४२) में बोटिकमत के नाम से यापनीयमत का उदय मान लिया है। यह उनकी अनिश्चयात्मक मनोदशा का अन्यतम उदाहरण है।

किन्तु, यह पूर्व में सिद्ध किया जा चुका है कि बोटिकमत यापनीयमत नहीं था, अपितु दिगम्बरमत को बोटिकमत कहा गया है, अतः यापनीयमत की उत्पत्ति वीरनिर्वाण सं० ६०९ (ई० सन् ८२) में मानना अप्रामाणिक है। डॉक्टर सा० ने भी प्रमाण के अभाव में ही इस मत को निरस्त किया था और 'पाँचवीं शती ई० के पूर्व किसी भी अभिलेख या ग्रन्थ में यापनीय-सम्प्रदाय का उल्लेख नहीं मिलता' इस बलिष्ठ ऐतिहासिक प्रमाण के आधार पर उन्होंने यापनीयसम्प्रदाय की उत्पत्ति ईसा की पाँचवीं शताब्दी के प्रारंभ में स्वीकार की थी। यही मत प्रमाणसिद्ध होने से समीचीन है।

✧✧✧

चतुर्थ प्रकरण

सचेलाचेल-संघ से श्वेताम्बर-यापनीयों के उद्भव की मान्यता कपोलकल्पित

अपने पूर्व ग्रन्थ 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' में डॉ० सागरमल जी ने उत्तरभारत में भगवान्-महावीर-प्रणीत सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-संघ के अस्तित्व की कल्पना कर, एक दूसरी कल्पना यह की है कि श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों का उद्भव इसी संघ से हुआ था। यह सचेलाचेल-संघ इन दोनों सम्प्रदायों का पूर्वज था। डॉक्टर सा० लिखते हैं—"यापनीयों की उत्पत्ति श्वेताम्बर-परम्परा से न होकर उस मूलधारा से हुई है, जो श्वेताम्बरों की भी पूर्वज थी, जिससे कालक्रम से वर्तमान श्वेताम्बरधारा का विकास हुआ है। वस्तुतः महावीर के धर्मसंघ में जब वस्त्रपात्र आदि में वृद्धि होने लगी और अचेलत्व की प्रतिष्ठा क्षीण होने लगी, तब उससे अचेलता के पक्षधर यापनीय और सचेलता के पक्षधर श्वेताम्बर ऐसी दो धारायें निकलीं।" (जै.ध.या.स./ पृ.२३-२४)। इस प्रकार डॉक्टर सा० के अभिप्रायानुसार उत्तरभारत की सचेलाचेल मूल निर्ग्रन्थपरम्परा, जिसे उन्होंने अन्यत्र अविभक्त परम्परा नाम भी दिया है, श्वेताम्बरों और यापनीयों की पूर्वजपरम्परा अर्थात् मातृपरम्परा थी।

इस कल्पना के द्वारा उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि उत्तरभारत में जो मूल निर्ग्रन्थसंघ का विभाजन हुआ था, उससे दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदायों का जन्म नहीं हुआ था, अपितु श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों की उत्पत्ति हुई थी। उनका कथन है कि दिगम्बरसम्प्रदाय की स्थापना तो स्वतन्त्ररूप से दक्षिणभारत में विक्रम की छठी शताब्दी में आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा की गई थी। अतः यह सम्प्रदाय भगवान् महावीर की परम्परा का उत्तराधिकारी नहीं है। उनकी परम्परा के उत्तराधिकारी तो केवल श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय हैं।

१

उक्त कपोलकल्पना का महत्त्वपूर्ण प्रयोजन

मान्य विद्वान् ने उत्तरभारत में सचेलाचेलपरम्परा के अस्तित्व की कल्पना कर तथा उससे श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों के उदय की कथा गढ़कर एक अन्य कथा यह गढ़ी है कि उक्त सचेलाचेल-मूल-परम्परा के जो आगम, सिद्धान्त, गाथाएँ आदि थीं, वे श्वेताम्बरों और यापनीयों को समानरूप से उत्तराधिकार में मिली हैं। इस दूसरी कल्पना के द्वारा उन्होंने इस तीसरी कल्पना को तर्कसंगत बनाने की कोशिश की है, कि यतः षट्खण्डागम, कसायपाहुड, भगवती-आराधना, मूलाचार आदि ग्रन्थों

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में वैसी ही अनेक गाथाएँ मिलती हैं, जैसी श्वेताम्बर ग्रन्थों में है, अत: उत्तरभारत की जिस सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-परम्परा से ये समान गाथाएँ श्वेताम्बर ग्रन्थों में आयी हैं, उसी परम्परा से इन ग्रन्थों में आयी हैं। और उस परम्परा के उत्तराधिकारी श्वेताम्बरों के अलावा यापनीय ही थे, अत: षट्खण्डागम आदि ग्रन्थ यापनीय-परम्परा के हैं। अथवा यदि वे यापनीयसंघ की उत्पत्ति के पूर्व रचे गये हैं, तो उत्तरभारतीय सचेलाचेल-परम्परा के आचार्यों की कृतियाँ हैं। इस प्रकार उपर्युक्त कपोलकल्पनाओं के द्वारा मान्य विद्वान् ने षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों के दिगम्बरग्रन्थ होने की सत्यता का अपलाप करने के लिए महामायाजाल बिछाया है। मान्य विद्वान् के निम्नलिखित वचनों से उनके इस महामायाजाल के प्रसार और उसके प्रयोजनों का पता चलता है—

१. "यह सत्य है कि श्वेताम्बर और यापनीय दोनों ही उत्तरभारत की निर्ग्रन्थपरम्परा के समानरूप से उत्तराधिकारी रहे हैं और इसीलिए दोनों की आगमिक परम्परा एक ही है तथा यही उनके आगमिक ग्रन्थों की निकटता का कारण है। षट्खण्डागम में स्त्रीमुक्ति का समर्थन और श्वेताम्बर आगमिक और निर्युक्ति साहित्य से उसकी शैली और विषय-वस्तुगत समानता यही सिद्ध करती है कि वह यापनीय-परम्परा का ग्रन्थ है।" (जै.ध.या.स. / पृ.१०४)।

२. "यापनीय और श्वेताम्बर दोनों ही इस अविभक्त संघ में (ईसा की दूसरी शती तक) निर्मित आगमिक साहित्य के समानरूप से उत्तराधिकारी बने।" (जै.ध.या.स./पृ.६५)।

३. "कसायपाहुड उत्तरभारत की अविभक्त निर्ग्रन्थपरम्परा का ग्रन्थ है, जो श्वेताम्बरों और यापनीयों को समानरूप से उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ है" (जै.ध.या.स./पृ.८९)।

२
कपोलकल्पितता के प्रमाण

किन्तु यह कल्पना-चक्र निम्नलिखित कारणों से कपोलकल्पित सिद्ध हो जाता है—

१. उत्तरभारत की उक्त सचेलाचेल-मूलनिर्ग्रन्थ-परम्परा का अस्तित्व ही नहीं था, यह तृतीय प्रकरण में सिद्ध किया जा चुका है। अत: उससे श्वेताम्बरों और यापनीयों की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।

२. यदि उक्त परम्परा का अस्तित्व होता भी, तो उसका श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदायों में के रूप एकसाथ विभाजन कदापि संभव नहीं था, क्योंकि उसमें अचेल

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

और सचेल दोनों लिंगों में से किसी भी लिंग को अपनाने का विकल्प था। जो अचेल-लिंग धारण करने मे असमर्थ थे, उनके लिए सेचललिंग धारण करने की स्वतंत्रता थी, वे अचेललिंग ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं थे। सचेललिंग को लेकर संघ-विभाजन तभी हो सकता था, जब उक्तसंघ में अचेललिंग ही अनिवार्य होता, किन्तु ऐसा नहीं था। इसी प्रकार अचेललिंग को लेकर भी किसी को अलग होने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि उसे भी अपनाने की स्वतंत्रता उक्त सचेलाचेल निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय देता था।

हाँ, यदि कोई साधुवर्ग संघ से अचेललिंग का सर्वथा बहिष्कार कराना चाहता और उसमें सफल न होता, तो वह संघ से अलग हो सकता था, और अपने को **श्वेताम्बरसंघ** नाम से प्रसिद्ध कर सकता था। इसी प्रकार यदि कोई साधुसमूह संघ से सचेललिंग का सर्वथा बहिष्कार कराने का इच्छुक होता और उसकी बात स्वीकार न की जाती, तब उसका भी संघ से पृथक् होना संभव था, यद्यपि यह परम्परागत दिगम्बरमत को स्वीकार करना होता, किसी नये सम्प्रदाय की उत्पत्ति नहीं। किन्तु कोई साधुवर्ग उक्त संघ में अचेल और सचेल दोनों लिंगों को वैकल्पिकरूप से स्वीकार कराना चाहता और उसमें सफल न होने पर संघ से पृथक् होकर यापीनयसंघ बना लेता, इसकी संभावना रंचमात्र भी नहीं थी, क्योंकि संघ में दोनों लिंगों की वैकल्पिक-रूप से स्वीकृति पहले से ही थी। अतः दोनों लिंगों को वैकल्पिकरूप से स्वीकार करनेवाले यापनीयसंघ की उत्पत्ति के योग्य परिस्थिति का उक्त संघ में सर्वथा अभाव था। अतः उसकी उत्पत्ति के योग्य परिस्थिति के अभाव से उसके साथ जो श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति मानी गयी है, उसकी उत्पत्ति के योग्य परिस्थिति का भी अभाव सिद्ध होता है। यह इस बात का प्रमाण है कि उत्तरभारतीय सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के विभाजन की घटना काल्पनिक है।

विभाजन और विघटन न होने से उक्त संघ **सचेलाचेल-निर्गन्थसंघ** अथवा **उत्तरभारतीय निर्ग्रन्थसंघ** के नाम से ईसा की पाँचवीं शती में भी मौजूद रहता। किन्तु पाँचवी शती ई० या उसके पूर्व या पश्चात् के अभिलेखों या साहित्य में उसका नामोनिशाँ भी नहीं है, केवल श्वेतपटमहाश्रमणसंघ, निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ, यापनीयसंघ एवं कूर्चकसंघ के नाम मिलते हैं। इससे भी सिद्ध है कि 'उत्तरभारतीय-निर्ग्रन्थसंघ' या 'सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ' नाम के किसी संघ का भारत में कभी अस्तित्व ही नहीं था, वह कपोलकल्पित है।

श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति दिगम्बर (निर्ग्रन्थ) संघ से ही हो सकती थी, क्योंकि उसमें ही अचेललिंग अनिवार्य था, जो असमर्थ पुरुषों के लिए संभव नहीं था। और यापनीयसंघ का उद्भव श्वेताम्बरसंघ से ही संभव था, क्योंकि उसमें ही अचेललिंग

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

का विकल्प नहीं था, जो यापनीयों को वैकल्पिकरूप से मान्य था। इस प्रकार उत्तर-भारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ का स्वरूप लिंग-विकल्प से परिपूर्ण होने के कारण श्वेताम्बर और यापनीय दोनों के लिए अत्यन्त अनुकूल था, उसके विभाजन योग्य कोई हेतु उसमें मौजूद नहीं था। अतः उसके श्वेताम्बर और यापनीय संघों के रूप में विभाजित होने की मान्यता सर्वथा अयुक्तिसंगत है।

३. पूर्व (प्रकरण ३/शी.४) में दर्शाया गया है कि अशोक के ईसापूर्व २४२ के दिल्ली (टोपरा) के सातवें स्तम्भलेख में तथा ईसापूर्व छठी शती के बुद्धवचन-संग्रहरूप त्रिपिटकसाहित्य के **अंगुत्तरनिकाय** नामक ग्रन्थ में और प्रथम शती ई० के बौद्धग्रन्थ **दिव्यावदान** में **निर्ग्रन्थ** शब्द से दिगम्बरजैन साधुओं का कथन किया गया है। (देखिये, अध्याय ४/प्र.२/शी.१.१ एवं १४)। इसी प्रकार अशोककालीन अथवा ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के बौद्धग्रन्थ **अपदान** में **सेतवत्थ** (श्वेतवस्त्र = श्वेतपट) नाम से श्वेताम्बर साधुओं की चर्चा की गयी है। (देखिये, अध्याय ४/प्र.२/शी.१.२)। इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि दिगम्बर और श्वेताम्बर संघों का उदय ईसापूर्व-काल में ही हो चुका था, अतः पाँचवीं शताब्दी ई० में उत्तरभारतीय-सचेलाचेल-निर्ग्रन्थ-संघ के विभाजन से श्वेताम्बर और यापनीय संघों के जन्म की कथा कपोलकल्पित है।

४. डॉ० सागरमल जी ने यापनीयों को भगवान् महावीर की परम्परा का सही रूप में प्रतिनिधित्व करनेवाला कहा है। (जै.ध.या.स./लेखकीय/पृ.V)। यदि उक्त सचेलाचेल-परम्परा भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत और यापनीयों की मातृपरम्परा होती, तो यापनीय जिन-कल्पिक साधु वस्त्रपात्रलब्धिरहित श्वेताम्बर जिनकल्पिकों के ही समान मुखवस्त्रिका, रजोहरण, एक, दो या तीन चादर तथा भिक्षापात्र ग्रहण करते, दिगम्बर मुनियों के समान सर्वथा अचेल, पाणितलभोजी और मयूरपिच्छधारी न होते।

५. श्वेताम्बर और यापनीय संघों की उत्पत्ति एक ही समय (वीर नि० सं० ६०९ या विक्रम सं० १३९ अथवा १३६) में हुई थी, इसका उल्लेख किसी भी प्राचीन ग्रन्थ या शिलालेख में नहीं मिलता। आवश्यकमूलभाष्य में वीर नि० सं० ६०९ अर्थात् वि० सं० १३९ (ई० सन् ८२) में श्वेताम्बरसंघ से बोटिकमत (दिगम्बरमत) की उत्पत्ति बतलायी गयी है, उसे डॉ० सागरमल जी ने यापनीयसंघ की उत्पत्ति मान लिया है। तथा दिगम्बरग्रन्थ 'दर्शनसार' में विक्रम सं० १३६ (वीर नि० ६०६ = ई० सन् ७९) में दिगम्बरमुनि भद्रबाहु (तृतीय) के प्रशिष्य तथा शान्त्याचार्य के शिष्य जिनचन्द्र के द्वारा श्वेताम्बरसंघ का प्रवर्तन बतलाया गया है। इस उल्लेख से डॉ० सागरमल जी ने यापनीयसंघ और श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति को समकालीन मान लिया है,[७२] जो

७२. जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय / पृ.१७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उल्लेखों के सर्वथा विपरीत है। यदि 'दर्शनसार' के उल्लेखानुसार श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति वि० सं० १३६ में मानी जाती है, तो इसी ग्रन्थ में यापनीयसंघ का उद्भव वि० सं० ७०५ या २०५ में बतलाया गया है, अतः इसके अनुसार यापनीयसंघ का भी उत्पत्तिकाल वि० सं० ७०५ या २०५ मानना चाहिए। अस्तु , **दर्शनसार** के उल्लेख से स्पष्ट है कि ग्रन्थों में श्वेताम्बर और यापनीय संघों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न समयों में ही बतलायी गयी है, एक ही समय में नहीं।

इस प्रकार ऐसा एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिससे यह सिद्ध हो कि श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय एक ही मूलसम्प्रदाय से प्रसूत हुए थे। अतः डॉ० सागरमल जी की यह स्थापना सर्वथा कपोलकल्पित ठहरती है कि श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय उत्तरभारतीय सचेलाचेल मूल निर्ग्रन्थ संघ से निकले थे। जिस संघ का अस्तित्व ही नहीं था, उससे उक्त सम्प्रदायों की उत्पत्ति मानना आकाशकुसुम से सुगंध की उत्पत्ति मानना है।

यतः डॉ० सागरमल जी ने 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के प्रकाशन के आठ वर्षों बाद लिखे गये '**जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा**' नामक ग्रन्थ[७३] में **सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के अस्तित्व की मान्यता का परित्याग कर दिया है,** अतः उक्त संघ से श्वेताम्बर और यापनीय संघों का जन्म हुआ था, उनकी यह मान्यता स्वतः निरस्त हो जाती है। उपर्युक्त नये ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है—

"**दक्षिण का अचेल-निर्ग्रन्थसंघ भद्रबाहु की परम्परा से और उत्तर का सचेल-निर्ग्रन्थसंघ स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित हुआ।**" (पृ.२८-२९)। तदनन्तर वे लिखते हैं-"**ईसा की द्वितीय शती में महावीर के निर्वाण के छह सौ नौ वर्ष पश्चात् उत्तर-भारत के निर्ग्रन्थसंघ में विभाजन की एक अन्य घटना घटित हुई, फलतः उत्तरभारत का निर्ग्रन्थसंघ सचेल एवं अचेल ऐसे दो भागों में बँट गया।---शिवभूति की उत्तर-भारत की इस अचेलपरम्परा को श्वेताम्बरों ने बोटिक (भ्रष्ट) कहा, किन्तु आगे चलकर यह परम्परा 'यापनीय' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुई।**" (पृ.२९-३०)।

इससे स्पष्ट है कि डॉक्टर सा० ने अपने संशोधित मत में स्थूलभद्र (चौथी शती ई० पू०) की परम्परा से विकसित सचेलसंघ के विभाजन से यापनीयसंघ की उत्पत्ति मानी है। इससे उनका यह मत भी निरस्त हो जाता है कि श्वेताम्बर और यापनीय समान परम्परा से उत्पन्न हुए थे। उनके ही उपर्युक्त वचनों के अनुसार समान परम्परा से तो ईसापूर्व चौथी शती में भद्रबाहुवाले दक्षिण-प्रस्थित अचेल-निग्रन्थसंघ की तथा स्थूलभद्रवाले उत्तरस्थित सचेलसंघ की उत्पत्ति हुई थी।

७३. प्रकाशक : प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.), सन् २००४ ई.।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उल्लेखों के सर्वथा विपरीत है। यदि 'दर्शनसार' के उल्लेखानुसार श्वेताम्बरसंघ की उत्पत्ति वि० सं० १३६ में मानी जाती है, तो इसी ग्रन्थ में यापनीयसंघ का उद्भव वि० सं० ७०५ या २०५ में बतलाया गया है, अतः इसके अनुसार यापनीयसंघ का भी उत्पत्तिकाल वि० सं० ७०५ या २०५ मानना चाहिए। अस्तु , **दर्शनसार** के उल्लेख से स्पष्ट है कि ग्रन्थों में श्वेताम्बर और यापनीय संघों की उत्पत्ति भिन्न-भिन्न समयों में ही बतलायी गयी है, एक ही समय में नहीं।

इस प्रकार ऐसा एक भी प्रमाण उपलब्ध नहीं है, जिससे यह सिद्ध हो कि श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय एक ही मूलसम्प्रदाय से प्रसूत हुए थे। अतः डॉ० सागरमल जी की यह स्थापना सर्वथा कपोलकल्पित ठहरती है कि श्वेताम्बर और यापनीय सम्प्रदाय उत्तरभारतीय सचेलाचेल मूल निर्ग्रन्थ संघ से निकले थे। जिस संघ का अस्तित्व ही नहीं था, उससे उक्त सम्प्रदायों की उत्पत्ति मानना आकाशकुसुम से सुगंध की उत्पत्ति मानना है।

यतः डॉ० सागरमल जी ने 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के प्रकाशन के आठ वर्षों बाद लिखे गये **'जैनधर्म की ऐतिहासिक विकासयात्रा'** नामक ग्रन्थ[७३] में **सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ के अस्तित्व की मान्यता का परित्याग कर दिया है,** अतः उक्त संघ से श्वेताम्बर और यापनीय संघों का जन्म हुआ था, उनकी यह मान्यता स्वतः निरस्त हो जाती है। उपर्युक्त नये ग्रन्थ में उन्होंने लिखा है—

"**दक्षिण का अचेल-निर्ग्रन्थसंघ भद्रबाहु की परम्परा से और उत्तर का सचेल-निर्ग्रन्थसंघ स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित हुआ।**" (पृ.२८-२९)। तदनन्तर वे लिखते हैं-"**ईसा की द्वितीय शती में महावीर के निर्वाण के छह सौ नौ वर्ष पश्चात् उत्तर-भारत के निर्ग्रन्थसंघ में विभाजन की एक अन्य घटना घटित हुई, फलतः उत्तरभारत का निर्ग्रन्थसंघ सचेल एवं अचेल ऐसे दो भागों में बँट गया।---शिवभूति की उत्तर-भारत की इस अचेलपरम्परा को श्वेताम्बरों ने बोटिक (भ्रष्ट) कहा, किन्तु आगे चलकर यह परम्परा 'यापनीय' के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुई।**" (पृ.२९-३०)।

इससे स्पष्ट है कि डॉक्टर सा० ने अपने संशोधित मत में स्थूलभद्र (चौथी शती ई० पू०) की परम्परा से विकसित सचेलसंघ के विभाजन से यापनीयसंघ की उत्पत्ति मानी है। इससे उनका यह मत भी निरस्त हो जाता है कि श्वेताम्बर और यापनीय समान परम्परा से उत्पन्न हुए थे। उनके ही उपर्युक्त वचनों के अनुसार समान परम्परा से तो ईसापूर्व चौथी शती में भद्रबाहुवाले दक्षिण-प्रस्थित अचेल-निग्रन्थसंघ की तथा स्थूलभद्रवाले उत्तरस्थित सचेलसंघ की उत्पत्ति हुई थी।

७३. प्रकाशक : प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.), सन् २००४ ई.।

✧✧✧

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पञ्चम प्रकरण

सामान्य पुरुषों के लिए तीर्थंकरलिंग-निषेध मनगढ़न्त

१

पंचमकाल में सचेललिंग को ही जिनोक्त, उचित और अनिवार्य ठहराने का प्रयास

प्रस्तुत अध्याय के तृतीय प्रकरण (शीर्षक ३.९) में स्पष्ट किया गया है कि श्वेताम्बराचार्यों ने अवास्तविक अचेलत्व और वास्तविक अचेलत्व को 'जिनकल्प' संज्ञा देकर तथा उसका व्युच्छेद घोषित कर दिगम्बरमत को निह्नवमत (तीर्थंकरोपदेश के विपरीत कल्पित मिथ्यामत) तथा श्वेताम्बरमत को तीर्थंकरप्रणीत मत सिद्ध करने की चेष्टा की है। यह चेष्टा उन्होंने सामान्यपुरुषों के लिए तीर्थंकरलिंग-ग्रहण के निषेध की कल्पना द्वारा भी की है। उन्होंने बोटिककथा के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि **'पंचमकाल में मुनियों के लिए श्वेताम्बरमतोक्त सचेललिंग ही भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट है, उसे ही ग्रहण करने से संयम की विराधना टलती है। पंचम-काल में वज्रवृषभनाराचसंहननधारी मनुष्यों का अभाव हो जाने से अचेललिंग धारण करना संभव नहीं है, अतः सभी मुनियों को सचेललिंग ग्रहण करना अनिवार्य है।'**

दिगम्बरमत के विषय में (जिसे वे बोटिकमत कहते थे), उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि **चूँकि पंचमकालीन पुरुषों में अचेललिंग धारण करने की योग्यता नहीं होती, अतः वह उनके लिए निषिद्ध है। इसलिए उसे धारण करने योग्य माननेवाला दिगम्बरमत जिनोक्त नहीं है, अपितु निह्नवमत अर्थात् स्वकल्पित मिथ्यामत है।**[७४]

श्वेताम्बराचार्यों के इन प्रयासों की सूचना बोटिककथा के गुरुशिष्य-संवाद से प्राप्त होती है। बोटिक शिवभूति जिनलिंगवत् सर्वथा अचेलत्व (नग्नवेश) को जिनकल्प मानता है और गुरु के समक्ष उसे ही ग्राह्य ठहराता है। इसके उत्तर में गुरु आर्यकृष्ण कहते हैं कि "जिनकल्प वही धारण कर सकता है, जो वज्रवृषभनाराचसंहननधारी तथा कम से कम नवपूर्वधर हो। जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् अर्थात् पंचमकाल का आरंभ होते ही मनुष्यों में इन योग्यताओं का अभाव हो गया, अतः वर्तमान में जिनकल्प की प्रवृत्ति विच्छिन्न हो गयी है।"[७५]

---

७४. देखिए, इसी अध्याय का प्रकरण ३/शीर्षक ३.९।

७५. उवएसो पुण एवं जिणकप्पो संपयं समुच्छिन्नो।
जेणं सो नवपुव्वी पडिवज्जइ पढमसंघयणी॥ १/२/१४॥ प्रवचनपरीक्षा।

यतः शिवभूति जिनेन्द्रगृहीत (तीर्थंकरगृहीत) वास्तविक अचेललिंग को ही (नाम-मात्र के लिए अचेल कहे जानेवाले सचेल जिनकल्प को नहीं) ग्राह्य बतलाना चाहता है, अतः वह जिनकल्प को ग्राह्य बतलाने के तुरन्त बाद अपने अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए कहता है-"**अचेलकाश्च जिनेन्द्राः। अतोऽचेलतैव सुन्दरेति**" (हेम.वृत्ति./ विशे.भा./ गा. २५५१-५२)। अर्थात् जिनेन्द्र भी अचेलक होते हैं, अतः अचेलता ही सुन्दर है (उसे ग्रहण करना उचित है)।

गुरु आर्यकृष्ण इसके उत्तर में कहते हैं-"तीर्थंकरों में जो अलौकिक योग्यताएँ होती हैं, वे उनके शिष्यों (अनुगामियों) में नहीं होतीं, अतः आगम में उनके लिए तीर्थंकरगृहीत अचेललिंग के ग्रहण का निषेध किया गया है। तीर्थंकरों में अनुपम-धृति (अनुपम सहनशक्ति) का जनक वज्रवृषभनाराचसंहनन होता है, छद्मावस्था में वे मतिज्ञानादि चार ज्ञानों के स्वामी, अतिशयसत्त्वसम्पन्न, छिद्ररहित-पाणिपात्रवाले तथा समस्त परीषहों के विजेता होते हैं।[७६] किन्तु उनके शिष्यों में ये गुण नहीं होते, अतः उनके लिए जिनेन्द्र ने अचेललिंग के ग्रहण का निषेध किया है। इसलिए तुम्हें (शिवभूति को) तीर्थंकर के उपदेश का आदर करते हुए नग्न नहीं होना चाहिए।"[७७]

शिवभूति गुरु (तीर्थंकर) के लिंग को युक्तिपूर्वक अनुकरणीय बतलाते हुए कहता है—

जारिसियं गुरुलिंगं सीसेण वि तारिसेण होयव्वं।
न हि होइ बुद्धसीसो सेयवडो नग्गखवणो व॥[७८]

अनुवाद—"जैसा गुरु का लिंग (वेश) होता है, वैसा ही शिष्य का भी होना चाहिए। श्वेतवस्त्र धारण करनेवाला अथवा नग्नवेशधारी साधु बुद्ध का शिष्य नहीं कहला सकता। अर्थात् बुद्ध रक्ताम्बरधारी थे, अतः जो रक्ताम्बर धारण करता है, उसे हीलोग बुद्ध का अनुयायी कह सकते हैं, श्वेताम्बर या दिगम्बर साधु को नहीं।"

गुरु आर्यकृष्ण इस युक्ति को निरस्त करते हुए कहते हैं—"यदि तीर्थंकर के शिष्य होने से तुम्हें उनका वेश प्रमाण है, तो तीर्थंकर के शिष्य होने के ही कारण

---

७६. "यस्माज्जिनास्तीर्थकराः सर्वेऽपि निरुपमधृतिसंहननाश्छद्मस्थावस्थायां चतुर्ज्ञानाः, अतिशय-सत्त्वसम्पन्नाः, तथा अच्छिद्रपाणिपात्रा जितसमस्तपरीषहाश्च ---।" हेम.वृत्ति / विशेषाव-श्यकभाष्य / गा. २५८१-८३।

७७. "तर्हि तद्वचनादेव तीर्थकरोपदेशादेव निरुपधृति-संहननाद्यतिशयरहितोऽचेलो नग्नो मा भूस्त्वम्।" हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५८५।

७८. विशेषावश्यकभाष्य / गाथा २५८५ की हेमचन्द्रसूरिकृत वृत्ति में उद्धृत।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

तुम्हारे लिए उनका उपदेश भी प्रमाण होना चाहिए। गुरु के उपदेश का उल्लंघन कर प्रवृत्ति करनेवाला शिष्य अभीष्टार्थ की सिद्धि नहीं कर सकता। परमगुरु का उपदेश यह है कि जो निरुपमधृति, प्रथम संहनन आदि अतिशयों से रहित है, उसे अचेलक नहीं होना चाहिए। इसलिए तुम इस प्रकार गुरूपदेश से अलग नाग्न्य अपनाकर अपना अहित क्यों करते हो?''[७९]

शिवभूति गुरु की ही युक्ति से उत्तर देता है—''**यथा गुरोरुपदेशः कर्त्तव्यस्तथा तद्वेषचरिते अप्यवश्यमाचरणीये।**'' (हेम.वृत्ति / विशे.भा. / गा. २५८६)। अर्थात् जैसे गुरु का उपदेश पालन करने योग्य है, वैसे ही उनका वेश और चरित भी अवश्य आचरणीय हैं।

तब आर्यकृष्ण कहते हैं—''यह अनुचित है, क्योंकि गुरु का उपदेश ही कार्यसाधक है। जैसे रोगी, वैद्य के उपदेश का पालन करने से ही रोगमुक्त होता है, उसके वेश और चरित का अनुकरण करने से नहीं, वैसे ही जिनवैद्य के उपदेश का पालन करनेवाला ही कर्मरोग से मुक्त होता है, उनके वेश और चरित का अनुकरण करनेवाला नहीं। जिनेन्द्रवत् योग्यता न रहते हुए भी, जो उनके वेश और चरित का अनुकरण करता है, वह उन्माद आदि का ही पात्र बनता है।[८०]

गुरु आर्यकृष्ण पुनः उपदेश देते हैं कि ''शिष्यों की तीर्थंकरों से सभी गुणों में समानता नही हो सकती। यदि सभी गुणों में समानता हो, तो जैसे तीर्थंकर स्वयंबुद्ध होने के कारण दूसरों के उपदेश से प्रवर्तन नहीं करते, न ही छद्मस्थावस्था में दूसरों को उपदेश देते हैं, न ही शिष्यों को दीक्षा देते हैं, वैसे ही उनके शिष्य-प्रशिष्यों का भी स्वयंबुद्धत्व आदि सभी गुणों से युक्त होना आवश्यक हो जायेगा। ऐसा होने पर तीर्थ की उत्पत्ति संभव नहीं होगी, क्योंकि न तो किसी को उपदेश देने की

---

७९. ''यदि तीर्थकरशिष्यत्वाद् तद्वेषस्तव प्रमाणं तर्हि तत एव हेतोस्तदुपदोशोऽपि भवतः प्रमाण-मेव। न हि गुरूपदेशमतिक्रम्य प्रवर्तमानः शिष्योऽभीष्टार्थसाधको भवति। परमगुरूपदेशश्चैवं वर्तते-निरुपमधृतिसंहननाद्यतिशयरहितेनाचेलकेन नैव भवितव्यम्। तत् किं त्वमित्थं गुरू-पदेशबाह्येन नाग्न्येनात्मानं विगोपयसीति?'' हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५८५।

८०. ''इह यथा रोगी वैद्यस्योपदेशं करोति, तत्करणमात्रेणैव च रोगाद् विमुच्यते न पुनरसौ तद्वेषं करोति, नापि तच्चरितमाचरति, न च तत् कुर्वाणोऽप्यसौ प्रगुणीभवति --- तैनैव प्रकारेण जिन-वैद्यस्यादेशं कुर्वाणस्तद्वेषचरिते अनाचरन्नपि कर्मरोगादपैति वियुज्यते, न पुनस्तेषामादेशम-कुर्वाणस्तन्नेपथ्य-चरितबिभ्राणोऽपि तस्माद् वियुज्यते, केवलं तद्योग्यता-रहितत्वान्नेपथ्य-चरिताम्यां प्रवर्तमान उन्मादादिभाजनभेव भवतीति।'' हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५८६-८७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आवश्यकता रहेगी, न दीक्षा देने की। (हेम.वृत्ति / विशे.भा. / गा.२५८८-८९)। इसलिए जैसे तुम्हें यह मान्य है कि तीर्थंकरों के साथ लिंग और चारित्र को छोड़कर शेष अतिशयों की अपेक्षा शिष्यों का सर्वसाधर्म्य नहीं हो सकता, अपितु किंचित् ही साधर्म्य हो सकता है, वैसे ही हमें यह मान्य है कि लिंग और चारित्र की अपेक्षा भी कुछ ही साधर्म्य होता है, सर्वसाधर्म्य नहीं। उदाहरणार्थ, लिंग की अपेक्षा भी केवल केशलोच का साधर्म्य होता है, अचेलत्व का नहीं और चारित्र की अपेक्षा एषणीय आहार के परिभोग, अनियतवास आदि की समानता होती है, पाणिपात्रभोजित्व की नहीं, क्योंकि हमलोगों में अतिशय का अभाव होने से ये धर्म हमारे योग्य नहीं हैं।''[८१]

२

दिगम्बरमत को निह्नवमत (मिथ्यामत) सिद्ध करने की चेष्टा

उपर्युक्त दृष्टान्तों और युक्तियों से श्वेताम्बराचार्यों ने तीर्थंकर के शिष्य-प्रशिष्यों को तीर्थंकरलिंग (अचेललिंग) ग्रहण करने के अयोग्य बतलाया है और इससे यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि दिगम्बरजैन मुनि वज्रवृषभनाराच-संहनन आदि योग्यताओं से रहित पुरुषों के लिए निषिद्ध जिनलिंग (अचेललिंग) धारण करते हैं, अतः जिनाज्ञा के विरुद्ध आचरण करने से उनका मत जिनोक्तमत नहीं है, अपितु निह्नवमत अर्थात् जिनोपदेश-विपरीत स्वकल्पित मिथ्यामत है।

श्वेताम्बराचार्यों ने वस्त्रपात्रलब्धिमान् सर्वोच्च जिनकल्पिक साधु को भी मुख-वस्त्रिका और ऊननिर्मित रजोहरण, इन दो उपकरणों का धारी बतलाया है और तीर्थंकरों को भी एक देवदूष्य (वस्त्र) कन्धे पर डालकर प्रव्रजित होनेवाला कहा है। किन्तु बोटिक शिवभूति जो श्वेताम्बरसाधु का वेश धारण किये हुए था, मुखवस्त्रिकादि समस्त उपकरणों का परित्याग कर नग्न हो जाता है। तब गुरु आर्यकृष्ण कहते हैं—

''यदयं यस्त्वया सर्वथोपकरणत्यागः कृतः स दृष्टान्तीकृतानां तीर्थंकर-जिनकल्पिकादीनामपि न दृश्यते, केवलं नूतनः कोऽपि त्वदीय एवायं मार्ग इति।'' (हेम.वृत्ति/विशे.भा./गा.२५-८४)।

---

८१. ''यथा जिनेन्द्रैः सह 'निरुवमधिइसंघयणा चउनाणाइसयसत्तसंपण्णा' (विशे.भा./गा.२५८१) इत्यादिना ग्रन्थेन प्रतिपादितैर्लिङ्गाच्चरिताच्च शैषैरतिशयैः सर्वसाधार्म्यं नाभिमतं भवतः, किं तर्हि? किञ्चित् साधर्म्यमेव, तथा तेनैव प्रकारेण लिङ्गेन चरितेन च किञ्चित् साधर्म्यमेव तैः सहाभिमतमस्माकं, न तु सर्वसाधर्म्यम्। तच्च साधर्म्यं लिङ्गतो लोचकरणमात्रेण न पुनरचेलत्वेन, चरित्रेण त्वेषणीयाहार-परिभोगाऽनियतवासादिना, न तु पाणिभोजित्वेन, निरतिशयत्वेन तदयोग्यत्वादस्मदादीनाम्।'' हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५९०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

अनुवाद—"जो तुमने यह समस्त उपकरणों का त्याग कर दिया है, वह उन तीर्थंकरों और जिनकल्पिकों में भी दिखायी नहीं देता, जिनके लिंग को तुमने अनुकरणीय बतलाया है। अतः यह तुम्हारा अपना ही कोई नया मार्ग है।"

नया मार्ग चलानेवाले को ही श्वेताम्बराचार्यों ने 'निह्नव' कहा है।[८२] और 'बोटिक' नाम से अभिहित किये जानेवाले दिगम्बरों को उन्होंने उपर्युक्त कारण से नवीनमत-प्रवर्तक कहकर श्वेताम्बर साधुओं के वेश की अपेक्षा वेश (द्रव्यलिंग) से भी भिन्न, सर्वापलापी, महामिथ्यादृष्टि बोटिकनिह्नव कहा है—"**अष्टमं नगरं द्रव्यलिङ्गमात्रेणापि भिन्नानां सर्वापलापिनां महामिथ्यादृशां वक्ष्यमाणानां बोटिकनिह्नवानां लाघवार्थमुत्पत्ति-स्थानमुक्तम्।**" (हेम. वृत्ति/विशे. भा./गा. २३०३)।

श्री जिनभद्रगणी ने श्वेताम्बर-मान्य धर्म को ही महावीरप्रणीत धर्म मानकर दिगम्बरमत को महावीर द्वारा उपदिष्ट मत, लिंग (वेश) और चर्या से भिन्नमत, भिन्नलिंग और भिन्नचर्यावाला मिथ्यामत कहा है—"**भिन्नमयलिंगचरिया मिच्छद्दिट्ठि त्ति बोडिया-ऽभिमया।**" (विशे. भा./गा. २६२०)।

३

हीनसंहननधारियों को भी तीर्थंकरलिंग-ग्रहण का उपदेश

इसके प्रमाण

तीर्थंकर अचेललिंगधारी होते हैं। अतः अचेललिंग ही तीर्थंकरलिंग या जिनलिंग है। श्री जिनभद्रगणी आदि श्वेताम्बराचार्यों ने तीर्थंकरों के शिष्यप्रशिष्यों को हीनसंहननधारी होने के कारण अचेललिंग के अयोग्य बतलाया है और इसी कारण उनके लिए तीर्थंकरलिंग निषिद्ध घोषित किया है। किन्तु यह मान्यता निम्नलिखित युक्तियों और प्रमाणों से मनगढ़न्त सिद्ध होती है—

३.१. महावीर का उपदेश पंचमकाल के जीवों के लिए भी

पंचमकाल में भगवान् महावीर का तीर्थ प्रवर्तमान है, जिससे सिद्ध है कि उनका उपदेश पंचमकाल के जीवों के लिए भी है। इसीलिए जीव पंचमकाल में सप्तम गुणस्थान तक आध्यात्मिक विकास कर सकता है। भगवान् महावीर ने एकमात्र अचेलकधर्म का उपेदश दिया है, यह श्वेताम्बरशास्त्रों से ही प्रमाणित है। इससे साबित होता है कि पंचमकाल के हीनसंहननधारी प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत मुनियों के लिए अचेललिंग का ही उपदेश दिया गया है, अर्थात् सर्वज्ञ ने उन्हें अचेललिंग ग्रहण करने योग्य माना है।

---

८२. देखिए, पादटिप्पणी ३०।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

३.२. अचेलकधर्म का उपदेश तीर्थंकरों के लिए नहीं

कोई भी तीर्थंकर धर्म का उपेदश तीर्थंकरों के लिए नहीं देता, क्योंकि वे स्वयंबुद्ध होते हैं। अतः भगवान् महावीर ने अचेलकधर्म का उपदेश साधारण पुरुषों के लिए ही दिया है। जिस भव में तीर्थंकरपर्याय उदय में आती है, उस भव के पूर्व तक तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध करनेवाले पुरुष भी साधारण ही होते हैं, क्योंकि वे पूर्वतीर्थंकर के उपदेश के अनुसार प्रवर्तन करके ही तीर्थंकरप्रकृति का बन्ध करते हैं। तथा केवल वज्रवृषभनाराच-संहननधारियों को महावीर ने अचेलक धर्म का उपदेश दिया है, यह भी सिद्ध नहीं होता, क्योंकि पंचमकाल के हीनसंहननधारी पुरुष भी उसी उपदेश के अनुसार प्रवर्तन करके सप्तमगुणस्थान तक आत्मोन्नति कर रहे हैं। भगवान् महावीर ने अचेलकधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म का उपदेश दिया ही नहीं है।

३.३. आस्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा के हेतु सब के लिए समान

चतुर्थकाल हो या पंचमकाल, भरतक्षेत्र हो या ऐरावत अथवा विदेह, उत्तमसंहननधारी हो या हीनसंहननधारी, तीर्थंकर हो या अतीर्थंकर, सर्वत्र-सर्वकाल सभी के कर्मों के आस्रव, बन्ध, संवर और निर्जरा के हेतु समान होते हैं। अर्थात् किसी को भी, कहीं भी, किसी भी काल में कर्मों का आस्रव होगा, तो मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से ही होगा और संवर होगा तो इनके ही अभाव से होगा। तथा इन कारणों के होने पर न तो उत्तमसंहननधारी आस्रव से बच सकता है, न हीनसंहनन-धारी। इसी प्रकार चौथे से सातवें गुणस्थान तक उत्तमसंहननधारी के तथा उसी भव में तीर्थंकर होनेवाले पुरुष के कर्मों का उपशम, क्षयोपशम या क्षय भी उन्हीं कारणों से होता है, जिनसे हीनसंहननधारी के कर्मों का होता है। चौथे गुणस्थान में इकतालीस कर्म-प्रकृतियों का संवर वज्रवृषभनाराचसंहननवाले में भी होता है और शेष संहनन-वालों में भी। अप्रत्याख्यानावरणकषाय के क्षयोपशम से दस प्रकृतियों के आस्रव का और प्रत्याख्यानावरण के क्षयोपशम से चार प्रकृतियों के आस्रव का निरोध वह पुरुष भी करता है, जो उसी भव में तीर्थंकर होनेवाला है, और वह भी जो नहीं होनेवाला है। क्षपकश्रेणी पर वज्रवृषभनाराच-संहननधारी ही आरूढ़ होते हैं। इस श्रेणी के विभिन्न गुणस्थानों में कर्मों के आस्रव और क्षय का क्रम तीर्थंकर होनेवाले मुनियों और सामान्य मुनियों में बिलकुल एक जैसा होता है। और कार्यकारण-व्यवस्था का यह नियम है कि समान कार्य की उत्पत्ति समान कारण से ही होती है। कारण के स्वरूप में अन्तर होने पर कार्य के स्वरूप में भी अन्तर होना अवश्यम्भावी है। बाह्यवेश परिग्रहात्मक और अपरिग्रहात्मक होता है, अतः उसका प्रभाव अन्तरंग परिणामों पर अनिवार्यतः पड़ता है। इस प्रकार आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, उपशम, क्षयोपशम, क्षय आदि समान कार्य के लिए समान आत्मपरिणाम और समान आत्मपरिणाम के लिए समान बाह्यलिंग

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

की अनिवार्यता सिद्ध होती है, जिससे यह निर्णय होता है कि हीनसंहननधारी में तीर्थंकर-गृहीत अचेललिंग धारण करने की योग्यता होती है, उसके ही माध्यम से वह सप्तम-गुणस्थान पर आरूढ़ हो पाता है, अतः हीनसंहननधारी केलिए जिनेन्द्र ने अचेललिंग-ग्रहण का निषेध नहीं, अपितु उपदेश किया है।

भगवती-आराधना के टीकाकार अपराजितसूरि तीर्थंकरगृहीत अचेललिंग को ही सभी मोक्षार्थियों के लिए ग्राह्य बतलाते हुए लिखते हैं—

"जिनानां प्रतिबिम्बं चेदमचेललिङ्गं। ते हि मुमुक्षवो मुक्त्युपायज्ञा यद् गृहीतवन्तो लिङ्गं तदेव तदर्थिनां योग्यमित्यभिप्रायः। यो हि यदर्थी विवेकवान् नासौ तदनुपायमादत्ते, यथा घटार्थी तुरिवेमादीन्। मुक्त्यर्थी च यतिर्न चेलं गृह्णाति मुक्तेरनुपायत्वात्। यच्चात्मनोऽभिप्रेतस्योपायस्तन्नियोगत उपादत्ते यथा चक्रादिकं, तथा यतिरपि अचेलताम्। तदुपायता च अचेलताया जिनाचरणादेव ज्ञानदर्शनयोरिव।" (वि.टी./भ.आ./गा. 'जिणपडिरूवं'/८४/पृ.१२०)।

अनुवाद–"अचेललिंग जिनदेवों का प्रतिबिम्ब है। जिनेन्द्रदेव मोक्ष के अभिलाषी थे और मोक्ष के उपाय को जानते थे। अतः उन्होंने जिस लिंग को धारण किया, वही सभी मोक्षार्थियों के योग्य है। क्योंकि जो विवेकवान् होता है, वह जिस वस्तु को चाहता है, उसे प्राप्त न करानेवाले उपाय को नहीं अपनाता। जैसे घट चाहनेवाला मनुष्य तुरी, वेमा आदि को ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वे घटनिर्माण के साधन नहीं हैं (अपितु, पटनिर्माण के साधन हैं), वैसे ही मुक्ति चाहनेवाला मुनि वस्त्र ग्रहण नहीं करता, क्योंकि वह मुक्ति का उपाय नहीं है। किन्तु, जो स्वाभिलषित वस्तु का उपाय होता है, उसे विवेकवान् मनुष्य नियम से ग्रहण करता है, जैसे घट चाहनेवाला चक्र, दण्ड आदि को। वैसे ही मोक्षार्थी मुनि भी अचेलता को नियम से अपनाता है। और अचेलता सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान के समान मुक्ति का उपाय है, यह जिनेन्द्रदेव के ही आचरण से सिद्ध है।"

अपराजितसूरि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि तीर्थंकरमार्गानुयायी गणधरों तथा उनके शिष्यों ने तीर्थंकरगृहीत अचेललिंग को ग्रहण किया था—

"तीर्थकराचरितत्वं च गुणः। संहननबलसमग्रा मुक्तिमार्गप्रख्यापनपरा जिनाः सर्व एवाचेला भूता भविष्यन्तश्च। यथा मेर्वादिपर्वतगताः प्रतिमास्तीर्थकरमार्गानुयायिनश्च गणधरा इति तेऽप्यचेलास्तच्छिष्याश्च तथैवेति सिद्धमचेलत्वम्।" (वि.टी./भ.आ./गा.'आचेलक्कुद्देसिय'/४२३/पृ.३२३)।

अनुवाद–"तीर्थंकरों के मार्ग का अनुसरण अचेलता से ही संभव है। संहनन और बल से परिपूर्ण तथा मोक्षमार्ग का उपदेश देने में तत्पर सभी तीर्थंकर अचेल

थे तथा भविष्य में भी अचेल ही होंगे। जैसे मेरु आदि पर्वतों पर विराजमान जिनप्रतिमाएँ अचेल हैं और तीर्थंकरों के मार्ग के अनुयायी गणधर अचेल होते हैं, वैसे ही उनके शिष्य भी उन्हीं की तरह अचेल होते हैं। इस प्रकार अचेलता ही मोक्ष का मार्ग सिद्ध होती है।''

इन प्रमाणों से श्वेताम्बराचार्यों का यह कथन मनगढ़न्त सिद्ध होता है कि हीनसंहननधारी पुरुष तथा तीर्थंकरों के वज्रवृषभनाराच-संहननधारी शिष्य तीर्थंकरगृहीत लिंग और चर्या के अयोग्य होते हैं, इस कारण उनके लिए उक्त लिंग और चर्या के ग्रहण का निषेध किया गया है।

३.४. पञ्चमकालीन प्रमत्त-अप्रमत्तसंयतों को भी नाग्न्यपरीषह

तत्त्वार्थसूत्र की रचना श्वेताम्बरशास्त्रोक्त जिनकल्प के व्युच्छेद के बाद हुई है, अतः उसमें जिनकल्पियों के आचार का वर्णन नहीं हो सकता। उसमें जिनकल्प और स्थविरकल्प का उल्लेख भी नहीं है। उस पर लिखे गये **तत्त्वार्थभाष्य** में भी नहीं है। इसलिए उसमें वर्णित आचार न तो जिनकल्पिकों का माना जा सकता है, न स्थविरकल्पिकों का। हाँ, उसमें ऐसे मुनिधर्म का भी वर्णन है, जो केवल चतुर्थकाल में होनेवाले वज्रवृषभनाराच आदि तीन उत्तम-संहननधारियों के लिए ही संभव है, जैसे उपशमश्रेणी और क्षपकश्रेणी पर आरूढ़ होना तथा उक्त श्रेणियों में संभव परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यातचारित्र का आचरण करना। इन श्रेणियों से नीचे के गुणस्थानों में ग्रहण करने योग्य बतलाया गया आचार पंचमकाल के हीनसंहननधारी श्रावकों और मुनियों से भी सम्बन्धित है। श्री जिनभद्रगणी ने जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद जिन दस पदार्थों का व्युच्छेद बतलाया है, उनमें तत्त्वार्थसूत्रवर्णित संवर के उपायों में से केवल उपर्युक्त तीन प्रकार के चारित्र ही शामिल हैं, शेष दो चारित्र तथा गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा और परीषहजय का व्युच्छेद नहीं बतलाया है। इसका तात्पर्य यह है कि बाईस परीषह पंचमकाल में हीनसंहननधारी मुनियों को भी होते हैं। उनमें एक नाग्न्यपरीषह भी है, जिससे सिद्ध होता है कि तत्त्वार्थसूत्र के अनुसार हीनसंहननधारी मुनि भी जिनलिंगधारी होते हैं। तत्त्वार्थसूत्र में नाग्न्य के मुख्य और उपचरित भेद नहीं किये गये हैं, तत्त्वार्थभाष्य में भी ऐसा ही है। इससे स्पष्ट है कि तत्त्वार्थसूत्र-कार को वास्तविक नाग्न्य ही मान्य है, उपचरित नहीं।

३.५. हीनसंहननधारी को भी नग्न होने पर ही शीतादिपरीषह संभव

जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है, तत्त्वार्थसूत्र में हीनसंहननधारी मुनि को कर्मनिर्जरा के लिए शीतादि बाईसपरीषहों पर विजय प्राप्त करने का उपदेश

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

दिया गया है। उनमें शीत, उष्ण, दंशमशक आदि परीषह नग्नमुनि को ही हो सकते हैं, वस्त्रधारी को नहीं। भगवती-आराधना की 'आचेलक्कुद्देसिय' गाथा (४२३) की टीका में अपराजितसूरि 'उत्तराध्ययन' के परीषहसूत्रों का निर्देश करते हुए कहते हैं—

"**इदं चाचेलताप्रसाधनपरं शीतदंशमशकतृणस्पर्शपरीषहसहनवचनं परीषहसूत्रेषु। न हि सचेलं शीतादयो बाधन्ते।**" (वि.टी./भ.आ./पृ.३२६)।

अनुवाद-"(उत्तराध्ययन के) परीषहसूत्रों में जो शीत, दंशमशक, तृणस्पर्श आदि परीषहों के सहन करने का कथन है, उससे सिद्ध होता है कि साधु को अचेल (नग्न) रहने का ही उपदेश दिया गया है, क्योंकि वस्त्रधारी को शीतादि-परीषह नहीं होते।"

आचारांग के "**अदुवा तत्थ परक्कमंतो भुज्जो अचेलं तणफासा फुसन्ति, सीयफासा फुसन्ति**" इत्यादि सूत्र (आचा./१/७/७/२२०-२२१) की वृत्ति में शीलाङ्काचार्य लिखते हैं—"**अचेलतया शीतादिस्पर्शं सम्यगधिसहेतेति**" अर्थात् अचेल (नग्न) रहने से शीतादिस्पर्श को भलीभाँति सहन किया जाता है। (देखिए, आगे अध्याय ३ / प्रकरण १ / शीर्षक ६)।

इन वचनों से भी यही प्रतिपादित होता है कि हीनसंहननधारी को भी आगम में जिनलिंग धारण करने योग्य बतलाया गया है।

३.६. आचारांग में अचेलत्व से संयम-शिष्टता की हानि अमान्य, ह्री-कुत्साभयत्याग प्रशंसित

श्वेताम्बरागम स्थानांगसूत्र में कहा गया है कि साधु को तीन कारणों से ही वस्त्र धारण करना चाहिए-१. ह्रीप्रत्यय से (लज्जानुभव होने के कारण), २. जुगुप्सा-प्रत्यय से (लोकनिन्दा के भय से) तथा ३. परीषहप्रत्यय से (परीषह-सहन में असमर्थ होने के कारण)-"**तिहिं ठाणेहिं वत्थं धारेज्जा, तं जहा-हिरिपत्तियं दुगुंछापत्तियं परीसहपत्तियं।**" (स्था.सू./३/३/३४७/१५०)।

जिनभद्रगणी जी का कथन है कि "जो जिनकल्प के अयोग्य होते हैं उनमें ये तीनों कारण अवश्य होते हैं (और पंचमकाल में सभी जिनकल्प के अयोग्य हैं) अतः उन्हें वस्त्र अवश्य धारण करना चाहिए। भले ही कुत्सा (जुगुप्सा = लोकनिन्दा)[८३] और परीषह से बचने के लिए धारण न किये जायँ, पर ह्री अर्थात् लज्जा, जो कि संयम है, उसके पालन के लिए अवश्य धारण किये जायँ। अन्यथा शीतादि से बचने

८३. "जुगुप्सा लोकविहिता निन्दा।" हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा.२५५३-५७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

के लिए जो अग्निप्रज्वलन आदि कार्य किये जायेंगे, उनसे जीवहिंसारूप महान् असंयम होगा।''[८४]

और प्रवचनपरीक्षाकार कहते हैं-''यदि शीतादिसहन करने के लिए वस्त्रधारण किये जाते हैं, तो किये जायँ, किन्तु अवाच्य (नाम भी न लेने योग्य) अवयव (शिश्न) को छिपाने के लिए तो धारण करना ही चाहिए।''[८५]

किन्तु ये मान्यताएँ आचारांग-वर्णित मान्यताओं के विपरीत हैं। आचारांग में श्रमणाचार के जिनकल्प और स्थविरकल्प-रूप भेद नहीं किये गये हैं।[८६] उसमें साधुओं के सामान्य आचार का वर्णन है। उसमें सामान्य-साधुओं में से ही किसी में लज्जा का सद्भाव, किसी में अभाव, किसी को परीषह सहने में समर्थ, किसी को असमर्थ बतलाते हुए उन्हें योग्यतानुसार वस्त्रधारण करने अथवा अचेल रहने का उपदेश दिया गया है, किन्तु अचेलत्व के गुण दर्शाते हुए जोर अचेल रहने पर ही दिया गया है। यह कहीं भी नहीं कहा गया है कि ''वर्तमान में अचेललिंग धारण करने की योग्यता समाप्त हो गयी है, इसलिए सभी साधुओं को वस्त्र धारण करना चाहिए, अचेल किसी को भी नहीं होना चाहिए।''

स्थानांग और **उत्तराध्ययनसूत्र** में सचेलत्व की अपेक्षा अचेलत्व की श्रेष्ठता का प्रति-पादन कर अचेलत्व को ही चुनने की प्रेरणा दी गई है। (इन ग्रन्थों के उद्धरण आगे तृतीय अध्याय के प्रथम प्रकरण (शीर्षक ६,७) में द्रष्टव्य हैं)।

इस प्रकार श्वेताम्बरागम आचारांग, स्थानांग और उत्तराध्ययन में अचेलत्व को श्रेष्ठ एवं ग्राह्य बतलाया गया है, जिससे सिद्ध है कि इन श्वेताम्बर-आगमों में अचेलत्व को न तो संयम का घातक माना गया है, न शिष्टता-सभ्यता अथवा लोकमर्यादा के विरुद्ध स्वीकार किया गया है, बल्कि जो मुक्त्यर्थी साधु नग्न होने पर लज्जा का अनुभव नहीं करता तथा कुत्सा (लोकनिन्दा) से भयभीत नहीं होता, उसे प्रशंसनीय

८४. जिणकप्पाजोग्गाणं ही कुच्छा-परीसहा जओऽवस्सं।
ही लज्ज त्ति व सो संजमो तदत्थं विसेसेण॥ २६०३॥ विशेषावश्यकभाष्य।
''जिनकल्पायोग्यानां साधूनां ह्री-कुत्सा-परीषहलक्षणं वस्त्रधारणकारणं पूर्वाभिहितस्वरूपमवश्यमेव सम्भवति ततो धरणीयमेव वस्त्रम्। यदि वा कुत्सा-परीषहार्थं तद् न ध्रियते तथापि ह्रीर्लज्जा स च संयमस्तदर्थं तावद् विशेषेणैव वस्त्रं धरणीयम्। अन्यथाऽग्निज्वलनादिना बृहदसंयममापत्तेरिति।'' हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा. २६०३।

८५. ''अथ शीतादिसहनार्थं वस्त्रं परिह्रियते इति चेत् परिह्रियतां नाम तदर्थं, परमवाच्यावयवगोपननिमित्तं तु धर्त्तव्यमेव।'' प्रवचनपरीक्षा / १ / २ / ३१ / पृ.९५।

८६. **आचारांग** के वृत्तिकार शीलांकाचार्य (९-१०वीं शती ई०) ने वृत्ति में अपनी ओर से ये भेद दर्शाने का प्रयत्न किया है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

माना गया है, क्योंकि यह सच्चे वैराग्य का लक्षण है, जो मोक्षमार्ग का प्राण है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री जिनभद्रगणी आदि श्वेताम्बराचार्यों ने आगम के नाम पर अचेलत्व को जो लज्जा, कुत्सा एवं असंयम का हेतु और लोकमर्यादा के विरुद्ध बतलाकर साधु के लिए वस्त्रधारण को अनिवार्य ठहराया है, वह आगमवचन नहीं है, अपितु उनका मनगढ़न्त दर्शन है।

३.७. वैराग्यपरिणत ज्ञानी नग्नमुनि का लिंगोत्थान संभव नहीं

जिनभद्रगणी-क्षमाश्रमण आदि आचार्यों ने साधु के लिए वस्त्रधारण आवश्यक होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह बतलाया है कि स्त्रीदर्शन आदि से साधु का लिंगोत्थान संभव है। नग्न रहने पर उसका लोगों की दृष्टि में आना अनिवार्य है। इससे मुनि और धर्म की निन्दा तथा दर्शक स्त्रियों में भी कामविकार की उत्पत्ति होगी, जो निन्दनीय है। इसे रोकने के लिए साधु को वस्त्रधारण करना अनिवार्य है।[८७]

श्री जिनभद्रगणी आदि का यह कथन एकान्तवाद से दूषित है। यह स्थिति उन्हीं साधुओं में संभव है, जो वैराग्यपरिणत, ज्ञानी और अन्तर्मन से मुक्त्यर्थी नहीं हैं, अपितु जिनके मन में भोगाकांक्षा अवदमित रूप में विद्यमान है। और ऐसे साधुओं में भी लोकभय के कारण सार्वजनिक स्थान में लिंगोत्थान की अत्यल्प संभावना होती है। किन्तु जो साधु वैराग्यपरिणत, ज्ञानी और अन्तर्मन से मुक्ति के अभिलाषी हैं, वे प्रतिपल अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा में यत्नशील होते हैं। उनके लिंगोत्थान की एकान्त में भी संभावना नहीं होती, सार्वजनिक स्थान की तो बात ही दूर।

वर्तमान में दिगम्बरमुनियों के अनेक संघ विद्यमान हैं, जिन्हें स्त्रियाँ आहारदान करती हैं, उनके दर्शन करती हैं, प्रवचन सुनती हैं, किन्तु युवा मुनियों के भी अंगों में कामविकार नहीं देखा जाता। नग्नावस्था में मुनि के मन में कामविकारोत्पत्ति-निमित्तक लोकनिन्दा का भय भी सक्रिय रहता है और यह मनोविज्ञान का नियम है कि भय की अवस्था में कामविकार की उत्पत्ति असंभव हो जाती है। हाँ, सवस्त्र अवस्था

---

८७. क—वे उव्वेऽवायडे वाइये हीखद्दे पजणणे चेव।
तेसिं अणुग्गहट्ठा लिंगुदयट्ठा य पट्टो ओ॥ ५॥
"तत्र प्रजनने मेहने 'वेउव्वित्ति' वैक्रिये विकृते तथा अप्रावृतेऽनावृते, वातिकेचोत्सूनत्व-भाजने, ह्रिया लज्जया सत्या खड्डे बृहत्प्रमाणे 'लिंगुदयट्ठत्ति' स्त्रीदर्शने लिङ्गोदयरक्षणार्थं च पटश्चोलपट्टो मत इति।" हेम.वृत्ति / विशेषावश्यकभाष्य / गा. २५७५-७९।

ख—"एवमुक्तप्रकारेण जिनकल्पिकाः स्थविरकल्पिकाश्चेत्युभयेऽपि प्रागुक्तगुणहेतवे वस्त्राणि बिभ्रति। अन्यथा प्रवचनखिंसादयः स्त्रीजनस्यात्मनश्च मोहोदयादयो बहवो दोषाः स्युः।" प्रवचनपरीक्षा / १ / २ / ३१/ पृ.९५।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में मुनि कामविकारजन्य लोकनिन्दा के भय से मुक्त हो जाता है, अतः इस अवस्था में अजितेन्द्रिय मुनि के मन में कामविकार की उत्पत्ति संभव है। अपराजित सूरि ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य का बड़े ही सुन्दर दृष्टान्त द्वारा उद्घाटन किया है। वे कहते हैं—"जैसे सर्पों से भरे जंगल में विद्या-मन्त्र आदि से रहित पुरुष बड़ी सावधानी से चलता है, वैसे ही जो अचेल होता है वह इन्द्रियों को वश में करने का दृढ़ प्रयत्न करता है, अन्यथा शरीर में विकार उत्पन्न होने पर लज्जित होने की नौबत आ सकती है।"[८८] वे आगे लिखते हैं—"अचेलता में चित्त की विशुद्धता को प्रकट करने का गुण है। जो शरीर को लँगोटी आदि से ढँक लेते हैं, उनके चित्त की विशुद्धि का ज्ञान नहीं हो पाता। किन्तु जो अचेल रहते हैं, उनके शरीर की निर्विकारता आन्तरिक विरागता को प्रकट कर देती है।"[८९]

यह नाग्न्यपरीषह को जीतने का लक्षण है। नाग्न्यपरीषहजय के वैराग्यभावनारूप मनोवैज्ञानिक उपाय को भट्ट अकलंकदेव ने तत्त्वार्थराजवार्तिक में रेखांकित किया है। (देखिये, अगला शीर्षक)। तत्त्वार्थसूत्र में हीनसंहननधारी मुनियों के लिए नाग्न्यपरीषहजय का उपदेश है। इससे सिद्ध है कि लिंगोत्थान की संभावना के नाम से मुनियों के लिए वस्त्रधारण को अपरिहार्य बतलाना आगमवचन नहीं है, अपितु कल्पितवचन है।

३.८. नपुंसक बनाये जाने की धारणा हास्यास्पद

श्वेताम्बराचार्यों की यह दृढ़ धारणा है कि श्रावक हो या साधु , वस्त्रधारी हो या नग्न, निमित्त मिलने पर उसका लिंगोत्थान हुए बिना नहीं रह सकता। अतः उसे छिपाने के लिए वे साधु का वस्त्रधारण अनिवार्य मानते हैं। इसलिए दिगम्बर मुनि नग्न रहने पर भी जो इस दोष से मुक्त रहते हैं, उसके विषय में कुछ नये श्वेताम्बर साधुओं की यह धारणा है कि उन्हें ओषधिविशेष का रस पिलाकर नपुंसक बना दिया जाता है, इसी कारण उनके पुरुषांग में विकार उत्पन्न नहीं होता।

एक 'शिशु आचार्य' उपाधिधारी श्री नरेन्द्रसागर सूरि नाम के वर्तमान श्वेताम्बराचार्य ने **'क्या दिगम्बर प्राचीन हैं'** नामक लघु पुस्तिका में पृष्ठ २० पर लिखा है—

---

८८. "सर्पाकुले वने विद्यामन्त्रादिरहितो यथा पुमान् दृढप्रयत्नो भवति एवमिन्द्रियनियमने अचेलोऽपि प्रयतते। अन्यथा शरीरविकारो लज्जनीयो भवेदिति।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा. 'आचेलक्कुद्देसिय' / ४२३ / पृ.३२१।

८९. "चेतोविशुद्धिप्रकटनं च गुणोऽचेलतायाम्। कौपीनादिना प्रच्छादयतो भावशुद्धिर्न ज्ञायते। निश्चेलस्य तु निर्विकारदेहतया स्फुटा विरागता।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा./ ४२३ / पृ.३२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

में मुनि कामविकारजन्य लोकनिन्दा के भय से मुक्त हो जाता है, अतः इस अवस्था में अजितेन्द्रिय मुनि के मन में कामविकार की उत्पत्ति संभव है। अपराजित सूरि ने इस मनोवैज्ञानिक सत्य का बड़े ही सुन्दर दृष्टान्त द्वारा उद्घाटन किया है। वे कहते हैं—"जैसे सर्पों से भरे जंगल में विद्या-मन्त्र आदि से रहित पुरुष बड़ी सावधानी से चलता है, वैसे ही जो अचेल होता है वह इन्द्रियों को वश में करने का दृढ़ प्रयत्न करता है, अन्यथा शरीर में विकार उत्पन्न होने पर लज्जित होने की नौबत आ सकती है।"[८८] वे आगे लिखते हैं—"अचेलता में चित्त की विशुद्धता को प्रकट करने का गुण है। जो शरीर को लँगोटी आदि से ढँक लेते हैं, उनके चित्त की विशुद्धि का ज्ञान नहीं हो पाता। किन्तु जो अचेल रहते हैं, उनके शरीर की निर्विकारता आन्तरिक विरागता को प्रकट कर देती है।"[८९]

यह नाग्न्यपरीषह को जीतने का लक्षण है। नाग्न्यपरीषहजय के वैराग्यभावनारूप मनोवैज्ञानिक उपाय को भट्ट अकलंकदेव ने तत्त्वार्थराजवार्तिक में रेखांकित किया है। (देखिये, अगला शीर्षक)। तत्त्वार्थसूत्र में हीनसंहननधारी मुनियों के लिए नाग्न्यपरीषहजय का उपदेश है। इससे सिद्ध है कि लिंगोत्थान की संभावना के नाम से मुनियों के लिए वस्त्रधारण को अपरिहार्य बतलाना आगमवचन नहीं है, अपितु कल्पितवचन है।

३.८. नपुंसक बनाये जाने की धारणा हास्यास्पद

श्वेताम्बराचार्यों की यह दृढ़ धारणा है कि श्रावक हो या साधु , वस्त्रधारी हो या नग्न, निमित्त मिलने पर उसका लिंगोत्थान हुए बिना नहीं रह सकता। अतः उसे छिपाने के लिए वे साधु का वस्त्रधारण अनिवार्य मानते हैं। इसलिए दिगम्बर मुनि नग्न रहने पर भी जो इस दोष से मुक्त रहते हैं, उसके विषय में कुछ नये श्वेताम्बर साधुओं की यह धारणा है कि उन्हें ओषधिविशेष का रस पिलाकर नपुंसक बना दिया जाता है, इसी कारण उनके पुरुषांग में विकार उत्पन्न नहीं होता।

एक 'शिशु आचार्य' उपाधिधारी श्री नरेन्द्रसागर सूरि नाम के वर्तमान श्वेताम्बराचार्य ने **'क्या दिगम्बर प्राचीन हैं'** नामक लघु पुस्तिका में पृष्ठ २० पर लिखा है—

---

८८. "सर्पाकुले वने विद्यामन्त्रादिरहितो यथा पुमान् दृढप्रयत्नो भवति एवमिन्द्रियनियमने अचेलोऽपि प्रयतते। अन्यथा शरीरविकारो लज्जनीयो भवेदिति।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा. 'आचेलक्कुद्देसिय' / ४२३ / पृ.३२१।

८९. "चेतोविशुद्धिप्रकटनं च गुणोऽचेलतायाम्। कौपीनादिना प्रच्छादयतो भावशुद्धिर्न ज्ञायते। निश्चेलस्य तु निर्विकारदेहतया स्फुटा विरागता।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / गा./ ४२३ / पृ.३२२।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

"उनके (दिगम्बर जैन मुनियों के) ही सहवासियों से उनकी कमजोर बातें जानने को मिली हैं कि जैसे नसबन्दी किये हुए पुरुष को कामोद्दीपक पदार्थ उपस्थित होने पर भी उनकी इन्द्रियाँ उत्तेजित नहीं होती हैं, उसी तरह प्रभावक कहलाते दिगम्बर मुनियों को पहले से ही वनस्पति के रस पिलाकर उनको पुरुषत्वनाशक स्थितिवाले बना देते हैं। इस बात में कितना रहस्य है, उसकी बुद्धिशाली को ही परीक्षा करनी चाहिए।"

आचार्य जी का यह कथन बाल-उक्तियों के समान हास्यास्पद है। पहली बात तो यह है कि परिवारनियोजन के लिए जो पुरुष अपनी नसबन्दी कराते हैं, उससे वे नपुंसक नहीं बनते, चिकित्साविज्ञान इसे प्रमाणित करता है। यदि पुरुष नपुंसक बनता, तो कोई भी पुरुष नसबंदी के लिए तैयार नहीं होता, सभी पुरुष अपनी पत्नी की ही नसबन्दी कराते।

दूसरी बात यह है कि यदि दिगम्बर मुनियों को वनस्पति का रस पिलाकर नपुंसक बनाया जाता होता, तो अपराजित सूरि यह न लिखते कि "जो अचेल होता है, वह इन्द्रियों को वश में करने का दृढ़ प्रयत्न करता है, अन्यथा शरीर में विकार उत्पन्न होने पर लज्जित होने की नौबत आ सकती है" क्योंकि नपुंसक बना दिये जाने पर शरीर में विकार उत्पन्न होने की नौबत आ ही नहीं सकती। किन्तु उन्होंने ऐसा लिखा है, इससे स्पष्ट है कि दिगम्बर जैन मुनियों को वनस्पति का रस पिलाकर नपुंसक बनाये जाने की बात कपोलकल्पित है।

तीसरी बात यह है कि स्त्री के दर्शनचिन्तन आदि से पुरुषांग में जो विकार उत्पन्न हो सकता है, उसे वैराग्यभावना द्वारा उत्पन्न न होने देने को ही तत्त्वार्थसूत्र में नाग्न्यपरीषहजय और स्त्रीपरीषहजय कहा गया है, जिसका स्पष्टीकरण टीकाकारों ने इस प्रकार किया है—

"**नाग्न्यमभ्युपगतस्य स्त्रीरूपाणि नित्याशुचिबीभत्सकुणपभावेन पश्यतो वैराग्यभावनावरुद्धमनोविक्रियस्याऽसम्भावितमनुष्यत्वस्य नाग्न्यदोषासंस्पर्शनात् परीषहजयसिद्धिरिति जातरूपधरणमुत्तमं श्रेयः प्राप्तिकारणमित्युच्यते। इतरे पुनर्मनोविक्रियां निरोद्धुमसमर्थास्तत्पूर्विकाङ्गविकृतिं निगूहितकामाः कौपीन-फलक-चीवराद्यावरणमातिष्ठन्ते अङ्गसंवरणार्थमेव तन्न कर्मसंवरकारणम्।**" (तत्त्वार्थराजवार्तिक / ९ / ९/१०)।

अनुवाद—"जिसने नाग्न्यव्रत स्वीकार किया है, वह स्त्रीरूप को नित्य अपवित्र, बीभत्स शव-कंकाल के समान समझता हुआ वैराग्यभावना से मनोविकार को अवरुद्ध करता है, जिससे नग्नता में दोष का स्पर्श नहीं हो पाता (पुरुषाङ्ग में विकार उत्पन्न

नहीं होता)। इसे नाग्न्यपरीषहजय कहते हैं। अतः जातरूप को धारण करना उत्तम है तथा श्रेयःप्राप्ति का कारण है। जो अन्य साधु मनोविकार को रोकने में असमर्थ होते हैं, वे तज्जन्य अंगविकार को छिपाने के लिए लँगोटी, अर्द्धफालक, चीवर आदि धारण करते हैं। इससे केवल अंग का संवरण (आच्छादन) होता है, कर्मों का संवर नहीं।''

''एकान्तेष्वारामभवनादिप्रदेशेषु नवयौवनमदविभ्रममदिरापानप्रमत्तासु प्रमदासु बाधमानासु कूर्मतेन्द्रियविकारस्य ललितस्मित-मृदुकथित-सविलासवीक्षण-प्रहसनमद-मन्थरगमन-मन्मथशरव्यापार-विफलीकरणस्य स्त्रीबाधापरिषह-सहनमवगन्तव्यम्।'' (स.सि./९/९)।

अनुवाद—''एकान्त उद्यान, भवन आदि में बैठे हुए मुनि के ब्रह्मचर्य को जब नवयौवन के मद से मत्त-हावभाववाली तथा मदिरापान से प्रमत्त प्रमदाएँ भंग करने का प्रयत्न करें, तब जैसे कछुआ अपने अंगों को संवृत कर लेता है, वैसे ही मुनि का अपने इन्द्रियविकार को रोक कर प्रमदाओं के मधुर स्मित (मुस्कान), मीठी बातें, हावभावपूर्वक देखना-हँसना, मदमाती चाल आदि कामबाणों के प्रहार को विफल कर देना स्त्रीपरीषहजय कहलाता है।''

इन व्याख्यानों में आचार्यों ने कहा है कि मुनि के मन में काम-विकार उत्पन्न हो सकता है, जिससे उसके पुरुषांग में भी विकार संभव है, अतः मुनि को उसे वैराग्यभावना से रोकना चाहिए।

यदि मुनि को वनस्पति-विशेष का रस पिलाकर नपुंसक बनाने का विधान होता, तो कामविकार को वैराग्यभावना से रोकने का उपदेश न दिया जाता, क्योंकि तब पुरुषांग (लिंग) में विकार की उत्पत्ति संभव ही न होती और उसके फलस्वरूप नाग्न्य-परीषह एवं स्त्रीपरीषह को परीषहों में शामिल भी न किया जाता। इसके बदले चरणानुयोग के ग्रन्थों में मुनिदीक्षाविधि के अन्तर्गत यह उल्लेख किया जाता कि दीक्षार्थी को दीक्षा के पूर्व अमुक-अमुक ओषधि का रस पिलाकर नपुंसक बना दिया जाय। किन्तु यह उल्लेख किसी भी दिगम्बरग्रन्थ में नहीं है।

श्वेताम्बरमान्य 'आचारांग' और 'स्थानांग' में भी पूर्ण अचेलकता (नग्नता) को सर्वश्रेष्ठ बतलाया गया है[९०] और उनमें किसी भी मुनि को न तो जिनकल्पी कहा गया है, न किसी को वस्त्रलब्धि प्राप्त होने का कथन है। अतः आचारांगोक्त नग्नवेश अपनानेवाले मुनियों के सामने भी पुरुषांग में विकारोत्पत्ति की समस्या का प्रसंग आता

९०. देखिये, तृतीय अध्याय/प्रथम प्रकरण/शीर्षक ७।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

है। किन्तु उक्त श्वेताम्बर-आगमों में भी मुनियों को ओषधि-विशेष का रसपिलाकर नपुंसक बनाने की व्यवस्था का निर्देश नहीं है। इसके विपरीत दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों परम्पराओं के शास्त्रों में (जैसे 'तत्त्वार्थसूत्र' में) मुनि को 'नाग्न्य' एवं 'स्त्री'-परीषहों के होने की संभावना का उल्लेख किया गया है तथा वैराग्यभावना से कामविकार का निरोधकर उनपर विजय प्राप्त करने का उपदेश दिया गया है। पूज्यपाद स्वामी एवं भट्ट अकलंकदेव के वचन पूर्व में उद्धृत किये जा चुके हैं।

श्वेताम्बराचार्य श्री हरिभद्रसूरि ने भी लिखा है कि विशिष्टश्रुतपरिणति आदि से रहित मुनि ही निर्वस्त्र रहने पर स्त्री के दर्शन से (पुरुषचिह्न में विकृति उत्पन्न होने के कारण) निर्लज्जता को प्राप्त हो सकता है, विशिष्ट श्रुतपरिणति आदि से युक्त मुनि नहीं-"**लज्जार्थं वस्त्रं, तद्व्यतिरेकेणाङ्गनादौ विशिष्टश्रुतपरिणत्यादिरहितस्य निर्लज्जतोपपत्तेः**" (हारि. वृत्ति/दश. वै. सू./६/१९)। दिगम्बरजैन मुनि स्त्री के रूप में सदा अपवित्र और बीभत्स शव के दर्शन करते हैं। इस विशिष्ट ज्ञानपरिणति के कारण उनके मन में वैराग्यभाव प्रवाहित होता रहता है, फलस्वरूप कामविकार उत्पत्ति नहीं हो पाती।

उपर्युक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि श्वेताम्बराचार्य श्री नरेन्द्रसागर सूरि का यह कथन कि दिगम्बर मुनियों को वनस्पति का रस पिलाकर नपुंसक बना दिया जाता है, सर्वथा कपोलकल्पित एवं दुर्भावनापूर्ण है।

श्वेताम्बराचार्य जी ने उपर्युक्त आगमवचनों का अवलोकन नहीं किया और न वनस्पति का रस पिलाकर मुनियों को नपुंसक बनाये जाने की क्रिया अपनी आँखों से देखी है। उन्होंने आगमज्ञानहीन किन्हीं रथ्यापुरुषों से सुनी हुई बात को सत्य मान लिया है। उसकी उन्होंने स्वयं परीक्षा भी नहीं की। परीक्षा का कार्य उन्होंने बुद्धिशालियों पर छोड़ दिया है, जैसा कि उन्होंने स्वयं लिखा है—"इस बात में कितना रहस्य है, उसकी बुद्धिशाली को ही परीक्षा करनी चाहिए।" (पृ.२०)। इस प्रकार उन आचार्य जी के ही वचनों से सिद्ध है कि उनके द्वारा कही हुई बात एक अफवाह है, जो स्वयं उनके द्वारा फैलायी गयी है या उनके ही सम्प्रदाय के अन्य लोगों के द्वारा।

अतः अपराजितसूरि, पूज्यपाद स्वामी एवं भट्ट अकलंक देव का यह कथन अकाट्य है कि नग्न रहने से मुनि अपनी इन्द्रियों को वश में करने का दृढ़ प्रयत्न करता है और उससे उसके चित्त की विशुद्धि प्रकट होती है।

आजीविक साधु और श्वेताम्बरीय आगमों को मानने वाले कुछ यापनीय साधु भी नग्न रहते थे, किन्तु उनके विषय में भी यह उल्लेख नहीं मिलता कि उन्हें वनस्पति-विशेष का रस पिलाकर पुंस्त्वहीन कर दिया जाता था। जैनेतर भारतीय साहित्य में भी यह मनोवैज्ञानिक सत्य मान्य है कि जिसकी इन्द्रियाँ अविजित हैं, वह वस्त्र धारण

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

करने पर भी नग्न है और जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है, वह नग्न रहने पर भी अनग्न है। देखिये, लिंगपुराण की यह उक्ति—

इन्द्रियैरजितैर्नग्नो दुकूलेनापि संवृतः।
तैरेव संवृतो गुप्तो न वस्त्रं कारणं स्मृतम्॥ १ / ३४ / १४।

ये प्रमाण सिद्ध करते हैं कि न केवल दिगम्बरग्रन्थों में, अपितु श्वेताम्बरमान्य आगमों में भी हीनसंहननधारी पुरुषों के लिए अचेललिंग को अंगीकार करने का उपदेश दिया गया है। अतः उनके लिए अचेललिंग के निषिद्ध होने का कथन मनगढ़न्त है। और यतः हीनसंहननधारियों के लिए अचेललिंग का अंगीकार भगवान् महावीर द्वारा निषिद्ध नहीं है, अतः अचेललिंगधारी साधुओं की परम्परावाला दिगम्बरजैनमत निह्नवमत नहीं है, अपितु तीर्थंकरप्रणीत है, यह स्वतः सिद्ध होता है। इससे इस रहस्य का उद्घाटन हो जाता है कि दिगम्बरमत को निह्नवमत सिद्ध करने की चेष्टा के पीछे श्वेताम्बराचार्यों का एकमात्र प्रयोजन पंचमकाल में श्वेताम्बरमान्य सचेललिंग को ही जिनोक्त, उचित एवं अनिवार्य ठहराना है, जो सत्य नहीं है, क्योंकि श्वेताम्बरग्रन्थों से ही सिद्ध है कि भगवान् महावीर ने एकमात्र अचेलकधर्म का उपदेश दिया है।

४

दिगम्बरपरम्परा में जिनलिंग आज भी प्रवर्तमान

जम्बू स्वामी के बाद भी जिनलिंगधारी मुनियों की परम्परा विद्यमान रही और आज तक चली आ रही है। उनके बाद विष्णु, नन्दिमित्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु, ये पाँच श्रुतकेवली हुए। तत्पश्चात् क्रमशः विशाखाचार्य आदि ग्यारह दशपूर्व-धारियों ने, नक्षत्र आदि पाँच एकादशांगधारियों ने, सुभद्र आदि चार दश-नव-अष्टांग धारकों ने तथा अर्हद्बलि, माघनन्दी, धरसेन, पुष्पदन्त, भूतबलि इन पाँच एकांगधारकों एवं गुणधर ने[९१] जिनलिंग ग्रहण कर अपने विशाल जिनलिंगी मुनिसंघों के साथ दिगम्बर-परम्परा को देदीप्यमान किया। उनके पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द, शिवार्य, वट्टकेर, गृध्रपिच्छ, यतिवृषभ, समन्तभद्र, स्वामिकुमार, पूज्यपाद देवनन्दी, सिद्धसेन, भट्ट अकलंक, वीरसेन, जिनसेन, गुणभद्र, अमृतचन्द्र, जयसेन आदि बहुश्रुत दिगम्बराचार्यों की दीर्घपरम्परा अवतरित हुई, जिन्होंने अपनी अमर साहित्यिक कृतियों से भगवान् महावीर के उपदेश को भव्य जीवों तक पहुँचाने का श्लाघ्य कार्य किया।

वर्तमान युग में भी आचार्य शान्तिसागर जी, आचार्य वीरसागर जी, आचार्य शिवसागर जी, आचार्य देशभूषण जी, आचार्य ज्ञानसागर जी, आचार्य विमलसागर जी, आचार्य

---

९१. देखिये, नन्दिसंघ की प्राकृतपट्टावली (षट्खण्डागम / पु.१/ प्रस्तावना / पृ.२१-२३)।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

धर्मसागर जी, आचार्य विद्यासागर जी, आचार्य विद्यानन्द जी, आचार्य वर्धमानसागर जी, उपाध्याय ज्ञानसागर जी आदि जैसे परमपूज्य दिगम्बराचार्यों, उपाध्यायों और उनके विशाल शिष्यसमुदायों ने जिनलिंग धारण कर उसकी महती प्रभावना की है और कर रहे हैं। अनेक सुप्रसिद्ध बहुमान्य ज्ञानी-ध्यानी-संयमी-तपस्वी जिनलिंगी आचार्य, उपाध्याय और उनके शिष्य आत्मसाधना और धर्म-प्रभावना द्वारा जिनलिंग की महिमा ख्यापित कर रहे हैं। वर्तमान में इन दिगम्बर आचार्यों, उपाध्यायों और साधुओं की उपस्थिति जिनलिंगी-परम्परा के अद्यावधि अविच्छिन्न रहने का जीवन्त प्रमाण है। इससे साबित होता है कि भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत अचेलत्व या जिनलिंग का आचरण पंचमकाल में अच्छी तरह संभव है।

५

श्वेताम्बरों का दिगम्बरमत के प्रति आकर्षण

पंचमकाल में जिनलिंगग्रहण संभव होने के कारण ही उसकी समीचीनता का अनुभव कर प्राचीनकाल से ही अनेक श्वेताम्बर मुनि और श्रावक श्वेताम्बरपरम्परा को छोड़कर दिगम्बरपरम्परा में आते रहे हैं और आ रहे हैं। आर्य महागिरि का उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है। दिगम्बरपंथ को स्वीकार करनेवाले एक और आचार्य हैं आर्य वज्रस्वामी। तिलोयपण्णत्ती में अन्तिम प्रज्ञाश्रमण के रूप में बताये गये वज्रयश नाम के आचार्य से आर्य वज्रसूरि के अभिन्न होने की संभावना मान्य डॉ० हीरालाल जी जैन ने व्यक्त की है। (षट्खण्डागम/पुस्तक २/ प्रस्तावना/पृष्ठ ३४-४०)।''[९२]

श्वेताम्बराचार्य श्री हस्तीमल जी ने भी दिगम्बर वज्रमुनि और श्वेताम्बर आर्यवज्र को एक ही व्यक्ति बतलाया है। वे लिखते हैं—

''श्वेताम्बर-परम्परा की तरह दिगम्बर-परम्परा के 'उपासकाध्ययन' और हरिषेण-कृत 'वृहत्कथाकोश' में भी प्रभावना अंग का वर्णन करते हुए वज्रमुनि का उल्लेख किया गया है। दोनों परम्पराओं में वज्रमुनि को विविध विद्याओं का ज्ञाता और धर्म का प्रभावक माना गया है। दोनों परम्पराओं में एतद्विषयक जो अन्तर अथवा समानता है वह संक्षेप में इस प्रकार है—

''श्वेताम्बर-परम्परा में आर्य वज्र के पिता का नाम धनगिरि और माता का नाम सुनन्दा बताया गया है, जबकि दिगम्बरसाहित्य में आर्य वज्र को पुरोहित सोमदेव और यज्ञदत्ता का पुत्र बताया है। दिगम्बरपरम्परा के उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में उल्लेख है कि जिस समय आर्य वज्र गर्भ में थे, उस समय उनकी माता यज्ञदत्ता को आम्रफल

---

९२. गुरुपरम्परा से प्राप्त दिगम्बर जैन आगम : एक इतिहास/पृष्ठ ६२।

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उस समय आम्रफल की ऋतु नहीं थी। दोहद की पूर्ति न हो सकने के कारण यज्ञदत्ता दिन-प्रतिदिन दुर्बल होने लगी। सोमदेव को अपनी गर्भिणी पत्नी के कृषकाय होने का कारण ज्ञात हुआ, तो वह बड़े असमंजस में पड़ गया। अन्ततोगत्वा वह अपने कुछ छात्रों के साथ आम्रफल की खोज में घर से निकला। वह अनेक आम्रनिकुंजों, वनों और उद्यानों में घूमता फिरा, किन्तु असमय में आम्रफल कहाँ से प्राप्त होता? पर सोमदेव हताश नहीं हुआ, वह आगे बढ़ता ही गया। एक दिन वह एक विकट वन में पहुँचा। उस वन के मध्यभाग में उसने एक सघन आम्रवृक्ष के नीचे बैठे हुए एक तपस्वी श्रमण को देखा। यह देख कर उसके हर्ष का पारावार नहीं रहा कि वह आम्रवृक्ष बड़े-बड़े एवं पक्व आम्रफलों से लदा हुआ है। आम्र की ऋतु नहीं होते हुए भी आम्रवृक्ष को आम्रफलों से लदा देख कर सोमदेव ने उसे मुनि के तपस्तेज का प्रभाव समझा और भक्तिविभोर होकर उसने मुनि के चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। सोमदेव ने अपने साथ आये हुए छात्रों में से एक छात्र के साथ अपनी पत्नी के पास आम्रफल भेज दिया और शेष छात्रों के साथ मुनि की सेवा में बैठकर उपदेश-श्रवण करने लगा। मुनि के त्याग-वैराग्यपूर्ण उपदेश और उनसे अपने पूर्वभव के वृत्तान्त को सुन कर सोमदेव को जातिस्मरण-ज्ञान हो गया। भीषण भवाटवी के भयावह भवप्रपंच से मुक्त होने की एक तीव्र उत्कण्ठा उसके अन्तर में उद्भूत हुई और उसने तत्क्षण समस्त सांसारिक झंझटों को एक ही झटके में तोड़ कर उन अवधिज्ञानी सुमित्र मुनि के पास निर्ग्रंथ-श्रमण-दीक्षा ग्रहण करली। सोमदेव के साथ आये हुए छात्र अहिछत्र नगर की ओर लौट गये। एक छात्र के साथ आये आम्र से यज्ञदत्ता का दोहदपूर्ण हो गया। बाद में आये छात्रों के मुख से अपने पति के प्रव्रजित होने का समाचार सुन कर यज्ञदत्ता को बड़ा दुःख हुआ। गर्भकाल की समाप्ति पर यज्ञदत्ता ने तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया।

"उन्हीं दिनों मुनि सोमदेव अपने गुरु सुमित्राचार्य के साथ विचरण करते हुए सोपारक नगर आये। मुनि सोमदेव गुरु की आज्ञा ले पास ही के पर्वत पर पहुँचे और वहाँ एक शिला पर खड़े हो सूर्य की आतापना लेते हुए ध्यानमग्न हो गये। यज्ञदत्ता को जब यह विदित हुआ कि मुनि सोमदेव निकटस्थ पर्वत पर सूर्य की आतापना ले रहे हैं, तो वह नवजात शिशु को लेकर उस पर्वत पर मुनि के पास पहुँची। उसने बड़ी ही अनुनय-विनयपूर्वक सोमदेव को एक बार अपने तेजस्वी पुत्र की ओर देखने तथा घर लौट कर अपने गार्हस्थ्यभार को वहन करने की प्रार्थना की। बड़ी देर तक अनुनय-विनय करने के पश्चात् भी जब उसने देखा कि मुनि सोमदेव ने घर चलना तो दूर, अपने पुत्र की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा है, तो उसने क्रुद्ध हो आक्रोशपूर्ण स्वर में कहा-"ओ मेरे मन को जला डालनेवाले

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पाषाणहृदय, मूर्ख, वंचक! इस दिगम्बरवेष को स्वेच्छा से छोड़ कर मेरे साथ घर चलता हो तो चल, अन्यथा सम्हाल अपने इस पुत्र को।

"इतना कहने पर भी मुनि को निश्चलभाव से ध्यानमग्न देख कर यज्ञदत्ता ने अपने उस कुसुमकोमल नवजात पुत्र को मुनि के चरणों पर लिटा दिया और स्वयं अपने घर की ओर लौट गई।

"सूर्य के प्रचण्ड ताप से शिला जल रही थी। पैरों पर से प्रतप्त शिला पर गिरने से बालक का कहीं प्राणान्त न हो जाय, इस करुणापूर्ण आशंका से मुनि सोमदेव अपने पैरों को विष्टर की तरह बनाये अचल मुद्रा में खड़े रहे। मुनि ने मन ही मन दृढ़ संकल्प किया कि जब तक वह उपसर्ग समाप्त नहीं हो जायगा, तब तक आहारादि ग्रहण करना तो दूर, शरीर को किंचिन्मात्र भी हिलाएँगे-डुलाएँगे तक नहीं। मुनि इस प्रकार का अभिग्रह कर पुनः ध्यानमग्न हो गये।

"यज्ञदत्ता के लौटने के थोड़ी ही देर पश्चात् भास्करदेव नामक विद्याधरराज अपनी पत्नी के साथ मुनिदर्शन हेतु वहाँ पहुँचा। जब उसने सुन्दर, स्वस्थ और तेजस्वी शिशु को मुनि के पैरों पर लेटे हुए देखा, तो मुनिवन्दन के पश्चात् उसने उसे उठा कर अपनी पत्नी की गोद में देते हुए कहा—"धर्मिष्ठे! लो, मुनिदर्शन के तात्कालिक सुखद फल के रूप में हम सन्ततिविहीनों को यह पुत्र मिल गया है।" सूर्य की प्रखर रश्मियों की ज्वालामाला का उस शिशु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, इस कारण विद्याधरदम्पती ने बालक का नाम 'वज्र' रखा। उन्होंने वज्र को अपना पुत्र घोषित करते हुए बड़े दुलार के साथ उसका लालन-पालन किया। शिक्षायोग्य वय में वज्र को समुचित शिक्षा दिलाने तथा चमत्कारपूर्ण विद्याएँ सिखाने की व्यवस्था की गई।

"दिगम्बर-परम्परा में श्वेताम्बर-परम्परा की तरह आर्य वज्र का साधुसंघ में रहना नहीं माना गया है। बृहत्कथाकोश के अनुसार पवनवेगा नाम की एक विद्याधर कन्या के साथ और उपासकाध्ययन के अनुसार इन्दुमती और पवनवेगा नामक दो कन्याओं के साथ वज्रकुमार का विवाह होना माना गया है।

"उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों में बताया गया है कि अनेक वर्षों तक गार्हस्थ्यजीवन, का सुखोपभोग करने के पश्चात् एक दिन वज्रकुमार को अपने मित्रजनों से यह विदित हुआ कि भास्करदेव उसके पिता नहीं, अपितु पालक मात्र हैं। वस्तुतः उसके पिता तो सोमदेव हैं, जो उसके जन्म से पहले ही मुनि बन चुके हैं। वस्तु-स्थिति से परिचित होते ही वज्रकुमार ने प्रतिज्ञा कर डाली कि वह अपने पिता के दर्शन किये बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करेगा। भास्करदेव तत्काल वज्रकुमार को साथ लेकर मुनि सोमदेव के दर्शनों के लिये प्रस्थित हुआ। दर्शन-वन्दन के पश्चात् मुनि के त्याग-विरागपूर्ण

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उपदेश को सुनकर वज्रकुमार को संसार से विरक्ति हो गई और उन्होंने उसी समय सोमदेव मुनि के पास निर्ग्रंथ श्रमण-दीक्षा ग्रहण कर ली।

''श्वेताम्बर एवं दिगम्बर दोनों ही परम्पराओं में आर्य वज्र को चारणऋद्धि-सम्पन्न मुनि माना गया है और दोनों परम्पराओं के मध्ययुगीन कथासाहित्य में उनके द्वारा आकाशगामिनी विद्या के अद्भुत चमत्कारपूर्ण कार्यों से जिनशासन की महती प्रभावना किये जाने के उल्लेख उपलब्ध होते हैं।

''दिगम्बर-परम्परा के ग्रन्थों में आर्य वज्र के प्रगुरु का नाम सुमित्र और गुरु का नाम सोमदेव बताया गया है, जब कि श्वेताम्बर-परम्परा इन्हें जातिस्मरण-ज्ञानधारी आर्य सिंहगिरि का शिष्य मानती है। नाम, स्थान आदि विषयक कतिपय विभिन्नताओं के उपरान्त भी आर्य वज्र के पिता द्वारा वज्र के जन्म से अनुमानतः ६ मास पूर्व ही प्रव्रज्या ग्रहण करने, माता द्वारा उन्हें उनके पिता को दे दिये जाने, आर्य वज्र के गगनविहारी होने, जैनों के साथ बौद्धों द्वारा की गई धार्मिक उत्सव-विषयक प्रतिस्पर्धा में आर्य वज्र द्वारा जैनधर्मावलम्बियों के मनोरथों की पूर्ति के साथ जिन-शासन की महिमा बढ़ाने आदि आर्य वज्र के जीवन की घटनाओं एवं सम्पूर्ण कथावस्तु की मूल आत्मा में दोनों परम्पराओं का पर्याप्त साम्य है, जो यह मानने के लिये आधार प्रस्तुत करता है कि आर्य वज्र के समय तक जैनसंघ में पृथक्तः 'श्वेताम्बर तथा दिगम्बर' इस प्रकार का भेद उत्पन्न नहीं हुआ था।

''दोनों परम्पराओं के मान्य ये मुनि निश्चितरूप से वे ही वज्रमुनि हैं, जो वीर-निर्वाण की छठी शताब्दी में हुए आर्यरक्षित के विद्यागुरु थे। परम्पराभेद के प्रकट होने का इतिहास भी इसी बात को प्रमाणित करता है। कारण कि श्वेताम्बरपरम्परा की मान्यतानुसार श्वेताम्बर-दिगम्बर-परम्परा का स्पष्ट भेद आर्य वज्र के स्वर्गगमन के पश्चात् वीर नि० सं० ६०९ में और दिगम्बर-परम्परा की मान्यतानुसार वीर नि० सं० ६०६ में माना गया है।'' (जै.ध.मौ.इ./ भा.२/ पृ.५८२-५८५)।

आचार्य श्री हस्तीमल जी ने वज्रमुनि और आर्यवज्र (ई० पू० ३१-ई० ५७) के एकत्व को उनके समय तक दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद न होने का प्रमाण माना है। किन्तु , वस्तुतः यह श्वेताम्बर आर्यवज्र का दिगम्बरमत स्वीकार करने का प्रमाण है, क्योंकि दिगम्बर-श्वेताम्बर-भेद तो जम्बूस्वामी के निर्वाण के पश्चात् ही हो गया था, इसका सप्रमाण प्रतिपादन षष्ठ अध्याय में द्रष्टव्य है।

डॉ० एम० डी० वसन्तराज का कथन है कि तत्त्वार्थसूत्र के कर्त्ता उमास्वामी भी श्वेताम्बर-परम्परा से दिगम्बर-परम्परा में आये थे। श्वेताम्बर-परम्परा में उनका

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

आदरणीय स्थान होने तथा तत्त्वार्थसूत्र की विषयवस्तु दिगम्बर-परम्परा के अनुरूप होने से यह संकेत मिलता है।[९३]

नाटक समयसार के कर्त्ता सुप्रसिद्ध कवि पं० बनारसीदास जी (१७वीं शती ई०) जन्मना श्वेताम्बर थे। उन्होंने खरतरगच्छी श्वेताम्बराचार्य श्री भानुचन्द्र से शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने जब आचार्य कुन्दकुन्द का 'समयसार' पढ़ा, तब उन्हें दिगम्बर आम्नाय में श्रद्धा हुई और पश्चात् गोम्मटसार का प्रवचन सुनकर वे दिगम्बरमत के अनुयायी बन गये।[९४]

बीसवीं शताब्दी ई० के स्थानकवासी श्वेताम्बर साधु श्री कहान जी भी समयसार के अध्यात्मवाद से प्रभावित होकर दिगम्बर श्रावक बन गये थे। उनके साथ उनके सैकड़ों श्वेताम्बर श्रावक-शिष्यों ने भी दिगम्बरमत स्वीकार कर लिया था।

बीसवीं शताब्दी ई० के ही दिगम्बराचार्य श्री शिवसागर जी के शिष्य श्री श्रुतसागर जी भी जन्मना श्वेताम्बर थे, उनकी पुत्री ने भी दिगम्बर आम्नाय में आर्यिका दीक्षा ग्रहण की है। दिगम्बर-आर्यिका श्री विशालमति ने भी श्वेताम्बर परिवार में जन्म लिया था।

मुंबई के कई श्वेताम्बर परिवार सुप्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्री विद्यासागर जी के अनुयायी बन गये हैं। उनकी पुत्रियों ने आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया है और भविष्य में आर्यिकाव्रत धारण करने का अभ्यास कर रही हैं।

सुखकर श्वेताम्बरमार्ग के अनुयायी सन्तों और श्रावकों का क्लेशकर दिगम्बरमार्ग के प्रति यह आकर्षण भी सिद्ध करता है कि हीनसंहननधारी पंचमकालीन पुरुष अचेल-लिंग के आचरण के अयोग्य नहीं हैं। अतः अयोग्य कहकर उनके लिए अचेल-लिंग या जिनलिंग को निषिद्ध ठहराना दुरभिसन्धिपूर्ण आगमविरुद्ध चेष्टा है।

---

९३. गुरुपरम्परा से प्राप्त दिगम्बर जैनागम : एक इतिहास / पृष्ठ ६५।
९४. तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा / खण्ड ४ / पृ.२५१।

✧✧✧

षष्ठ प्रकरण

सग्रन्थ के लिए 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग इतिहासविरुद्ध

भगवान् महावीर ने 'ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग मोहरागादि अन्तरंगभावों एवं वस्त्रपात्रादि बाह्यद्रव्यों के अर्थ में किया है। अतः 'निर्ग्रन्थ' शब्द इन दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित सर्वथा अचेल, नग्न, दिगम्बरसाधु का वाचक है। इसीलिए बौद्धसम्प्रदाय में भगवान् महावीर **निगंठनाटपुत्त** (निर्ग्रन्थनाथपुत्र / निर्ग्रन्थज्ञातपुत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुए थे और उनका अनुयायी श्रमणसंघ **निर्ग्रन्थसंघ** कहलाया था। वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य, शब्दकोशों और शिलालेखों में भी **निर्ग्रन्थ** शब्द दिगम्बरजैन साधुओं के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। जम्बू स्वामी के निर्वाण के पश्चात् जब इस संघ के कुछ साधुओं ने वस्त्रपात्रादि-परिग्रह ग्रहणकर **श्वेतपटश्रमणसंघ** नाम से अलग संघ बना लिया, तब वे 'निर्ग्रन्थ' नाम के अधिकारी नहीं रहे, किन्तु अपने को भगवान् महावीर का उत्तराधिकारी सिद्ध करने के लिए उन्होंने इस नाम का अपहरण कर लिया और इसकी अपने अनुकूल व्याख्या कर डाली। उन्होंने वस्त्रपात्रादि-बाह्यपरिग्रह को **ग्रन्थ** की परिभाषा से बाहर कर दिया और केवल मोहरागद्वेषरूप अथवा मूर्च्छारूप आभ्यन्तरपरिग्रह को परिग्रह या 'ग्रन्थ' कहकर स्वयं को निर्ग्रन्थ घोषित कर दिया।[९५] किन्तु वस्त्रपात्रादि-परिग्रहधारी पुरुष **निर्ग्रन्थ** शब्द के व्यवहार के अधिकारी नहीं है, क्योंकि यह वस्त्रपात्रादि-परिग्रहरहित दिगम्बरजैन मुनियों और उनके सम्प्रदाय की परम्परागत इतिहास-सिद्ध संज्ञा है। यह दिगम्बरजैन-साहित्य, बौद्धसाहित्य, वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य, शब्दकोष एवं शिला-लेख-ताम्रपत्रलेख, इन समस्त ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। ये ऐतिहासिक प्रमाण सिद्ध करते हैं कि कम से कम गौतमबुद्ध के जीवनकाल (ईसापूर्व छठी शताब्दी) से 'निर्ग्रन्थ' शब्द वस्त्रपात्रादि-समस्त-परिग्रह से रहित दिगम्बरजैन मुनियों और उनके सम्प्रदाय के लिए ही प्रसिद्ध है। उक्त प्रमाण आगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१

दिगम्बरग्रन्थों में 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'सर्वथा अचेल' का वाचक

जिनागम में परिग्रह को 'ग्रन्थ' कहा गया है।[९६] यह दो प्रकार का है : अभ्यन्तर

---

९५. जंपि वत्थं वा पायं वा कंबलं पायपुंछणं।
तंपि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहरंति अ॥ ६/१९॥
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इअ वुत्तो महेसिणा॥ ६/२०॥ दशवैकालिकसूत्र।

९६. "परिग्रहः षड्जीवनिकायपीडाया मूलं मूर्च्छानिमित्तं चेति सकलग्रन्थत्यागो भवतीति पञ्चमं व्रतम्।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / 'आचेलक्कु' / गा. ४२३ / पृ.३३१।

षष्ठ प्रकरण

सग्रन्थ के लिए 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग इतिहासविरुद्ध

भगवान् महावीर ने 'ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग मोहरागादि अन्तरंगभावों एवं वस्त्रपात्रादि बाह्यद्रव्यों के अर्थ में किया है। अतः 'निर्ग्रन्थ' शब्द इन दोनों प्रकार के परिग्रह से रहित सर्वथा अचेल, नग्न, दिगम्बरसाधु का वाचक है। इसीलिए बौद्धसम्प्रदाय में भगवान् महावीर **निगंठनाटपुत्त** (निर्ग्रन्थनाथपुत्र / निर्ग्रन्थज्ञातपुत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुए थे और उनका अनुयायी श्रमणसंघ **निर्ग्रन्थसंघ** कहलाया था। वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य, शब्दकोशों और शिलालेखों में भी **निर्ग्रन्थ** शब्द दिगम्बरजैन साधुओं के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। जम्बू स्वामी के निर्वाण के पश्चात् जब इस संघ के कुछ साधुओं ने वस्त्रपात्रादि-परिग्रह ग्रहणकर **श्वेतपटश्रमणसंघ** नाम से अलग संघ बना लिया, तब वे 'निर्ग्रन्थ' नाम के अधिकारी नहीं रहे, किन्तु अपने को भगवान् महावीर का उत्तराधिकारी सिद्ध करने के लिए उन्होंने इस नाम का अपहरण कर लिया और इसकी अपने अनुकूल व्याख्या कर डाली। उन्होंने वस्त्रपात्रादि-बाह्यपरिग्रह को **ग्रन्थ** की परिभाषा से बाहर कर दिया और केवल मोहरागद्वेषरूप अथवा मूर्च्छारूप आभ्यन्तरपरिग्रह को परिग्रह या 'ग्रन्थ' कहकर स्वयं को निर्ग्रन्थ घोषित कर दिया।[९५] किन्तु वस्त्रपात्रादि-परिग्रहधारी पुरुष **निर्ग्रन्थ** शब्द के व्यवहार के अधिकारी नहीं है, क्योंकि यह वस्त्रपात्रादि-परिग्रहरहित दिगम्बरजैन मुनियों और उनके सम्प्रदाय की परम्परागत इतिहास-सिद्ध संज्ञा है। यह दिगम्बरजैन-साहित्य, बौद्धसाहित्य, वैदिकसाहित्य, संस्कृतसाहित्य, शब्दकोष एवं शिला-लेख-ताम्रपत्रलेख, इन समस्त ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है। ये ऐतिहासिक प्रमाण सिद्ध करते हैं कि कम से कम गौतमबुद्ध के जीवनकाल (ईसापूर्व छठी शताब्दी) से 'निर्ग्रन्थ' शब्द वस्त्रपात्रादि-समस्त-परिग्रह से रहित दिगम्बरजैन मुनियों और उनके सम्प्रदाय के लिए ही प्रसिद्ध है। उक्त प्रमाण आगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

१

दिगम्बरग्रन्थों में 'निर्ग्रन्थ' शब्द 'सर्वथा अचेल' का वाचक

जिनागम में परिग्रह को 'ग्रन्थ' कहा गया है।[९६] यह दो प्रकार का है : अभ्यन्तर

---

९५. जंपि वत्थं वा पायं वा कंबलं पायपुंछणं।
तंपि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहरंति अ॥ ६/१९॥
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा।
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इअ वुत्तो महेसिणा॥ ६/२०॥ दशवैकालिकसूत्र।

९६. "परिग्रहः षड्जीवनिकायपीडाया मूलं मूर्च्छानिमित्तं चेति सकलग्रन्थत्यागो भवतीति पञ्चमं व्रतम्।" विजयोदयाटीका / भगवती-आराधना / 'आचेलक्कु' / गा. ४२३ / पृ.३३१।

और बाह्य। मिथ्यात्व, चार कषाय तथा नौ नोकषाय, ये चौदह अभ्यन्तर ग्रन्थ हैं और क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, यान, शयन-आसन, कुप्य (वस्त्र) और भाण्ड (वर्तन) ये दस बाह्य ग्रन्थ।[९७] चौदह प्रकार के अभ्यन्तर-ग्रन्थ के त्याग से स्वात्मरूप प्रकट होता है और दस प्रकार के बाह्यग्रन्थ के परित्याग से नग्नत्व। इन दोनों को क्रमशः निश्चय और व्यवहारनय से यथाजातरूप कहा गया है। अतः निश्चयनय से स्वात्मरूप को तथा व्यवहारनय से नग्नत्व को धारण करनेवाला निर्ग्रन्थ कहलाता है, जैसा कि आचार्य जयसेन ने कहा है—

"**व्यवहारेण नग्नत्वं यथाजातरूपं, निश्चयेन तु स्वात्मरूपं तदित्थंभूतं यथाजातरूपं धरतीति यथाजातरूपधरः निर्ग्रन्थः।**" (ता.वृ./ प्र.सा./ गा.३/४)।

यतः वस्त्रादि-बाह्यग्रन्थ के त्याग से अभ्यन्तरग्रन्थ का त्याग सूचित होता है, अतः नग्नता निर्ग्रन्थ होने का बाह्य लक्षण है। इसीलिए आचार्य जयसेन ने कहा है— "**वस्त्रादिपरिग्रहरहितत्वेन निर्ग्रन्थः।**" (ता.वृ./प्र.सा./ गा.३/६९)।

भगवती-आराधना में **ग्रन्थ** शब्द का प्रयोग विशेषरूप से 'वस्त्र' के अर्थ में किया गया है—

इंदियमयं सरीरं गंथं गेण्हदि य देहसुक्खत्थं।
इंदियसुहाभिलासो गंथग्गहणेण तो सिद्धो॥ ११५७॥

अनुवाद—"शरीर इन्द्रियमय है। ग्रन्थ का ग्रहण मनुष्य देहसुख के लिए ही करता है। इसलिए जो ग्रन्थ का ग्रहण करता है, वह इन्द्रियसुख का अभिलाषी है, यह सिद्ध होता है।"

अपराजितसूरि ने इस गाथा की टीका में 'ग्रन्थ' शब्द का अर्थ 'चादर आदि वस्त्र' किया है। यथा-

"**परिग्रहं च चेलप्रावरणादिकमिन्द्रियसुखार्थमेव गृह्णाति वातातपाद्यनभिमतस्पर्शनिषेधाय।**" (वि.टी./ भ.आ./गा.११५७)।

अनुवाद—"वस्त्र, प्रावरण आदि का ग्रहण मनुष्य इन्द्रियसुख के लिए अर्थात् हवा, धूप आदि अप्रिय स्पर्श से बचने के लिए ही करता है।"

---

९७. मिच्छत्तवेदरागा तहेव हस्सादिया य छद्दोसा।
चत्तारि तह कसाया चोद्दस अब्भंतरा गंथा॥ ४०७॥
खेत्तं वत्थु धणधण्णगदं दुपदचदुप्पदगदं च।
जाण-सयणासणाणि य कुप्पे भंडेसु दस होंति॥ ४०८॥ मूलाचार।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

भगवती-आराधना की निम्नलिखित गाथा में हवा, धूप, शीत, दंशमशक आदि की बाधा सहने के लिए जो वस्त्र त्याग देता है उसे निर्ग्रन्थ कहा गया है—

जम्हा णिग्गंथो सो वादादवसीददंस-मसयाणं।
सहदि या विविधा बाधा तेण सदेहे अणादरदा॥ ११६६॥

आचार्य कुन्दकुन्द ने अचेलत्वप्रधान अट्ठाईस मूलगुणों में दीक्षित (प्र.सा./३/८-९) यथाजातरूपधर (जधजादरूवजादं-प्र.सा./३/५) मुनि को निर्ग्रन्थरूप से दीक्षित कहा है—"**णिग्गंथो पव्वइदो।**" (प्र.सा.३/६९)।

इस प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द, उनके ग्रन्थों के वृत्तिकार आचार्य जयसेन, भगवती-आराधना के कर्त्ता शिवार्य और उसके टीकाकार अपराजितसूरि ने नग्न मुनि को ही 'निर्ग्रन्थ' शब्द से अभिहित किया है।

भगवान् महावीर भी नग्न रहने के कारण ही 'निर्ग्रन्थ' या 'निगंठ' नाम से प्रसिद्ध हुए थे। इसीलिए बौद्ध साहित्य में उनका **निगंठनाटपुत्त** नाम से उल्लेख किया गया है। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थ **अंगुत्तरनिकाय** में निगंठों को **अहिरिका (अह्रीक)** अर्थात् 'निर्लज्ज' कहा गया है, जो उनके नग्न रहने का सूचक है। इसके अतिरिक्त दिव्यावदान, धम्मपद-अट्ठकथा, आर्यशूरकृत जातकमाला, दाठावंस आदि बौद्धग्रन्थों में **निर्ग्रन्थ** शब्द का प्रयोग नग्न जैनसाधु के अर्थ में किया गया है।[९८]

पाँचवीं शती ई० के वराहमिहिर ने 'बृहज्जातक' और 'लघुजातक' में नग्न जैन साधुओं को ही 'निर्ग्रन्थ' संज्ञा दी है। जाबालोपनिषद्, वायुपुराण (वैदिक), पद्मपुराण, मत्स्यपुराण, कूर्मपुराण, ब्रह्माण्डपुराण आदि में **निर्ग्रन्थ** शब्द से दिगम्बरमुनि ही संकेतित किये गये है।[९९]

२

अभिलेखों में 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बरजैन मुनि का वाचक

सम्राट् अशोक ने अपने सातवें स्तम्भलेख (२४२ ई० पू०) में लिखवाया है कि उसने सभी धार्मिक सम्प्रदायों तथा ब्राह्मणों, आजीविकों और निर्ग्रंथों के कल्याणकारी कार्यों की देखरेख के लिए धर्ममहामात्य की नियुक्ति की है—

"**धंममहामातापि मे ते बहुविधेसु अठेसु आनुगहिकेसु वियापटा से पवजीतानं चेव गिहिथानं च सव-पासंडेसु --- बाभनेसु आजीविकेसु --- निगंठेसु पि मे**

९८. देखिए, चतुर्थ अध्याय/द्वितीय प्रकरण।
९९. देखिए, चतुर्थ अध्याय/प्रथम प्रकरण।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कटे इमे वियापटा होहंति।'' (दिल्ली / टोपरा / स्तम्भलेख,/ क्र.१/ जै.शि.सं./ मा.च./ भा.२)।[१००]

यहाँ 'निगंठ' शब्द से 'दिगम्बरजैन मुनि' अर्थ ही अभिप्रेत है, यह पाँचवीं शती ई० (४७०-४९० ई०)[१०१] के कदम्बवंशीय राजाओं, श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा एवं मृगेशवर्मा के निम्नलिखित अभिलेखों से प्रमाणित है। यथा—

१. ''**धर्ममहाराजः कदम्बानां श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा कालवङ्गग्रामं त्रिधा विभज्य दत्तवान्। अत्र पूर्वमर्हच्छालापरमपुष्कलस्थाननिवासिभ्यः भगवदर्हन्महाजिनेन्द्र-देवताभ्यः एको भागः, द्वितीयोर्हत्प्रोक्तसद्धर्म्मकरणपरस्य श्वेतपटमहाश्रमणसङ्घो-पभोगाय, तृतीयो निर्ग्रन्थमहाश्रमणसङ्घोपभोगायेति।**'' (देवगिरि-ताम्रपत्रलेख / क्र. ९८ / जै. शि. सं./ मा. च. / भा. २)।

अनुवाद—''कदम्बवंशीय धर्ममहाराज श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा ने कालवङ्ग नामक ग्राम तीन भागों में विभक्त कर दान किया। सर्वप्रथम उसका एक भाग अर्हत्-शाला के परमपुष्कल-स्थान में विराजित भगवान्-अर्हत्-महाजिनेन्द्रदेव के लिए दिया, दूसरा भाग अरहन्त द्वारा उपदिष्ट सद्धर्म का आचरण करने में तत्पर श्वेतपटमहाश्रमणसंघ के उपभोग के लिए और तीसरा भाग निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ के उपभोग के लिए दिया।''

२. ''**श्रीशान्तिवरवर्म्मेति राजा --- तत्प्रियज्येष्ठतनयः श्रीमृगेशनराधिपः स्वार्यके नृपतौ भक्त्या कारयित्वा जिनालयम् श्रीविजयपलाशिकायां यापनि(नी)-यनिर्ग्रन्थ-कूर्च्चकानां स्ववैजयिके अष्टमे वैशाखे संवत्सरे कार्त्तिकपौर्ण्णमास्याम् --- दत्तवान् भगवद्भ्योऽर्हद्भ्यः।**'' (हल्सी-ताम्रपत्रलेख / क्र.९९ / जै.शि.सं./मा.च./भा.२)।

यह राजा शान्तिवर्मा के ज्येष्ठ पुत्र मृगेशवर्मा के दानपत्र का अंश है। इस दानपत्र में लिखा है कि मृगेशवर्मा ने अपने स्वर्गवासी पिता के प्रति भक्ति के करण पलाशिका नामक नगर में जिनालय का निर्माण कराकर अपनी विजय के आठवें वर्ष में कार्तिक की पौर्णमासी के दिन यापनीयों, निर्ग्रन्थों और कूर्चकों के लिए भूमिदान किया है। कूर्चक भी जैनों का ही एक सम्प्रदाय था।

इन अभिलेखों में श्वेताम्बरों के लिए **श्वेतपट,** यापनीयों के लिए **यापनीय** और कूर्चकों के लिए **कूर्चक** शब्द का प्रयोग किया गया है। अब दिगम्बर ही शेष रहते

---

१००. देहली-टोपरा में सात स्तम्भलेख हैं। उनमें यह सप्तम स्तम्भलेख है। (देखिए , डॉ. शिवस्वरूपसहाय : 'भारतीय पुरालेखों का अध्ययन'/ मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली/ तृतीय संस्करण/ २००० ई०/ पृ. १२९-१३०)।

१०१. जैन शिलालेख संग्रह / माणिकचन्द्र / भा.३/ प्रस्तावना : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी / पृ. २३।

हैं। अत: सिद्ध है कि **निर्ग्रन्थ** शब्द दिगम्बरजैन मुनियों के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। यह बात डॉ० सागरमल जी ने भी स्वीकार की है। वे लिखते हैं—

''दक्षिण भारत के देवगिरि और हल्सी के अभिलेखों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि ईसा की पाँचवी शती के उत्तरार्ध में दक्षिणभारत में निर्ग्रन्थ, यापनीय, कूर्चक और श्वेतपटमहाश्रमणसंघ का अस्तित्व था। **दक्षिणभारत का यह निर्ग्रन्थमहाश्रमणसंघ भद्रबाहु (प्रथम) की परम्परा के उन अचेल श्रमणों का संघ था, जो ईसापूर्व की तीसरी शती में बिहार से उड़ीसा के रास्ते लंका और तमिलप्रदेश में पहुँचे थे। उस समय उत्तर भारत में जैनसंघ इसी नाम से जाना जाता था** और उसमें गण, शाखा का विभाजन नहीं हुआ था, अत: ये श्रमण भी अपने को इसी 'निर्ग्रन्थ' नाम से अभिहित करते रहे।---यह निर्ग्रन्थसंघ, यापनीय, कूर्चक और श्वेतपटसंघ से पृथक् था, यह तथ्य भी हल्सी और देवगिरि के अभिलेखों से सिद्ध है, क्योंकि इनमें उसे इनसे पृथक् दिखलाया गया है और **तब तक इसका 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम सुप्रचलित था।**'' (डॉ० सागरमल जैन अभिनन्दन ग्रन्थ / १९९८ ई० / पृष्ठ ६३२)।

ईसा की पाँचवीं शताब्दी (४७९ ई०) में ही उत्कीर्ण पहाड़पुर ताम्रपत्र में पंचस्तूपनिकाय के श्रमणों को निर्ग्रन्थ कहा गया है—

''**काशिक-पञ्चस्तूपनिकायिक-निर्ग्रन्थश्रमणाचार्य-गुहनन्दिशिष्य-प्रशिष्याधिष्ठितविहारे भगवतामर्हतां गन्ध-धूप-सुमनोदीपाद्यर्थन्तलवटकनिमित्तं च अ (त) एव वटगोहालीतो**---।'' (पहाड़पुर - ताम्रपत्र लेख / क्र.१९ / जै.शि.सं./ भा.ज्ञा./ भा.४)।

इस अभिलेख का सारांश बतलाते हुए डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर लिखते हैं- ''यह ताम्रपत्र गुप्तवर्ष १५९ के माघमास के ७ वें दिन लिखा गया था। ब्राह्मण नाथशर्मा तथा उसकी पत्नी रामी ने पुण्ड्रवर्धन के राजकोष में तीन दीनार देकर डेढ़ कुल्यवाप जमीन प्राप्त की।--- काशी के पञ्चस्तूपनिकाय के निर्ग्रन्थ श्रमणों के आचार्य गुहनन्दी के शिष्य-प्रशिष्यों का एक विहार वटगोहाली में था। वहाँ भगवान् अर्हत् की पूजा के लिए गन्ध, धूप, फूल, दीप आदि की व्यवस्था के लिए यह जमीन नाथशर्मा तथा रामी ने दान दी।'' (जै.शि.सं./भा.ज्ञा./भा.४/पृ.९)।

इस पञ्चस्तूपनिकाय में धवलाटीकाकार वीरसेनस्वामी और उनके शिष्य जिनसेन हुए थे। इसका परिचय देते हुए डॉ० गुलाबचद्र जी चौधरी ने लिखा है-''नवमी शताब्दी के उत्तरार्ध में (सन् ८९८ के पहले) उत्तरपुराण के रचयिता गुणभद्र ने अपने गुरु जिनसेन और दादागुरु वीरसेन को सेनान्वय का कहा है। पर जिनसेन और वीरसेन ने जयधवला ओर धवलाटीका में अपने वंश को पंचस्तूपान्वय लिखा है। यह पंचस्तूपान्वय ईसा की पाँचवीं शताब्दी में निर्ग्रन्थसम्प्रदाय के साधुओं का एक संघ था, यह बात

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

पहाड़पुर (जिला राजशाही, बंगाल) से प्राप्त एक लेख से मालूम होती है। पञ्चस्तूपान्वय का सेनान्वय के रूप में सर्वप्रथम उल्लेख गुणभद्र ने, संभव है अपने गुरुओं के सेनान्त नाम को देखते हुए किया है।'' (प्रस्तावना/पृ.४३-४४/जै.शि.सं./मा.च/भा.३)।

पञ्चस्तूपनिकाय के साथ भी 'जैनधर्म का यापनीय सम्प्रदाय' ग्रन्थ के लेखक ने छल करने की कोशिश की है। वे लिखते हैं—''पहाड़पुर (बंगाल) के एक अभिलेख में काशी के पंचस्तूपान्वय का उल्लेख हुआ है। --- यह संभावना की जा सकती है कि उत्तरभारत में अपने प्रारंभिककाल में यापनीय-परम्परा अपने को आर्यकुल-भद्रान्वय और पंचस्तूपान्वय के नाम से अभिहित करती हो।'' (पृ.२०-२१)।

यह दिन के उजाले के समान स्पष्ट है कि धवलाकार वीरसेन और उनके शिष्य जिनसेन जैसे कट्टर दिगम्बराचार्यों ने अपने को पंचस्तूपान्वय का कहा है, तथा उपर्युक्त अभिलेख में गुहनन्दी के साथ 'निर्ग्रन्थ' विशेषण का प्रयोग हुआ है, जो उन्हें स्पष्टतः यापनीयों से भिन्न दिगम्बरपरम्परा का सिद्ध करता है, जिसके गवाह श्रीविजयशिवमृगेशवर्मन् और मृगेशवर्मन् के पूर्वोक्त अभिलेख हैं। इन प्रमाणों से सिद्ध है कि पंचस्तूपान्वय दिगम्बरपरम्परा का अन्वय था। फिर भी उक्त ग्रन्थलेखक ने यह संशय उत्पन्न करने की चेष्टा की है कि हो सकता है पंचस्तूपान्वय यापनीयपरम्परा का पूर्वनाम हो। यह प्रमाणों को ताक पर रख, जिज्ञासुओं की आँखों में संभावनाओं और अटकलों की धूल झौंककर दिगम्बरपरम्परा को बलात् अर्वाचीन सिद्ध करने का छलपूर्ण प्रयास है।

ये अभिलेख इस बात के प्रमाण हैं कि ईसा की पाँचवीं शती तक 'निर्ग्रन्थ' शब्द सर्वथा अचेल (नग्न) रहनेवाले दिगम्बरजैन मुनियों के लिए ही प्रसिद्ध था, अतः अशोक के स्तम्भाभिलेख में उल्लिखित 'निर्ग्रन्थ' शब्द दिगम्बरजैन मुनियों का ही वाचक है।

इन अभिलेखों से एक बात और स्पष्ट होती है कि पाँचवीं शती ई० तक श्वेताम्बरों के लिए 'श्वेतपट' शब्द तो प्रचलित था, किन्तु दिगम्बरों के लिए 'दिगम्बर' शब्द प्रचलित नहीं हुआ था। वे 'निर्ग्रन्थ' शब्द से ही जाने जाते थे। इससे सिद्ध होता है कि दिगम्बर-परम्परा ही भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत मूल परम्परा है, इसलिए 'मूलसंघ' शब्द भी उसी का नामान्तर है। सर एम० मोनियर विलिअम्स की संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी में भी **निर्ग्रन्थ** शब्द का अर्थ a naked Jaina mendicant (नग्न जैन साधु) दिया गया है।

इन साहित्यिक, शब्दकोशीय और अभिलेखीय प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि 'निर्ग्रन्थ' शब्द भगवान् महावीर के समय से ही दिगम्बर जैन मुनियों की पहचान

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रहा है। अतः श्वेताम्बर मुनियों के द्वारा अपने लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाना न्यायोचित नहीं है। यह न केवल सैद्धान्तिक भ्रम उत्पन्न करने की चेष्टा है, अपितु दिगम्बर मुनियों की ऐतिहासिक पहचान मिटाने का भी प्रयास है।

'भगवती-आराधना' के टीकाकार श्री अपराजितसूरि ने इस चेष्टा पर बड़ी चुभती टिप्पणी की है। वे लिखते हैं—

''चेलपरिवेष्टिताङ्ग आत्मानं निर्ग्रन्थं यो वदेत्तस्य किमपरे पाषण्डिनो न निर्ग्रन्थाः? वयमेव, न ते निर्ग्रन्था इति वाङ्मात्रं नाद्रियते मध्यस्थैः।'' (वि.टी./भ. आ./गा. 'आचेलक्कुद्देसिय' ४२३/पृ.३२३)।

अनुवाद-''जो वस्त्रधारण करते हुए भी अपने को निर्ग्रन्थ कहता है, उसके अनुसार क्या अन्य सम्प्रदाय के साधु निर्ग्रन्थ सिद्ध नहीं होते? अवश्य होते हैं। हम ही निर्ग्रन्थ हैं, वे नहीं, यह तो कथनमात्र है। मध्यस्थपुरुष इसे स्वीकार नहीं करते।

तात्पर्य यह कि वस्त्रधारी को निर्ग्रन्थ कहने से सभी वस्त्रधारी निर्ग्रन्थ कहलाने लगेंगे, तब सग्रन्थ और निर्ग्रन्थ के भेद का कोई आधार ही नहीं रहेगा। अतः सग्रन्थ और निर्ग्रन्थ के भेद का बाह्य आधार वस्त्रधारण करना और न करना (सर्वथा नग्न रहना) ही है।

सर्वार्थसिद्धिकार पूज्यपादस्वामी ने सग्रन्थ होते हुए भी अपने को निर्ग्रन्थ कहनेवालों को विपरीत-मिथ्यादृष्टि कहा है—**''सग्रन्थो निर्ग्रन्थः, केवली कवलाहारी, स्त्री सिध्यतीत्येवमादिः विपर्ययः''** (८/१)।

३

डॉ० सागरमल जी के मत में परिवर्तन

ईसापूर्व चतुर्थ शती से दिगम्बरसंघ ही 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से प्रसिद्ध

पूर्व (प्रकरण ३ / शीर्षक ५) में डॉ० सागरमल जी के वे नवीन वचन उद्धृत किये गये हैं, जिनमें उन्होंने अपनी मान्यता में परिवर्तन कर यह मान लिया है कि तीर्थंकर महावीर का निर्ग्रन्थसंघ सर्वथा अचेल था। इस तरह यह सिद्ध हो जाता है कि महावीर के समय से जो अचेल श्रमणसंघ निर्ग्रन्थसंघ के नाम से प्रसिद्ध चला आ रहा था, वही वर्तमान में दिगम्बरसंघ के नाम से जाना जाता है। पूर्व (इसी प्रकरण के शीर्षक २) में डॉक्टर सा० के वे वचन भी उद्धृत किये गये हैं, जिनमें उन्होंने यह स्वीकार किया है कि ईसापूर्व तीसरी शती में[१०२] भद्रबाहु (प्रथम) की

१०२. ईसापूर्व चौथी शती कहना चाहिए था।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

रहा है। अतः श्वेताम्बर मुनियों के द्वारा अपने लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाना न्यायोचित नहीं है। यह न केवल सैद्धान्तिक भ्रम उत्पन्न करने की चेष्टा है, अपितु दिगम्बर मुनियों की ऐतिहासिक पहचान मिटाने का भी प्रयास है।

'भगवती-आराधना' के टीकाकार श्री अपराजितसूरि ने इस चेष्टा पर बड़ी चुभती टिप्पणी की है। वे लिखते हैं—

''चेलपरिवेष्टिताङ्ग आत्मानं निर्ग्रन्थं यो वदेत्तस्य किमपरे पाषण्डिनो न निर्ग्रन्थाः? वयमेव, न ते निर्ग्रन्था इति वाङ्मात्रं नाद्रियते मध्यस्थैः।'' (वि.टी./भ. आ./गा. 'आचेलक्कुद्देसिय' ४२३/पृ.३२३)।

अनुवाद–''जो वस्त्रधारण करते हुए भी अपने को निर्ग्रन्थ कहता है, उसके अनुसार क्या अन्य सम्प्रदाय के साधु निर्ग्रन्थ सिद्ध नहीं होते? अवश्य होते हैं। हम ही निर्ग्रन्थ हैं, वे नहीं, यह तो कथनमात्र है। मध्यस्थपुरुष इसे स्वीकार नहीं करते।

तात्पर्य यह कि वस्त्रधारी को निर्ग्रन्थ कहने से सभी वस्त्रधारी निर्ग्रन्थ कहलाने लगेंगे, तब सग्रन्थ और निर्ग्रन्थ के भेद का कोई आधार ही नहीं रहेगा। अतः सग्रन्थ और निर्ग्रन्थ के भेद का बाह्य आधार वस्त्रधारण करना और न करना (सर्वथा नग्न रहना) ही है।

सर्वार्थसिद्धिकार पूज्यपादस्वामी ने सग्रन्थ होते हुए भी अपने को निर्ग्रन्थ कहनेवालों को विपरीत-मिथ्यादृष्टि कहा है—**''सग्रन्थो निर्ग्रन्थः, केवली कवलाहारी, स्त्री सिध्यतीत्येवमादिः विपर्ययः''** (८/१)।

३

डॉ० सागरमल जी के मत में परिवर्तन

ईसापूर्व चतुर्थ शती से दिगम्बरसंघ ही 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से प्रसिद्ध

पूर्व (प्रकरण ३ / शीर्षक ५) में डॉ० सागरमल जी के वे नवीन वचन उद्धृत किये गये हैं, जिनमें उन्होंने अपनी मान्यता में परिवर्तन कर यह मान लिया है कि तीर्थंकर महावीर का निर्ग्रन्थसंघ सर्वथा अचेल था। इस तरह यह सिद्ध हो जाता है कि महावीर के समय से जो अचेल श्रमणसंघ निर्ग्रन्थसंघ के नाम से प्रसिद्ध चला आ रहा था, वही वर्तमान में दिगम्बरसंघ के नाम से जाना जाता है। पूर्व (इसी प्रकरण के शीर्षक २) में डॉक्टर सा० के वे वचन भी उद्धृत किये गये हैं, जिनमें उन्होंने यह स्वीकार किया है कि ईसापूर्व तीसरी शती में[१०२] भद्रबाहु (प्रथम) की

१०२. ईसापूर्व चौथी शती कहना चाहिए था।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

परम्परा का जो श्रमणसंघ उत्तरभारत से दक्षिण गया था, वह भी अपने को निर्ग्रन्थसंघ कहता था, क्योंकि उस समय उत्तरभारत में जैनसंघ इसी नाम से जाना जाता था। डॉक्टर सा० के कथनानुसार यह अचेल निर्ग्रन्थसंघ ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक निर्ग्रन्थसंघ के ही नाम से विख्यात था, क्योंकि पाँचवीं शती ई० के देवगिरि एवं हल्सी के ताम्रपत्रलेखों में इसी नाम से इसका उल्लेख है। डॉक्टर सा० ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "**आज की दिगम्बरपरम्परा का पूर्वज यही दक्षिणी अचेल निर्ग्रन्थसंघ है।**" (देखिये, पूर्व प्रकरण ३/शी.५)। इससे सिद्ध हो जाता है कि दिगम्बरसंघ ही ईसापूर्व चौथी शताब्दी से और वस्तुतः तीर्थंकर महावीर के समय से निर्ग्रन्थसंघ नाम से प्रसिद्ध रहा है।

४

ईसापूर्व चतुर्थ शती से श्वेताम्बरसंघ 'श्वेतपटसंघ' नाम से प्रसिद्ध

डॉ० सागरमल जी ने लिखा है कि "दक्षिण का अचेल-निर्ग्रन्थसंघ भद्रबाहु (प्रथम) की परम्परा से और उत्तर का सचेल-निर्ग्रन्थसंघ स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित हुआ।" (देखिये, पूर्व प्रकरण ३/शी.५)। किन्तु, निर्ग्रन्थसंघ के ऐसे अचेल और सचेल दो भेद किसी भी शिलालेख अथवा किसी भी सम्प्रदाय के साहित्य में नहीं मिलते। ईसापूर्व प्रथम शताब्दी के बौद्धग्रन्थ **अपदान** में सचेल-जैनश्रमणसंघ को **श्वेतवस्त्रसंघ** नाम से अभिहित किया गया है और ईसा की पाँचवीं शताब्दी के **देवगिरिताम्रपत्रलेख** में उसका उल्लेख **श्वेतपटश्रमणसंघ** नाम से हुआ है। इससे प्रमाणित होता है कि स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित सचेल-जैनश्रमणसंघ उनके समय (ईसापूर्व चौथी शताब्दी) से लेकर ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक श्वेतपटश्रमणसंघ नाम से ही जाना जाता था। आज भी वह इसी नाम से या इसके पर्यायवाची श्वेताम्बरसंघ नाम से प्रसिद्ध है।

डॉक्टर सा० ने इसी प्रकरण ६ के शीर्षक २ में जो कथन किया है, उससे निर्ग्रन्थसंघ से पृथक् होकर अस्तित्व में आये सचेल-श्रमणसंघ के लिए 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम के प्रयोग का औचित्य सिद्ध करनेवाला उनका तर्क भी सामने आता है। वह यह कि 'ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी में उत्तरभारत में जैनसंघ 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से ही जाना जाता था। और सचेल-श्रमणसंघ जैन था, इसलिए उसका 'निर्ग्रन्थ' नाम उचित है।' यह तर्क समीचीन नहीं है। यह सत्य है कि उस समय जैनसंघ 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से जाना जाता था, किन्तु यह स्मरणीय है कि वह जैनसंघ केवल अचेल-श्रमणों का संघ था। इसलिए 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से अचेल-जैनसंघ ही जाना जाता था। अतः जब सचेल-जैनसंघ की उत्पत्ति हुई, तब उसने अपनी सचेल-जैनसंघ के रूप में पहचान

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

कराने के लिए स्वयं को 'श्वेतपटश्रमणसंघ' नाम से प्रसिद्ध किया। तब इस नाम से सचेल-जैनसंघ जैनसम्प्रदाय के एक उपसम्प्रदाय के रूप में जाना जाने लगा। अपने लिए इस नये नाम का प्रयोग ही सिद्ध करता है कि सचेल-जैनश्रमणों के संघ के लिए 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम उपयुक्त नहीं था। इसी प्रकार आगे चलकर उत्पन्न हुए यापनीय और कूर्चक संघों के लिए 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम उचित नहीं था, इसीलिए इन संघों ने अपने लिए ये विशिष्ट नाम चुनें। इस प्रकार जैनसम्प्रदाय में विभिन्न उपसम्प्रदाय उत्पन्न हो जाने पर निर्ग्रन्थसंघ भी महाजैनसम्प्रदाय का एक उपसम्प्रदाय बन गया और वह जैनसम्प्रदाय का सामान्य नाम नहीं रहा। जैसे 'निर्ग्रन्थसंघ' शब्द से यापनीय-संघ का बोध नहीं हो सकता था, कूर्चकसंघ का बोध नहीं हो सकता था, वैसे ही सचेल-जैनश्रमणसंघ अर्थात् श्वेतपटश्रमणसंघ का भी बोध नहीं हो सकता था। इसी कारण सचेल-जैनश्रमणसंघ ने अपने विशिष्टरूप का बोध कराने हेतु स्वयं के लिए 'श्वेतपटश्रमणसंघ' नाम चुना। अतः डॉ० सागरमल जी द्वारा स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित सचेल-श्रमणसंघ को 'सचेल-निर्ग्रन्थसंघ' नाम से अभिहित किया जाना युक्तिविरुद्ध, इतिहास-विरुद्ध एवं 'श्वेतपटसंघ' नामकरण करनेवाले प्राचीन श्वेताम्बराचार्यों के विरुद्ध है।

५

सम्प्रदायों के नामकरण के आधार : लिंग, देवता एवं तत्त्व

सम्प्रदायों का नामकरण दो आधारों पर हुआ है—१. मुनिलिंग एवं २. देवता और तत्त्व। निर्ग्रन्थ, श्वेतपट, कूर्चक, रक्तपट (बौद्धसाधु) आदि सम्प्रदाय-बोधक नाम मुनिलिंग के आधार पर प्रचलित हुए हैं। और जैनदर्शन-बौद्धदर्शन, जैनधर्म-बौद्धधर्म, जिनमत-बौद्धमत, जैनसम्पद्राय-बौद्धसम्प्रदाय आदि नाम देवता (धर्म-दर्शन के प्रणेता आप्तपुरुष) एवं तत्त्वों (सिद्धान्तों) पर आधारित हैं, जैसा कि श्वेताम्बराचार्य श्री हरिभद्र-सूरि (७५० ई० अनुमानित) ने **षड्दर्शनसम्मुचय** में बतलाया है—

दर्शनानि षडेवात्र मूलभेदव्यपेक्षया।
देवतातत्त्वभेदेन ज्ञातव्यानि मनीषिभिः॥ २॥

अनुवाद—"चूँकि देवता और तत्त्वों के भेद की अपेक्षा मूलदर्शन छह ही हैं, अतः ये ही छह मूलदर्शन इस ग्रन्थ (षड्दर्शनसमुच्चय) में विद्वज्जनों द्वारा ज्ञातव्य हैं।"

उन छह मूल दर्शनों के नाम इस प्रकार हैं—

बौद्धं नैयायिकं सांख्यं जैनं वैशेषिकं तथा।
जैमिनीयं च नामानि दर्शनानाममून्यहो॥ ३॥

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

जैनदर्शन के देवताश्रित नाम की व्याख्या करते हुए उक्त कारिका के वृत्तिकार श्री गुणरत्नसूरि लिखते हैं—

''जिना ऋषभादयश्चतुर्विंशतिरर्हन्तस्तेषामिदं दर्शनं जैनम्। एतेन चतुर्विंशतेरपि जिनानामेकमेव दर्शनमजनिष्ट, न पुनस्तेषां मिथो मतभेदः कोऽप्यासीदित्यावेदितं भवति।''

अनुवाद—''ऋषभ से लेकर महावीर पर्यन्त चौबीस अरहन्त (तीर्थंकर) जिन कहलाते हैं। उनके दर्शन को **जैनदर्शन** कहते हैं। इससे यह सूचित होता है कि चौबीसों जिनों का एक ही दर्शन था, उनमें परस्पर कोई मतभेद नहीं था।''

हरिभद्रसूरि ने निम्नलिखित कारिका में **जैनदर्शन** नाम को जिनेन्द्र देवता पर आश्रित बतलाया है—**''जिनेन्द्रो देवता तत्र रागद्वेषविवर्जितः---।''** (षड्दर्शनसमुच्चय/कारिका ४५)।

इसी प्रकार **जैन** ('जोण्हकहियतच्चेसु'-नि.सा. /गा.१३९, लिंगं--- जेण्हं-प्र.सा. / ३/६) **जिनमत** ('जिणमदम्हि'—प्र.सा. / ३/१२), **जैनोपदेश** ('जोण्हमुवदेसं-प्र.सा. १/८८) **वीरशासन** (सासणं हि वीरस्स-प्र.सा./२/१४), ये देवताश्रित सम्प्रदाय-बोधक नाम ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी में हुए आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों में मिलते हैं। ईसा की तृतीय शती के आचार्य समन्तभद्रकृत रत्नकरण्ड-श्रावकाचार में उपलब्ध जिनशासन ('शासति जिनशासने विशदाः'—श्लोक ७८) शब्द भी ऐसा ही सम्प्रदायसूचक नाम है। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती (१०वीं शती ई० का उत्तरार्ध) द्वारा रचित गोम्मटसार-कर्ममण्ड में देवताश्रित सम्प्रदाय-बोधक **जैन** नाम प्रयुक्त हुआ है—'जइणाणं पुण वयणं---।' (गाथा ८९५)।

किन्तु 'जैन' शब्द से भी अधिक पुराना और बहुप्रचलित जैनसम्प्रदाय-सूचक नाम **आर्हत** है, जो देवता और तत्त्व पर आश्रित है। संस्कृत के सुप्रसिद्ध गद्यकवि वाणभट्ट ने 'हर्षचरित' (उच्छ्वास ८/पृ.४२२-२३) में **आर्हत** शब्द से जैनों का उल्लेख किया है। उसके टीकाकार शङ्कर कवि ने **आर्हत** शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—**''अर्हन्देवता येषां ते आर्हताः।''** अर्थात् जिनके देवता अरहन्त होते हैं, वे आर्हत कहलाते हैं। 'अर्हत्' शब्द 'जिन' या तीर्थंकर का पर्यायवाची है। जैनपरम्परा में 'अर्हत्' शब्द शुरू से ही 'जिन' शब्द से भी अधिक लोकप्रिय रहा है। जिनमत के प्राणभूत **णमोकार महामन्त्र** में तीर्थंकर को नमस्कार करने के लिए 'तीर्थंकर' या 'जिन' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया, अपितु 'अर्हत्' शब्द का प्रयोग किया गया है। यथा- **णमो अरहन्ताणं**। ईसापूर्व द्वितीय शती के सम्राट् खारवेल के हाथीगुम्फाभिलेख में भी 'अर्हत्' शब्द का प्रयोग करके ही **'नमो अरहंतानं'** वाक्य द्वारा मंगलाचरण का

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

प्रारंभ किया गया है। मथुरा के अभिलेखों में, जो लगभग ईसा की प्रथम शताब्दी या उसके कुछ पूर्व के हैं, वर्धमान को नमस्कार करते समय उनके साथ 'जिन' या 'तीर्थंकर' विशेषण न जोड़कर 'अर्हत्' विशेषण जोड़ा गया है। जैसे, **नमो अरहतो वधमानस्य** (जै.शि.सं./मा.च./भाग २/लेख क्र. ८)। 'जिनपूजा' के स्थान में **अरहतपूजा** शब्द प्रयुक्त किया गया है। (वही/लेख क्र.१० एवं १५)। इसी प्रकार निम्नलिखित अर्थों को प्रकट करने के लिए भी 'अर्हत्' शब्द का ही प्रयोग हुआ है—अर्हदायतन= जिनमंदिर (वही/लेख क्र.९०), आर्हतायतन = जिनालय (वही/ले.क्र.९४), अर्हच्छाला = जिनमंदिर (वही/ले.क्र.९८), **अर्हत्प्रोक्तसद्धर्म** = जिनोपदिष्ट समीचीन धर्म (वही/ले. क्र.९८) **परमार्हतदेव** (वही/ले.क्र.९७), **परम अर्हद्भक्त** (ले.क्र.१०२), **महावीर अर्हत** (वही/ले.क्र.१०६)। ई० सन् ३०० से ४०० के बीच रचित वैदिकपरम्परा के विष्णुपुराण में जैनों को **आर्हत** शब्द से वर्णित किया गया है। (देखिये, अध्याय ४/प्र.१/शी.१०.२)।

षड्दर्शनसमुच्चय की ५८वीं कारिका की वृत्ति में गुणरत्नसूरि ने जैनदर्शन के विषय में परपक्ष के आक्षेप को उठाते हुए परपक्ष के द्वारा जैनों को **आर्हत** शब्द से सम्बोधित कराया है। यथा—

"**अत्र परे प्राहुः—अहो आर्हताः! अर्हदभिहिततत्त्वानुरागिभिर्युष्माभिरिदमसम्बद्ध-मेवाविर्भावयांम्बभूवेयदुत युष्मद्दर्शनेष्वपि पूर्वापरयोर्विरोधोऽस्तीति**।---" (पृ.३९३/ अनुच्छेद ४२०)।

गुणरत्नसूरि के ये वचन इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं कि जैनेतरों में जैन लोग बहुत प्राचीन काल से **आर्हत** नाम से जाने जाते थे।

निष्कर्ष यह कि प्राचीन काल में जैनसम्प्रदाय **निर्ग्रन्थ** एवं **आर्हत** इन दो नामों से लोक विख्यात था। **निर्ग्रन्थ** नाम अचेललिंगाश्रित है और **आर्हत** नाम अरहन्त-देवता के नाम तथा उनके द्वारा उपदिष्ट सिद्धान्तों पर आश्रित है। तीर्थंकर महावीर के समय में आर्हतसम्प्रदाय में केवल निर्ग्रन्थ (अचेल) मुनि ही होते थे। किन्तु जब जम्बूस्वामी के निर्वाण के बाद कुछ मुनि सचेल हो गये तब सचेलमुनिसंघ निर्ग्रन्थसंघ नहीं कहला सकता था, क्योंकि 'निर्ग्रन्थ' नाम अचेललिंग पर आश्रित था। इसके अतिरिक्त उन्हें अपने जैन या आर्हत होने की पहचान कराने के लिए 'निर्ग्रन्थ' नाम अपनाने की आवश्यकता भी नहीं थी, क्योंकि उनकी उक्त पहचान 'आर्हत' नाम से हो ही रही थी, वह इसलिए कि वे उसी सम्प्रदाय में आविर्भूत हुए थे और उसी के देवता और तत्त्वों के (कुछ भेद के साथ) अनुयायी थे। हाँ, इस नाम से लोगों को उनके सचेललिंगाश्रित उपसम्प्रदाय का बोध होना संभव नहीं था। अतः उन्होंने उसका बोध कराने के लिए सचेललिंग के आधार पर अपने लिंगाश्रित उपसम्प्रदाय का नामकरण

फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

श्वेतपटसंघ किया और इसी नाम से वह लोकप्रसिद्ध हुआ। **सचेल-निर्ग्रन्थसंघ** के नाम से इतिहास में कहीं भी उसका उल्लेख नहीं है। सम्प्रदायों के नाम कोई गोपनीय तत्त्व नहीं होते। वे रखे ही इसलिए जाते हैं कि उन नामों से वे सम्प्रदाय प्रसिद्ध हों, वे लोगों की जिह्वा पर चढ़ जायें। लेकिन 'सचेल-निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय' नाम के किसी सम्प्रदाय से लोग परिचित ही नहीं थे, न ही 'वस्त्रधारी को निर्ग्रन्थ कहते हैं,' ऐसा उन्होंने कहीं पढ़ा, सुना या देखा था। शिलालेख और विभिन्न सम्प्रदायों के साहित्य इसके प्रमाण हैं। इसलिए डॉ० सागरमल जी की यह मान्यता अत्यन्त अप्रामाणिक एवं अयुक्तिमत् सिद्ध होती है कि स्थूलभद्र की परम्परा से विकसित सचेल-श्रमणसंघ 'सेचल-निर्ग्रन्थसंघ' कहलाता था।

६

स्वसंघ के लिए 'श्वेतपटसंघ' नाम प्रचारित

पाँचवीं शती ई० के कदम्बनरेश श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के ताम्रपत्रलेख में सचेल-जैनश्रमणों का उल्लेख **श्वेतपटमहाश्रमणसंघ** नाम से हुआ है। इससे सिद्ध है कि उनके संघ का प्रामाणिक, राजमान्य और लोकप्रसिद्ध नाम शुरू से यही था और यह नामकरण स्वयं सचेल-जैनश्रमणों ने किया था तथा उनकी ही इच्छा से यह लोकप्रसिद्ध हुआ था। सचेल-जैनश्रमणों अर्थात् श्वेताम्बरों की इच्छा और प्रयत्न के बिना उनके संघ का यह नाम प्रसिद्ध होना असंभव था। विचारणीय है कि श्वेताम्बर साधुओं ने अपने शास्त्रों में स्वयं को 'निर्ग्रन्थ' लिखा है, तथापि अपने संघ को **श्वेतपट** (**श्वेतवस्त्र, सिताम्बर**) नाम से प्रसिद्ध किया है। इसका कारण क्या था? यदि वे निर्ग्रन्थ थे, तो अपने संघ के लिए यही नाम प्रचारित क्यों नहीं किया? जिस दिगम्बरसंघ को उन्होंने ईसा की प्रथम शताब्दी या विक्रम की छठी शती में उत्पन्न माना है, उसे 'निर्ग्रन्थ' नाम का प्रयोग क्यों करने दिया गया? जब हम इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने का प्रयत्न करते हैं, तब निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं—

श्वेतपटसंघ के उदय से पूर्व सभी जैनमुनि अचेल होते थे। अतः **निर्ग्रन्थ** शब्द जैनमुनि का पर्यायवाची था। इसलिए जब उन अचेल जैनमुनियों के निर्ग्रन्थसंघ से श्वेतवस्त्रधारी मुनियों के संघ का उदय हुआ, तब उन्होंने अपने मुनि-सम्बोधन हेतु 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग प्रचलित रखा। किन्तु यह प्रयोग उनके शास्त्रों के भीतर ही प्रचलित रहा, इस नाम से अपने सम्प्रदाय को लोकप्रसिद्ध करना उनके लिए संभव नहीं हुआ, क्योंकि 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम पहले से ही अचेल-जैनश्रमणों के संघ के लिए लोकप्रसिद्ध था।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक टस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

इसके अतिरिक्त 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम उनके सम्प्रदाय के लिए उपयुक्त भी नहीं था, क्योंकि 'निर्ग्रन्थ' शब्द के साथ अचेलत्व के ही संयमसाधक होने का अर्थ जुड़ा हुआ था, जब कि उन्हें यह प्रचार करना था कि वस्त्रधारण करने से ही मोक्षमार्गभूत संयम की साधना हो सकती है, इसी कारण स्त्रीमुक्ति भी संभव है। इस उद्देश्य से उनके लिए अपने संघ का नाम 'श्वेतपट' रखना अत्यन्त उपयोगी प्रतीत हुआ। यह नाम उनकी मान्यताओं का विज्ञापक था। इस प्रयोजन से उन सवस्त्र जैन साधुओं ने भगवान् महावीर को भी कन्धे पर एक वस्त्र डालकर प्रव्रजित होते हुए अपने शास्त्रों में वर्णित किया है। इस महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए श्वेताम्बर साधुओं ने अपने संघ का नाम **श्वेतपटसंघ** रखा। इसी नाम से उसे लोक में प्रचारित किया और राजाओं से उसे मान्यता दिलायी, जिससे उन्हें 'निर्ग्रन्थश्रमणसंघ', 'यापनीयसंघ' आदि से अलग ग्राम आदि का दान प्राप्त हो सका। इस प्रकार श्वेताम्बराचार्यों ने अपने संघ के लिए 'श्वेतपटसंघ' नाम स्वयं प्रचारित किया था, जो इस बात का प्रमाण है कि अपने आगमों में साधु के लिए निर्ग्रन्थ शब्द का प्रयोग करते हुए भी उन्होंने अपने संघ को निर्ग्रन्थसंघ नाम से प्रसिद्ध नहीं किया, क्योंकि एक तो यह नाम पहले से ही अचेल-जैनश्रमणों के संघ के लिए प्रसिद्ध था, दूसरे इससे अचेलत्व का भी बोध होने से अचेलत्व भी संयम का साधक सिद्ध होता था, जो उनकी सैद्धान्तिक विशेषता के प्रतिकूल था। अतः उसका प्रयोग उनके शास्त्रों तक ही सीमित रह गया। यदि 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम पहले से ही अचेल-जैनश्रमणसंघ के लिए लोकप्रसिद्ध न होता, तो सचेल-जैनश्रमणों को अपने संघ के लिए इस नाम का प्रयोग करने से कोई नहीं रोक सकता था। तब इस नाम के साथ अचेलत्व के ही संयमसाधक होने का अर्थ भी न जुड़ा होता, अतः इस दृष्टि से भी उन्हें इस नाम के प्रयोग मे बाधा नहीं होती। किन्तु ये दोनों ही अनुकूलताएँ नहीं थीं, इस कारण वे अपने संघ के लिए 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम का प्रयोग नहीं कर सके। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास में दिगम्बरसंघ (मूलसंघ) ही **निर्ग्रन्थसंघ** नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ था और चूँकि 'निर्ग्रन्थ' नाम 'श्वेतपट' नाम से पूर्ववर्ती है, इसलिए निर्ग्रन्थसंघ श्वेतपटसंघ से प्राचीन है।

७

केवल दिगम्बरसंघ का 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम श्वेताम्बरों को भी मान्य

एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि कदम्बवंशीय राजा श्रीविजयशिवमृगेशवर्मा के ताम्रपत्रलेख में निर्ग्रन्थसंघ और श्वेतपटसंघ, दोनों को इन्हीं नामों से एक ही साथ, एक ही स्थान में, एक ही ग्राम को विभाजित कर दान में दिये जाने का वर्णन है। इससे यह सत्य प्रकट होता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर एक ही स्थान में साथ-

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

साथ रहते थे और अपने संघ के लिए **श्वेतपटसंघ** तथा दिगम्बरसंघ के लिए **निर्ग्रन्थसंघ** नाम का प्रयोग श्वेताम्बरों को स्वीकार्य था। वे स्वयं दिगम्बरसंघ को 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से अभिहित करते होंगे, क्योंकि उस समय तक दिगम्बरों के लिए 'दिगम्बर' शब्द का व्यवहार प्रचलित नहीं हुआ था, वे 'निर्गन्थ' शब्द से ही जाने जाते थे। दिगम्बरसंघ के लिए 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम का प्रयोग किये बिना श्वेताम्बरों को उससे अपनी भिन्नता प्रकट करना संभव नहीं था, क्योंकि दिगम्बरसंघ लोक में 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से ही प्रसिद्ध था, अभिलेखों में उसका **निर्ग्रन्थसंघ** नाम से उल्लेख किया जाना इस बात का प्रमाण है।

यतः पारस्परिक भेद प्रकट करने लिए दिगम्बरसंघ को **निर्ग्रन्थसंघ** कहना श्वेताम्बरों के लिए अपरिहार्य था, अतः सिद्ध है कि उनके लिए स्वसंघ को 'निर्ग्रन्थसंघ' शब्द से अभिहित करना संभव नहीं था। इससे साबित होता है कि कम से कम ईसा की पाँचवी शताब्दी तक श्वेताम्बरसंघ को यह सत्य स्वीकार्य था कि लोक में केवल दिगम्बर ही 'निर्ग्रन्थ' शब्द से प्रसिद्ध हैं।

८

कल्पित सचेलाचेलसंघ की 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से प्रसिद्धि अयुक्तियुक्त

डॉक्टर सागरमल जी के पूर्वोद्धृत (प्रकरण ३/शीर्षक १ में उद्धृत) वचनों से उनकी यह मान्यता प्रकट होती है कि 'ईसा की पाँचवी शताब्दी के प्रारंभ तक उत्तरभारत में सचेलाचेल-निर्ग्रन्थसंघ विद्यमान था। इसी समय उसका विभाजन श्वेताम्बर और यापनीय संघों के रूप में हुआ और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया।' किन्तु उसके विभाजन से जो संघ उत्पन्न बतलाये गये हैं, उनमें से न तो श्वेताम्बरसंघ 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से प्रसिद्ध हुआ, न यापनीयसंघ। केवल उससे जो उत्पन्न नहीं बतलाया गया है, वह दिगम्बरसंघ ही **निर्ग्रन्थसंघ** के नाम से प्रसिद्धि पाता रहा और पा रहा है। इससे सिद्ध है कि डॉक्टर सा० द्वारा स्वकल्पित उत्तरभारतीय सचेलाचेलसंघ को 'निर्ग्रन्थसंघ' नाम से प्रसिद्ध बतलाया जाना अयुक्तियुक्त है। और जैसा कि पूर्वोद्धृत प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध है, यापनीयसंघ की उत्पत्ति के पूर्व भारत के किसी भी कोने में सचेलाचेल-प्रवृत्तिवाला कोई श्रमणसंघ था ही नहीं, अतः उसके 'निर्ग्रन्थ' नाम से प्रसिद्ध होने का भी प्रश्न नहीं उठता। निष्कर्ष यह कि जैसे उत्तरभारतीय-सचेलाचेलसंघ के अस्तित्व की मान्यता कपोलकल्पित है, वैसे ही उसके 'निर्ग्रन्थसंघ' कहलाने की मान्यता भी कपोलकल्पित है।

इन अनेक प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध होता है कि श्वेताम्बराचार्यों ने सग्रन्थ (सचेल) होते हुए भी अपने लिए आगमों में जो 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग किया है, वह इतिहासविरुद्ध अनधिकृत चेष्टा है।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in

उपसंहार

उपर्युक्त प्रमाण और युक्तियाँ यह तथ्य अनावृत कर देती हैं कि मान्य श्वेताम्बर-मुनियों और विद्वानों ने दिगम्बरमत को निह्नवमत (तीर्थंकरोपदेश के विपरीत, स्व-कल्पित, मिथ्यामत) एवं अर्वाचीन, दिगम्बरसाहित्य को यापनीयसाहित्य तथा आचार्य कुन्दकुन्द को विक्रम की छठी शती में उत्पन्न सिद्ध करने के लिए जो पूर्ववर्णित हेतुओं की कल्पना की है, वे सर्वथा अप्रामाणिक और अयुक्तिसंगत हैं, अत एव कपोलकल्पित हैं।

श्री दिगम्बर जैन पंचबालयति पारमार्थिक एवं धार्मिक ट्रस्ट, इन्दौर (म.प्र.)
फोन : 0731-2571851 मो. : 8989505108 e-mail : sanskarsagar@yahoo.co.in